भारत का

# नया शासन-विधान

[ प्रान्तीय स्वराज्य ]

लेखक

हरिश्चन्द्र गोयल बी० एस-सी० एल-एल० बी०

सस्ता साहित्य मण्डल,

दिल्ली

प्रकाशक—

मार्तण्ड उपाध्याय,

मंत्री सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

अप्रैल, सन् १९३८

पहली बार : २०००

मूल्य

बारह आना

मुद्रक—

हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,

नई दिल्ली

# प्रकाशक की ओर से

सन् १९३५ में जब गवर्नमेण्ट आफ् इंडिया एक्ट पास हुआ था तो उसके बाद कई मित्रों ने मण्डल से नये शासन-विधान पर एक आलोचनात्मक पुस्तक प्रकाशित करने का सुझाया। लेकिन देश में उस समय तो शासन-विधान को ठुकरा देने का वातावरण अधिक था सो हमने इस ओर ध्यान देना ठीक नहीं समझा। लेकिन जब पिछले साल दिल्ली में गांधीजी की सलाह से कांग्रेस ने गवर्नरों द्वारा आश्वासन देदिये जाने पर पदग्रहण करने की छूट दी और उसके बाद की घटनाओं के बाद कांग्रेस ने पद-ग्रहण करना स्वीकार किया, तब यह ज़रूरी समझा गया कि हिन्दी में नये शासन-विधान पर एक आलोचनात्मक पुस्तक निकाली जाय, जिसमें विषय का विश्लेषण इतनी सरलता से हो कि साधारण पाठक विधान को समझ सके और उसके खोखलेपन को महसूस कर सके।

इसी बीच में श्री० के० टी० शाह की पुस्तक (Provincial Autonomy) यहाँ की 'नेशनल पब्लिकेशन सोसायटी' ने प्रकाशित की। हमने पण्डित जवाहरलाल नेहरू से मिलकर यह चाहा कि हो सके तो उसका अनुवाद मण्डल से निकालें। लेकिन उनसे तथा और कई मित्रों से विचार-विनिमय के बाद यही ठीक समझा गया कि अनुवाद के बजाय नई पुस्तक ही निकालना ठीक होगा। इसके लिए लेखक की तलाश में थे ही कि एक दिन हमारे मित्र श्री हरिश्चन्द्र गोयल से इसकी चर्चा चल पड़ी और उन्होंने इसमें दिलचस्पी ज़ाहिर की। फिर कुछ दिन बाद उन्होंने इसे लिखने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर लेकर हमें चिंतामुक्त कर दिया। इसलिए हम उनके आभारी हैं।

हम पूरे विधान पर एक ही पुस्तक में विचार करना चाहते थे लेकिन कई अनिवार्य कारण ऐसे आगये कि हमारा और लेखक का यह विचार पूरा न हो सका और हमें 'प्रान्तीय स्वराज्य' और 'फेडरेशन' दो विभाग अलग-अलग करने पड़े। इस भाग में 'प्रान्तीय स्वराज' पर ही विचार किया गया है।

यद्यपि हिन्दी में लेखक की यह पहली रचना है परंतु अपने विषय पर उनका अधिकार होने के कारण पुस्तक में उन्होंने यथासम्भव किसी प्रकार की त्रुटी नहीं होने दी है। लेखक क़ानून के गहरे विद्यार्थी हैं और कांस्टीट्यूशनल लॉ (विधान क़ानून) उनका दिलचस्प विषय रहा है। आप हिन्दी के होनहार लेखक हैं और हिन्दी को आपसे बहुत आशायें हैं। हम उनकी लिखी 'फेडरेशन' भी शीघ्र ही पाठकों की सेवा में उपस्थित करेंगे।

मंत्री

भूल सुधार

| पृष्ठ | पंक्ति | अशुद्ध | शुद्ध |
|---|---|---|---|
| ३५ | फुटनोट | ६८ | ६७ |
| ३९ | अन्तिम | और सिन्ध में | उड़ीसा और सिन्ध में |
| ४८ | २१ | १२, ०००) | ११२, ०००) |
| ४५ | १४ | ३५,०००) | ११, ५००) |

# लेखक की ओर से

इस पुस्तक में गवर्नमेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट की उन धाराओं पर आलोचनात्मक व विश्लेषणात्मक दृष्टि से विचार करने का प्रयत्न किया गया है जो १ अप्रैल सन् १९३७ से प्रान्तों में अमल में आई हैं। इसके अलावा उन विभिन्न आर्डर-इन-कौंसिलों, आदेश-पत्रों, लेटर्स पेटेण्टों और नियमोपनियमों पर भी यथासम्भव प्रकाश डालने का प्रयत्न किया गया है जो एक्ट के मातहत जारी किये गये हैं और जिनको नये शासन-विधान में लगभग उतना ही महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है जितना कि ख़ास एक्ट की धाराओं को। प्रारम्भ में एक अध्याय में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के ज़माने से अबतक के वैधानिक परिवर्त्तनों पर भी सरसरी तौर से विचार किया गया है, ताकि नये परिवर्तनों का महत्व ठीक-ठीक समझ में आसके। अन्त में एक अध्याय में इस बात पर विचार किया गया है कि नये एक्ट की योजना में ऐसे किन-किन परिवर्तनों का किया जाना आवश्यक है जिससे प्रान्तों में वास्तविक प्रान्तीय स्वराज्य और उत्तरदायी शासन-पद्धति स्थापित की जा सके।

किसी भी देश के शासन-विधान में शासन-विधान सम्बन्धी क़ानूनी धाराओं के अलावा सैकडों ऐसी प्रथायें ( Conventions ) भी प्रचलित होजाती हैं, जिनका क़ानून की भांति ही पालन करना शासन से सम्बन्ध रखनेवाले विभिन्न अधिकारियों का कर्तव्य होजाता है, और जो धीरे-धीरे एक प्रकार से शासन-विधान का अंग ही बन जाती हैं। ब्रिटेन के शासन-विधान में इस प्रकार की प्रथाओं की भरमार है, लेकिन हिन्दुस्तान में इस प्रकार की प्रथाओं का कहाँतक जन्म हो सकेगा और ब्रिटिश अधिकारी उन्हें कहाँतक पनपने देंगे यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता।

राजबन्दियों की रिहाई के प्रश्न पर संयुक्तप्रान्त और बिहार के गवर्नरों और मन्त्रि-मण्डलों में हाल ही में जो मतभेद पैदा हो गया था और जिसके फलस्वरूप मन्त्रि-मण्डलों को इस्तीफे तक देने पड़े थे, उससे यह बात बिलकुल स्पष्ट होगई है कि यहां किसी भी प्रथा का क़ायम होना तबतक सहज नहीं है जबतक कि स्वयं ब्रिटिश अधिकारी उस प्रथा का क़ायम होना पसन्द न करें। यद्यपि इन प्रान्तों के गवर्नरों को अन्त में यह स्वीकार करना पड़ा कि प्रान्त के अमन-चैन को क़ायम रखने की प्रारम्भिक ज़िम्मेदारी मिनिस्टरों पर है, लेकिन यह प्रथा कबतक क़ायम रह सकेगी यह देखना बाक़ी है।

इस पुस्तक को तैयार करने में अंग्रेज़ी भाषा की कई पुस्तकों और ख़ासकर प्रो० शाह की पुस्तक ( Provincial Autonomy ) से काफ़ी सहायता ली गई है। इन सबके लेखकों को मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ। इनके अलावा मैंने सरकारी रिपोर्टों और ख़रीतों और, ख़ासकर ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमिटी की रिपोर्ट से भी काफ़ी सहायता ली है।

मैं भाई मुकुटबिहारी वर्मा को धन्यवाद दिये बग़ैर नहीं रह सकता, जिन्होंने सारी पुस्तक को आद्योपान्त पढ़कर उसमें यथास्थान संशोधन किया है। वास्तव में यदि उन्होंने इस काम में हाथ न लगाया होता तो यह पुस्तक इस रूप में प्रकाशित न हुई होती। इसपर भी कई त्रुटियों का रह जाना सम्भव है। आशा है पाठकगण उनके लिए मुझे क्षमा करेंगे और उनकी ओर मेरा ध्यान अवश्य आकर्षित करेंगे ताकि भविष्य में उन्हें सुधारा जा सके।

[illegible]<br>नई दिल्ली

हरिश्चन्द्र गोयल

पूज्य माता-पिता के
चरणों में

# विषय-क्रम

भारत का

# नया शासन-विधान

[ प्रान्तीय स्वराज्य ]

# विषय-प्रवेश

### अंग्रेजों का आगमन

भारत में अंग्रेजों का आगमन आमतौर पर ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के रूप में होता है, जो कि ईसा की १६ वीं सदी के आख़िरी दिन यानी ३१ दिसम्बर सन् १६०० ईसवी को लन्दन में इंग्लैण्ड की महारानी एलिजाबेथ के एक चार्टर ( सनद ) द्वारा बनी थी। यह कम्पनी केवल व्यापार के लिए बनी थी, लेकिन यहांके निवासियों की आपसी फूट और मुग़लों की क्षीण होती हुई शक्ति से लाभ उठाकर उसने एक राजशक्ति की तरह यहाँ अपने पैर जमाने शुरू किये और धीरे-धीरे सारे भारत पर अपना अधिकार जमा लिया।

भारत में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के इतिहास को हम आमतौर पर दो कालों में बाँट सकते हैं—(१) सन् १६०० से १७६५ तक, और (२) सन् १७६५ से १८५७ तक।

### कम्पनी का कारोबार

कम्पनी के ज्यों-ज्यों पाँव जमते गये, सन् १६०० से १७६५ के बीच, उसने मद्रास, बम्बई और बंगाल इन तीन प्रेसिडेंसियों की नींव डाली। इनका नाम प्रेसिडेंसी इसलिए पड़ा, क्योंकि इनका शासन एक कौंसिल और प्रेसिडेण्ट के द्वारा होता था। इसके अलावा और कोई ऐसी बात इस काल में नहीं हुई जिसका यहाँ उल्लेख करना आवश्यक हो।

### पार्लमेंट का दखल

सन् १७६५ में लार्ड क्लाइव ने शाह आलम से बंगाल, बिहार और उड़ीसा[१] की दीवानी प्राप्त करली। इससे कम्पनी की एकदम कायापलट-सी होगई और ब्रिटेन की सर्वोच्च शासन-सत्ता पार्लमेण्ट भी कम्पनी की इस बढ़ती हुई शक्ति को देखकर चुप न बैठ सकी। उसने कम्पनी को अपने नियन्त्रण में रखने का निश्चय किया और सन् १७७२ में रेग्युलेटिंग एक्ट के नाम से एक क़ानून पास किया, जिसके द्वारा कम्पनी के संगठन और अधिकारों में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये। यही नहीं, बल्कि कम्पनी द्वारा स्थापित भारत की शासन-पद्धति में भी कई महत्वपूर्ण परिवर्तन उसके द्वारा हुए। इनमें सबसे मुख्य परिवर्तन यह था कि मद्रास और बम्बई की प्रेसिडेंसियों को, जिनका अभीतक इंग्लैण्ड में सीधा कम्पनी से ही ताल्लुक रहता था, बंगाल की प्रेसिडेंसी के मातहत कर दिया गया और बंगाल के गवर्नर को 'बंगाल का गवर्नर-जनरल' की उपाधि दी गई। साथ ही, उसकी सहायता के लिए, ४ सदस्यों की एक कौंसिल भी नियुक्त की गई।

रेग्युलेटिंग एक्ट

रेग्युलेटिंग एक्ट के बाद दूसरा महत्वपूर्ण क़ानून ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने सन् १७८४ में पास किया, जो 'पिट का इण्डिया एक्ट' ( Pitt's India Act ) के नाम से मशहूर है। इस क़ानून के ज़रिये कम्पनी के हिस्सेदारों की आम सभा यानी 'जनरल कोर्ट ऑफ प्रोप्राइटर्स' ( General Court of Proprietors ) को शासन-सम्बन्धी सब अधिकारों से वंचित कर दिया गया और

पिट का इण्डिया एक्ट

१. उड़ीसा से यहाँ तात्पर्य्य आजकल के उड़ीसा से नहीं है, बल्कि उस इलाके से है जो आजकल मेदिनीपुर का ज़िला कहलाता है। आजकल का उड़ीसा तो कम्पनी को सन् १८०३ में मिला था।

शासन के सब मामलों में कम्पनी के संचालक-मण्डल ( Court of Directors ) को सम्राट् द्वारा नियुक्त एक नई कमेटी के मातहत कर दिया गया। यह कमेटी आमतौर पर 'बोर्ड ऑफ कण्ट्रोल' ( Board of Control ) के नाम से प्रसिद्ध है। इसके ६ सदस्य होते थे, लेकिन इसका सारा काम वास्तव में एक सदस्य के ज़िम्मे ही आ पड़ा, जो बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के प्रेसिडेन्ट के नाम से जाना जाने लगा। इसे यदि हम वर्तमान भारत-मन्त्री का पूर्वाधिकारी कहें तो अनुपयुक्त न होगा। पिट के इण्डिया एक्ट ने बम्बई व मद्रास की प्रेसिडेंसियों के ऊपर बंगाल प्रेसिडेन्सी के अधिकारों को और भी ज्यादा बढ़ा दिया।

*केन्द्रीय सरकार की स्थापना*

पिट के इण्डिया एक्ट के बाद दूसरा जो महत्वपूर्ण क़ानून ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने भारतीय शासन के सम्बन्ध में पास किया वह सन् १८३३ का चार्टर-एक्ट था। इसके द्वारा भारत में सबसे पहले एक केन्द्रीय सरकार का जन्म हुआ, जिसे हम आमतौर पर भारत-सरकार[1] के नाम से पुकारते हैं। बंगाल के गवर्नर-जनरल को भारत के गवर्नर-जनरल की उपाधि दी गई व मद्रास और बम्बई की प्रेसिडेंसी-सरकारों को भारत के गवर्नर-जनरल और उसकी एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के बिलकुल मातहत कर दिया गया। यहाँतक कि इन दोनों प्रेसिडेंसियों को अपने प्रान्तों के लिए स्वतन्त्र रूप से क़ानून बनाने का अधिकार भी नहीं रहा जो कि उन्हें अभीतक प्राप्त था। तीनों प्रेसिडेंसियों के लिए क़ानून बनाने का एकमात्र अधिकार भारत-सरकार को दिया गया। लेकिन गवर्नर-जनरल को

१. क़ानूनी भाषा में भारत-सरकार से अभिप्राय गवर्नर-जनरल और उसकी एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल से ही होता है और गवर्नर-जनरल को वाइसराय के नाम से भी पुकारा जाता है।

यह आदेश दिया गया कि जब कभी वह और उसकी एग्जीक्यूटिव कौंसिल क़ानून बनानें के निमित्त बैठें तो एक और व्यक्ति को, जो क़ानून में पारंगत हो, अपनी कौंसिल में शामिल कर लिया करें। सन् १८५३ से इस सदस्य को, जो क़ानून-सदस्य के नाम से जाना जाने लगा था, एग्जीक्यूटिव कौंसिल की और कार्रवाईयों में भाग लेने का अधिकार भी दे दिया गया।

भारत की धारा-सभाओं पर क़ानून बनाने की जो तरह-तरह की पाबन्दियाँ लगाई गई हैं उनका श्रीगणेश भी पार्लमेण्ट के इसी चार्टर-एक्ट से होता है, क्योंकि इसी क़ानून के द्वारा गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल को यह आदेश दिया गया था कि वे भारत के लिए ऐसा कोई क़ानून न बनायें जो ब्रिटिश पार्लमेण्ट द्वारा पास किये हुए किसी क़ानून के विरुद्ध हो।

सारे भारत का शासन-भार सम्हालने के अलावा बंगाल प्रेसिडेंसी का शासन-भार भी भारत-सरकार यानी गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल पर ही रहा। मद्रास और बम्बई की प्रेसिडेंसियों की तरह बंगाल के लिए कोई पृथक् गवर्नर और कौंसिल नियुक्त नहीं हुए।

*नये प्रान्तों का निर्माण*

उत्तरी भारत में कम्पनी के इलाक़ों का विस्तार शीघ्रता से बढ़ता जा रहा था, और सब नये इलाके आमतौर पर बंगाल प्रेसिडेंसी में ही शामिल कर दिये जाते थे। भारत के गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल के लिए इतना काम सम्हालना मुश्किल होगया। इसलिए पार्लमेण्ट ने सन् १८३५ में एक क़ानून पास करके बंगाल प्रेसिडेंसी के पश्चिमोत्तर भाग को प्रेसिडेंसी से निकालकर एक अलग लेफ़्टिनेण्ट-गवर्नर के मातहत कर दिया। यह प्रान्त पश्चिमोत्तर प्रान्त के नाम से प्रसिद्ध हुआ,

लेकिन आजकल संयुक्तप्रान्त के नाम से जाना जाता है। बंगाल प्रेसिडेंसी के शेष भाग के लिए सन् १८५४ में एक अलग लेफ़्टिनेण्ट-गवर्नर नियुक्त किया गया। तब कहीं भारत-सरकार को प्रान्तीय शासन के काम से छुटकारा मिला।[१]

*लेजिस्लेटिव संस्था का जन्म*

पार्लमेण्ट के सन् १८५३ के क़ानून से भारत में क़ानून बनाने के लिए एक पृथक् लेजिस्लेटिव संस्था का जन्म हुआ। इसके अनुसार क़ानून बनाने के निमित्त गवर्नर-जनरल की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल में ६ सदस्यों की और नियुक्ति की गई, और उसके अधिवेशन भी खुलेआम होने लगे। लेकिन क़ानून की निगाह में लेजिस्लेटिव कौंसिल का कोई पृथक् अस्तित्व नहीं स्वीकार किया गया। क़ानून में तो इस कौंसिल को क़ानून बनाने के निमित्त गवर्नर-जनरल की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के विस्तार के रूप में ही माना गया। इसीलिए, इन नये शामिल किये गये सदस्यों को कौंसिल का पूरा सदस्य न कहकर 'अतिरिक्त सदस्य' के नाम से पुकारा जाता था।

इस प्रकार गवर्नर-जनरल की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल में जो 'अतिरिक्त सदस्य' क़ानून-निर्माण के निमित्त नियुक्त किये गये उनमें भी भारतीय कोई

१. संयुक्तप्रान्त और बंगाल के बाद सन् १८५९ में पंजाब के लिए, सन् १९०५ में पूर्वी बंगाल और आसाम के लिए और सन् १९१२ में बिहार व उड़ीसा के लिए पृथक् लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर नियुक्त किये गये।

लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरों की नियुक्ति आमतौर पर गवर्नर-जनरल द्वारा इण्डियन सिविल सर्विस के उच्च अफ़सरों में से की जाती थी, जब कि गवर्नरों की नियुक्ति सीधी विलायत से होती थी। मॉण्ट-फोर्ड सुधारों के बाद लेफ्टिनेण्ट-गवर्नरों की नियुक्ति सर्वथा बन्द होगई है और अब उनकी जगह गवर्नर ही नियुक्त किये जाते हैं।

नहीं लिया गया।[१] इसके अलावा, जितने भी सदस्य उसमें नियुक्त किये गये, वे सब सरकारी सदस्य ही होते थे।

### चीफ़ कमिश्नरियों का निर्माण

सन् १८५४ में पार्लमेण्ट ने एक क़ानून पास करके भारत-सरकार को चीफ़ कमिश्नरियों के निर्माण का अधिकार दिया। इस प्रकार भिन्न-भिन्न समयों पर मध्यप्रान्त, आसाम, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, दिल्ली, अजमेर-मेरवाड़ा, ब्रिटिश बलूचिस्तान, कुर्ग और अण्डमान-निकोबार के प्रान्त चीफ़ कमिश्नरों के मातहत रक्खे गये। इनमें से पहले दो प्रान्तों यानी मध्यप्रान्त और आसाम को तो सन् १९२१ में ही गवर्नरी का दर्जा देदिया गया, लेकिन पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त को सन् १९३२ में जाकर यह दर्जा प्राप्त हुआ। शेष सब प्रान्त अभीतक चीफ़ कमिश्नरों के ही मातहत हैं। चीफ़ कमिश्नरियों में और अन्य प्रान्तों में यह भेद है कि चीफ कमिश्नरियाँ सीधी भारत-सरकार के मातहत समझी जाती हैं। चीफ़ कमिश्नरों की नियुक्ति भी भारत-सरकार के हाथ में रहती है और उनके अधिकारों का फ़ैसला भी भारत-सरकार ही करती है। चीफ़ कमिश्नरी में जो चीफ़ कमिश्नर होता है वही आमतौर पर उस प्रान्त की प्रान्तीय सरकार माना जाता है, लेकिन इन प्रान्तों में भारत-सरकार कई अधिकारों को अपने हाथों में भी सुरक्षित रखती है।

### 'ग़दर' और कम्पनी के शासन का अन्त

सन् १८५७ के 'ग़दर' के बाद भारत में ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के

१. बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल के तत्कालीन प्रेसिडेण्ट सर चार्ल्स वुड ने तो, जबकि इस सम्बन्धी क़ानून पार्लमेण्ट में विचाराधीन था, इस बात को पार्लमेण्ट तक में कह डाला था कि इस कौंसिल में कोई भी भारतीय या ग़ैर-सरकारी सदस्य नहीं लिया जायगा।

शासन का अन्त हुआ। पार्लमेण्ट ने सन् १८५८ में एक क़ानून पास करके कम्पनी और उसके संचालक-मण्डल के शासन-सम्बन्धी सब अधिकारों को छीन लिया और भारत का शासन सीधा सम्राट् के सुपुर्द कर दिया। इस प्रकार उस दोहरे शासन का अन्त हुआ जो पिट के इण्डिया एक्ट द्वारा निर्मित बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल के कारण चला आरहा था। बोर्ड ऑफ़ कण्ट्रोल की जगह 'इण्डिया कौंसिल' ( India Council ) नाम की एक नई कौंसिल नियुक्त की गई, जिसके अध्यक्ष को सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट फ़ॉर इण्डिया ( Secretary of State for India ) यानी भारत-मन्त्री की उपाधि दी गई। भारत-सरकार और सब प्रान्तीय सरकारों को इसी नये अधिकारी यानी भारत-मन्त्री की सीधी मातहती में रक्खा गया, लेकिन उनकी स्थिति और संगठन में इस क़ानून के फलस्वरूप और कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ।

*प्रान्तों में कौंसिलों की स्थापना*

सन् १८५८ के क़ानून के बाद शीघ्र ही सन् १८६१ में पार्लमेण्ट ने इण्डियन कौंसिल्स एक्ट ( Indian Councils Act, 1861 ) के नाम से एक कानून और पास किया, जिसके द्वारा क़ानून बनाने के निमित्त गवर्नर-जनरल की एग्जीक्यूटिव कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या ६ से बढ़ाकर १२ करदी गई। इनमें कम-से-कम आधों का ग़ैर-सरकारी होना लाज़िमी था; और इनमें से कुछ जगहें भारतवासियों को भी दी गईं। लेकिन ये सब सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा ही नामजद किये जाते थे; निर्वाचित इनमें कोई भी न होता था।

गवर्नर-जनरल की एग्जीक्यूटिव कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाने के अलावा सन् १८६१ के एक्ट ने बम्बई और मद्रास प्रेसि-डेंसियों के गवर्नरों की एग्जीक्यूटिव कौंसिलों को भी उनके क़ानून बनाने

के अधिकार, जो उनसे सन् १८३३ में छीन लिये गये थे, वापस देदिये। लेकिन ऐसे क़ानून बनाने पर बन्दिश लगा दी गई जो गवर्नर-जनरल और उसकी एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल द्वारा बनाये हुए किसी क़ानून के ख़िलाफ़ जाते हों। दूसरे गवर्नर-जनरल से पूर्व-स्वीकृति लिये बग़ैर वे सरकारी आय, सरकारी क़र्ज़ा, वैदेशिक और फ़ौजी व नाविक मामलों, सिक्का, भारतीय दण्ड-विधान जैसे कई विषयों पर कोई क़ानून नहीं बना सकती थीं। तीसरे उनके हरेक क़ानून के लिए गवर्नर-जनरल की अन्तिम स्वीकृति भी आवश्यक थी। जिस प्रकार कि केन्द्र में क़ानून बनानें के निमित्त गवर्नर-जनरल की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल में अतिरिक्त सदस्य नियुक्त किये जाते थे, उसी प्रकार इन प्रेसिडेंसियों के गवर्नरों की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिलों में भी अतिरिक्त सदस्यों की नियुक्ति का प्रबन्ध किया गया।

सन् १८६१ के एक्ट में गवर्नर-जनरल को यह भी आदेश दिया गया कि वह बंगाल प्रेसिडेंसी में भी, जो सन् १८५४ से एक पृथक् लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर के मातहत करदी गई थी, क़ानून-निर्माण के लिए एक लेजिस्लेटिव कौंसिल की स्थापना करे। इस आदेश के फलस्वरूप, सन् १८६२ में, वंगाल प्रेसिडेंसी में भी क़ानून बनाने के लिए एक पृथक् कौंसिल की स्थापना की गई।[1]

१. ब्रिटिश भारत के शेष प्रान्तों में लेजिस्लेटिव कौंसिलों की स्थापना इस प्रकार हुई है—पश्चिमोत्तर प्रान्त में, जो आजकल संयुक्तप्रान्त के नाम से प्रसिद्ध है, सन् १८८६ में; पंजाव में सन् १८९७ में; विहार व उड़ीसा, मध्यप्रान्त और आसाम में सन् १९१२ में; पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में सन् १९३२ में, और कुर्ग की चीफ़ कमिश्नरी में सन् १९२३ में। उड़ीसा और सिन्ध ये दो नये प्रान्त सन् १९३६ में बनाये गये हैं; इनमें लेजिस्लेटिव असेम्वलियाँ सन् १९३७ में प्रान्तीय स्वराज्य की स्थापना के साथ-साथ स्थापित हुई हैं।

*पिछड़े हुए प्रान्तों में रेग्युलेशन-राज्य*

सन् १८७० में पार्लमेण्ट ने एक क़ानून पास करके गवर्नर-जनरल और उसकी एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल को यह अधिकार दिया कि वे ब्रिटिश भारत के ख़ास-ख़ास पिछड़े हुए प्रान्तों या प्रान्तों के इलाक़ों के लिए रेग्युलेशनों के ज़रिये क़ानून बनालें। इस प्रकार रेग्युलेशनों के ज़रिये जो क़ानून गवर्नर-जनरल और उसकी कौंसिल द्वारा बनाये जाते, वे कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों तक के सामने पेश नहीं किये जाते थे। इसकी वजह यह थी कि पार्लमेण्ट इन प्रदेशों में ठेठ पुराने ढर्रे से शासन करना चाहती थी; इसीलिए वह गवर्नर-जनरल की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के अलावा इन प्रदेशों के मामले में और किसीका दख़ल पसन्द नहीं करती थी।

यह ध्यान रहे कि एक्ट और रेग्युलेशनों की क़ानूनी स्थिति में केवल इतना भेद है कि जहाँ एक्ट से यह बोध होता है कि यह क़ानून किसी लेजिस्लेटिव कौंसिल या असेम्बली द्वारा पास किया गया है, रेग्युलेशन से बोध होता है कि यह क़ानून किसी लेजिस्लेटिव कौंसिल या असेम्बली ने नहीं बल्कि किसी एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल या इसी प्रकार की किसी और कार्यकारिणी सत्ता ने पास किया है।[१]

१. सन् १९३५ के गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के अमल में आने से पहले तक ब्रिटिश बलूचिस्तान, अजमेर-मेरवाड़ा, कुर्ग, पश्चिमोत्तर सीमा-प्रान्त, उड़ीसा, आसाम और अण्डमान-निकोबार आदि प्रान्तों के लिए भारत-सरकार रेग्युलेशनों के ज़रिये ही क़ानून बनाती रही है। अब नये एक्ट के अन्तर्गत इस अधिकार का प्रयोग केवल ब्रिटिश बलूचिस्तान और अण्डमान-निकोबार इन दो प्रान्तों में ही गवर्नर-जनरल द्वारा किया जा सकेगा। इन दो प्रान्तों के अलावा जिन-जिन प्रान्तों में एक्ट की धारा ९१ के अन्तर्गत बहिर्गत-क्षेत्र ( Excluded Areas ) या अर्ध-

सन् १८३३ से पहले जो क़ानून बनते वे सब रेग्युलेशन ही कहलाते थे। इसकी वजह यह है कि सन् १८३३ तक क़ानून बनाने का अधिकार गवर्नर-जनरल, गवर्नर और उनकी एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिलों को ही होता था। इन्हीं रेग्युलेशनों के मातहत अक्सर भारत-सरकार प्रमुख राजनैतिक नेताओं को शाही बन्दी के रूप में गिरफ्तार करती रही है।

*१८९२ का कौंसिल-एक्ट*

सन् १८९२ का इण्डियन कौंसिल्स एक्ट लॉर्ड डफ़रिन के उद्योग का फल था, जो कि उस समय भारत के वाइसराय और गवर्नर-जनरल थे। इसके अनुसार क़ानून-निर्माण के निमित्त वाइसराय की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाकर १६ करदी गई। कुछ ग़ैर-सरकारी सदस्यों की नियुक्ति के लिए निर्वाचन का सिद्धान्त रक्खा गया; शेष सब सदस्य वाइसराय द्वारा नामज़द ही होते रहे। यद्यपि कौंसिल में ग़ैर-सरकारी सदस्यों की संख्या पहले से बढ़ादी गई, मगर बहुमत उनका नहीं रक्खा गया। कौंसिल के सदस्यों को सरकारी सदस्यों से प्रश्न पूछने का अधिकार भी पहली बार दिया गया, और उन्हें सरकारी बजट पर आम बहस करने का मौक़ा भी दिया जाने लगा।

इसी प्रकार के परिवर्तन प्रान्तों की कौंसिलों में भी किये गये, लेकिन इस बात का ख़ास तौर से ध्यान रक्खा गया कि कहीं भी ग़ैर-सरकारी सदस्यों का बहुमत न होजाय। एकमात्र बम्बई ही इस नियम का अपवाद था, लेकिन वहाँ भी निर्वाचित ग़ैर-सरकारी सदस्यों को अल्पमत में ही रक्खा गया।

---

बहिर्गत-क्षेत्र ( Partially Excluded Areas ) क़ायम किये गये हैं उनमें उस प्रान्त का गवर्नर भी रेग्युलेशनों के ज़रिये क़ानून बना सकेगा।

## मॉर्ले-मिण्टो शासन-सुधार

सन् १८९२ के बाद अगला महत्त्वपूर्ण क़ानून पार्लमेण्ट ने सन् १९०९ में पास किया, जो 'सन् १९०९ का इण्डियन कौंसिल्स एक्ट' के नाम से प्रसिद्ध है और जो तत्कालीन भारत-मंत्री लॉर्ड मॉर्ले और वाइसराय लॉर्ड मिण्टो के उद्योग का फल था। इस एक्ट के द्वारा केन्द्रीय और प्रान्तीय कौंसिलों के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या पहले से और भी ज्यादा बढ़ादी गई। उदाहरणार्थ, केन्द्रीय कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाकर ६० तक और बंगाल-कौंसिल के अतिरिक्त सदस्यों की संख्या बढ़ाकर लगभग ४५ तक करदी गई। ग़ैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यों की संख्या भी पहले से बहुत ज्यादा बढ़ादी गई। लेकिन इस बात का हर जगह ध्यान रक्खा गया कि कहीं ग़ैर-सरकारी निर्वाचित सदस्यों का बहुमत न होजाय। बंगाल-कौंसिल ही इस नियम का अपवाद रही। शेष सब प्रान्तीय कौंसिलों में नामज़द और निर्वाचित दोनों प्रकार के ग़ैर-सरकारी सदस्यों का मिलकर तो थोड़ा-थोड़ा बहुमत रहा, लेकिन केवल निर्वाचित ग़ैर-सरकारी सदस्यों का नहीं। केन्द्रीय कौंसिलों में तो निर्वाचित और नामज़द दोनों प्रकार के ग़ैर-सरकारी सदस्यों का मिलकर भी बहुमत नहीं रक्खा गया।

भारत के राजनैतिक जीवन में पृथक् निर्वाचन-पद्धति का श्रीगणेश भी मॉर्ले-मिण्टो योजना के साथ ही होता है, जो फ़िलहाल केवल मुसलमानों के लिए ही जारी की गई थी।

कौंसिलों के निर्माण और संगठन में परिवर्तन करने के अलावा उनके अधिकारों में भी यह परिवर्तन किया गया कि उन्हें मौखिक प्रश्नोपप्रश्न करने और बजट एवं सार्वजनिक महत्व के अन्य विषयों पर सिफ़ारिश के तौर पर प्रस्ताव पास करने का अधिकार भी देदिया गया। लेकिन गवर्नर-

जनरल, गवर्नर या लेफ्टिनेन्ट-गवर्नर की अनुमति के बिना, जो कौंसिलों के प्रधान होते थे, कोई भी प्रस्ताव या प्रश्न नहीं किया जा सकता था।

इस एक्ट को अमल में लाने के साथ-साथ कई और महत्वपूर्ण परिवर्तन भी ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने ब्रिटिश भारत के शासन-विधान में किये। भारत की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली लेआई गई और दिल्ली को पंजाब से निकालकर भारत-सरकार के मातहत चीफ़ कमिश्नर का एक पृथक् प्रान्त बना दिया गया। पूर्वी बंगाल का जो इलाक़ा सन् १९०५ में लॉर्ड क़र्ज़न ने बंगाल से निकालकर आसाम में मिला दिया था वह वापस बंगाल में मिला दिया गया। बंगाल में लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर की जगह एक गवर्नर और कौंसिल की नियुक्ति की गई तथा बिहार व उड़ीसा के इलाके को बंगाल से निकालकर एक पृथक् लेफ्टिनेण्ट-गवर्नर और कौंसिल के मातहत रक्खा गया।

## मॉण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड सुधार

मॉर्ले-मिण्टो योजना से राजनैतिक प्रगति की ओर बढ़ते हुए भारत की आकांक्षायें भला कैसे सन्तुष्ट हो सकती थीं? क्योंकि कौंसिलों के अधिकार और कर्तव्य तो बढ़ा दिये गये, मगर शासन की मशीन उसी पुराने ढर्रे पर चलती थी।

१९१७ की घोषणा

उधर सन् १९१४ में यूरोपीय महायुद्ध छिड़ गया और उसमें भारतवासियों ने जी खोलकर ब्रिटेन की सहायता की। फलतः, भारतवासियों के सहयोग को बनाये रखने के लिए, ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को अपनी नीति में कुछ परिवर्तन करना पड़ा। २० अगस्त १९१७ को ब्रिटिश पार्लमेण्ट की कामन्स-सभा में एक प्रश्न के उत्तर में तत्कालीन भारत-मन्त्री मि० मॉण्टेगू ने जो घोषणा की, वह इसी नीति का परिणाम थी। उस घोषणा के महत्वपूर्ण शब्द इस प्रकार हैं:—

"ब्रिटिश सरकार का भारत में यह उद्देश्य है कि शासन के हरेक विभाग से भारतवासियों का सम्पर्क दिन-प्रतिदिन बढ़ाया जाय और स्वराज्य-संस्थाओं का शनैःशनैः विकास हो, ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अविच्छिन्न अंग भारत में धीरे-धीरे उत्तरदायी शासन-पद्धति स्थापित हो सके।"

इस घोषणा के कुछ दिनों बाद मि० मॉण्टेगू स्वयं भारत आये और वाइसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड के सहयोग से भारतीय शासन-सुधारों की एक नई योजना तैयार की, जो मॉण्टेगू-चेम्सफ़ोर्ड (और संक्षेप में, मॉण्ट-फ़ोर्ड) योजना के नाम से प्रसिद्ध है। यह योजना सन् १९२१ में अमल में लाई गई। सन् १९३५ के गवर्मेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट द्वारा जारी किये गये परिवर्तनों को ठीक-ठीक समझने के लिए इस योजना पर ज़रा विस्तार से विचार करना आवश्यक है। प्रान्तीय सरकार, प्रान्तीय धारा-सभा, केन्द्रीय सरकार, केन्द्रीय धारा-सभा, और भारत इन पाँच शीर्षकों के अन्तर्गत हम मॉण्ट-फ़ोर्ड योजना द्वारा भारत के शासन-विधान में जारी किये गये परिवर्तनों पर विचार करेंगे।

मॉण्टफ़ोर्ड योजना के फलस्वरूप प्रान्तीय सरकारों के संगठन में सबसे महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ कि मद्रास, बम्बई और बंगाल के अलावा

प्रान्तीय सरकार

संयुक्तप्रान्त, पंजाब, बिहार-उडीसा, मध्यप्रान्त और आसाम में भी गवर्नरों की नियुक्ति की गई। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त को सन् १९३२ में गवर्नरी का दर्जा मिला। जिन-जिन प्रान्तों में गवर्नरी क़ायम हुई उन-उन प्रान्तों में एक प्रकार की द्वैध शासन-पद्धति क़ायम की गई। प्रान्तीय शासन के विषयों को सुरक्षित और हस्तान्तरित इन दो भागों में बाँटा गया, जिनमें सुरक्षित विषयों का शासन गवर्नर और उसकी एग्जीक्यूटिव कौंसिल के और हस्तान्तरित विषयों का शासन गवर्नर और मिनिस्टरों के मातहत रक्खा

केन्द्रीय सरकार के ढाँचे में कोई विशेष परिवर्तन मॉण्टफ़ोर्ड-योजना ने नहीं किया। हाँ, शासन के विषय केन्द्रीय और प्रान्तीय इन दो भागों में बँट जाने के कारण केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकार के कार्य-क्षेत्र लगभग अलग-अलग बँट गये। केन्द्रीय विषयों की सूची में मुख्य विषय ये रक्खे गये: देश की रक्षा और सेना-सम्बन्धी मामले, वैदेशिक विषय, आयात-निर्यात कर, रेलें, डाक व तार विभाग, इन्कमटैक्स, सिक्का, दीवानी और फ़ौजदारी क़ानून, व्यापार और सरकारी क़र्ज़ वग़ैरा। इसके अलावा वे सब विषय भी केन्द्रीय विषयों की सूची में ही शुमार किये गये जिनका उल्लेख स्पष्टतः किसी भी सूची में नहीं किया गया था।

केन्द्रीय सरकार

केन्द्रीय धारा-सभा के संगठन में सबसे मुख्य परिवर्तन यह किया गया कि एक भवन की जगह दो भवनों की स्थापना की गई। इनमें पहले भवन का नाम लेजिस्लेटिव असेम्बली रक्खा गया और दूसरे भवन का कौंसिल ऑफ़ स्टेट। धारा-सभा को गवर्नर-जनरल की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल का ही एक विस्तार न समझकर पृथक् अस्तित्व दिया गया। गवर्नर-जनरल की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के सदस्यों को दोनों भवनों की कार्रवाई में भाग लेने का अधिकार दिया गया, लेकिन उन्हें मत देने का अधिकार उसी भवन में दिया गया जिसके कि वे गवर्नर-जनरल द्वारा सदस्य नामज़द किये जायें। लेजिस्लेटिव असेम्बली को गवर्नर-जनरल की मंजूरी से अपना अध्यक्ष चुनने का अधिकार भी दिया गया। किन्तु कौंसिल ऑफ़ स्टेट का अध्यक्ष अब भी गवर्नर-जनरल द्वारा ही नामज़द किया जाता है।

केन्द्रीय धारा-सभा

लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों की संख्या १४५ नियत की गई, जिनमें कम-से-कम ५/७ का निर्वाचित ग़ैर-सरकारी सदस्य होना आवश्यक

है। शेष सदस्य नामजद होते हैं, जिनमें से कम-से-कम ⅓ का ग़ैर-सरकारी होना जरूरी है। २६ सदस्य सरकारी अफ़सरों में से नियुक्त किये जाते हैं। बर्मा के पृथक्करण के बाद, अब लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों की संख्या घटाकर १४१ करदी गई है। असेम्बली का साधारण जीवन-काल ३ वर्ष है।

कौंसिल ऑफ़ स्टेट के सदस्यों की संख्या आजकल ५८ है, जिनमें ३२ निर्वाचित और २६ नामजद होते हैं। इसका जीवन-काल ५ साल है; लेकिन असेम्बली के जीवन-काल की तरह इसके जीवन-काल को भी गवर्नर-जनरल बढ़ा सकता है। यह आम तौर पर रईसों की कौंसिल है।

कौंसिल ऑफ़ स्टेट को केन्द्रीय सरकार के बजट पर विचार करने का तो अधिकार है, लेकिन वह उसमें काट-छाँट नहीं कर सकती। और लेजिस्लेटिव असेम्बली उसमें काट-छाँट तो कर सकती है, लेकिन सरकार उसके निर्णय से बाध्य नहीं है। इसी प्रकार कोई भी बिल तबतक क़ानून नहीं माना जा सकता जबतक कि गवर्नर-जनरल स्वीकृति न देदे और उसकी पूर्व-अनुमति के बिना केन्द्रीय धारा-सभा का कोई भी भवन कई प्रकार के बिलों पर विचार नहीं कर सकता। यही नहीं, गवर्नर-जनरल को ६ मास के लिए अपने विशेषाधिकार से आर्डिनेन्स बनाने का भी अधिकार है, जो उसे सबसे पहले ग़दर के बाद सन् १८६१ के इण्डियन कौंसिल्स एक्ट द्वारा मिला था।

केन्द्रीय धारा-सभा के किसी भी भवन द्वारा पास किये गये बिल के लिए यह जरूरी है कि वह उसी रूप में दूसरे भवन द्वारा पास हो। मत-भेद होने पर दोनों भवनों का संयुक्त अधिवेशन बुलाया जा सकता है, यद्यपि इसकी अभीतक कभी नौबत नहीं आई है।

भारत-मन्त्री का वेतन विलायत के ख़ज़ाने से दिया जाने लगा। इस

परिवर्तन का उद्देश्य यह था कि पार्लमेण्ट में जब उसके वेतन-सम्बन्धी माँग पेश की जाय तो पार्लमेण्ट के सदस्यों को भारत-सम्बन्धी मामलों पर विचार करने का एक और अवसर मिल जाय। लेकिन इण्डिया आफ़िस का और बहुत-सा ख़र्चा अब भी हिन्दुस्तान को ही भरना पड़ता है।

भारत-मन्त्री

*मॉण्टफ़ोर्ड-सुधारों के बाद*

द्वैध-शासन-पद्धति मॉण्टफ़ोर्ड-सुधारों का मुख्य आधार थी। लेकिन जिस रूप में यह प्रचलित की गई उससे किसी भी प्रान्त को सन्तोष नहीं हुआ। बंगाल और मध्यप्रान्त में तो इस शासन-पद्धति की वह मट्टी पलीद हुई कि गवर्नरों को कई बार अपने विशेषाधिकारों से शासन चलाना पड़ा। प्रान्तीय कौंसिलों ने मिनिस्टरों के लिए वेतन तक मंज़ूर करने से इंकार कर दिया। बंगाल में तो यहाँतक नौबत पहुँची कि जब गवर्नर ने मिनिस्टर नियुक्त किये तो कौंसिल ने उनका वेतन मंज़ूर नहीं किया, और जब कौंसिल ने वेतन मंज़ूर किया तो गवर्नर को अर्से तक कोई मिनिस्टर नहीं मिला। द्वैध-शासन-पद्धति के प्रति असन्तोष होने के कई कारण थे, जिनमें मुख्य यह था कि मिनिस्टरों और प्रान्तीय धारा-सभाओं को किसी भी विषय में वास्तविक अधिकार देने का प्रयत्न नहीं किया गया। हस्तान्तरित और सुरक्षित विषयों का बँटवारा इस प्रकार किया गया कि मिनिस्टर किसी भी महकमे में कोई क्रियात्मक सुधार कर ही नहीं सकते थे। उदाहरणार्थ, उद्योग-धन्धे तो रक्खे गये हस्तान्तरित विषयों में, लेकिन कारख़ाने, खानें, मज़दूर, बिजली वग़ैरा को सुरक्षित विषयों में टाल दिया गया। इसी प्रकार कृषि को तो हस्तान्तरित विषय बनाया गया, लेकिन आबपाशी (सिंचाई) को सुरक्षित विषयों में

द्वैध-शासन-पद्धति की असफलता

रक्खा। दूसरी बात यह थी कि मिनिस्टिरों को सरकारी अफसरों और कर्मचारियों के ऊपर शून्य के बराबर अधिकार दिये गये। लेजिस्लेटिव कौंसिलों में सरकारी सदस्यों के गुट ने मिनिस्टरों को अपने हाथ की कठपुतली बना लिया। अर्थ-विभाग एग्जीक्यूटिव कौंसिल के सदस्य के मातहत होने के कारण मिनिस्टरों को हस्तान्तरित विभागों के ख़र्च के लिए एग्जीक्यूटिव कौंसिल के सदस्यों का मुंह ताकना पड़ा। इन सब बातों के अलावा, हस्तान्तरित विभागों में भी भारत-मन्त्री और भारत-सरकार का हस्तक्षेप काफ़ी मात्रा में चलता रहा। उदाहरणार्थ, कोई भी मिनिस्टर भारत-मन्त्री की स्वीकृति के बिना ३,०००) मासिक से ऊपर का अफ़सर नियुक्त नहीं कर सकता था। संक्षेप में कहें तो जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों को वास्तविक अधिकार और जिम्मेदारी देने का कोई वास्तविक प्रयत्न नहीं किया गया। यही हाल केन्द्र में था। यद्यपि असेम्बली का विस्तार और प्रभाव बढ़ा दिया गया, लेकिन सरकार ने उसके निश्चयों पर अमल करने की कभी भी कोशिश नहीं की।

काँग्रेस मॉण्टफ़ोर्ड-सुधारों की प्रारम्भ से ही विरोधी थी। गांधीजी के नेतृत्व में उसने असहयोग-आन्दोलन के रूप में नये सुधारों का बहिष्कार किया। लेकिन काँग्रेसियों का एक दल कौंसिल-प्रवेश के पक्ष में था। पण्डित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धु चित्तरञ्जन दास इस दल के नेता थे। उन्होंने काँग्रेस से बाहर स्वराज-पार्टी का संगठन करके कौंसिलों में सरकार से मोर्चा लेना शुरू किया। सन् १९२४ में केन्द्रीय लेजिस्लेटिव असेम्बली में पण्डित मोतीलाल नेहरू ने यह प्रस्ताव पेश किया कि भारतवर्ष को औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जाय और एक गोलमेज-परिषद् का आयोजन किया जाय, जिसमें भारत में पूर्ण उत्तरदायी शासन की स्थापना के लिए नये विधान का ख़ाक़ा तैयार हो। यह प्रस्ताव भारी

बहुमत से पास हुआ, लेकिन फिर भी सरकार ने इसपर कोई ध्यान नहीं दिया। बाद में उसने सर अलेग्जैण्डर मुडीमैन की अध्यक्षता में एक कमेटी बिठाई, जो आमतौर पर शासन-सुधार-जाँच-समिति या रिफ़ार्म्स इनक्वायरी कमेटी ( Reforms Enquiry Committee ) के नाम से प्रसिद्ध है। लेकिन इस कमेटी की सिफारिशों का भी कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ।

सरकार के इस असहानुभूतिपूर्ण रुख़ से दिन-प्रतिदिन देश में असन्तोष की भावना बढ़ने लगी। अन्त में विवश होकर नवम्बर सन् १९२७ में सरकार को एक शाही कमीशन की नियुक्ति की घोषणा करनी पड़ी। इस कमीशन के सब सदस्य अंग्रेज थे, भारतवासी इसमें एक भी नहीं रक्खा गया। इस अपमान से भारत क्षुब्ध होगया और भारत के एक कोने-से लेकर दूसरे कोने तक कमीशन का ज़ोरों से बहिष्कार किया गया। इस कमीशन के चेयरमैन इंग्लैण्ड की लिबरल पार्टी के एक प्रमुख नेता सर जॉन साइमन थे, जिसकी वजह से इस कमीशन का नाम साइमन-कमीशन पड़ा।

साइमन-कमीशन की नियुक्ति

साइमन-कमीशन के बहिष्कार का यह परिणाम हुआ कि ब्रिटिश सरकार को अपनी नीति में परिवर्तन करना पड़ा। साइमन-कमीशन की रिपोर्ट अभी प्रकाशित भी न हुई थी कि वाइसराय लॉर्ड अर्विन ने अक्तूबर १९२९ में ब्रिटिश सरकार की अनुमति से दो महत्त्वपूर्ण घोषणायें कीं। इनमें पहली तो यह थी कि सम्राट् की सरकार (अर्थात् ब्रिटिश सरकार) की सम्मति में सन् १९१७ की घोषणा में यह बात निहित है कि भारत का वैधानिक लक्ष्य औपनिवेशिक स्वराज्य की प्राप्ति है। दूसरी घोषणा यह

गोलमेज परिषद् की घोषणा

थी कि साइमन-कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होजाने के बाद ब्रिटिश सरकार एक परिषद् का आयोजन करेगी, जिसमें वह ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के प्रतिनिधियों के साथ एकसाथ या अलग-अलग विचार-विनिमय करके यह निश्चय करेगी कि भारत के लिए किन-किन शासन-सुधारों की सिफ़ारिश पार्लमेण्ट से की जाय।

मई सन् १९३० में साइमन-कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई। इस रिपोर्ट का भी भारत में कमीशन जैसा ही विरोध हुआ। कमीशन ने मार्के की कोई ख़ास सिफ़ारिश नहीं की। मार्के की सिफ़ारिश सिर्फ़ एक थी; वह यह कि ब्रिटिश भारत के पुनस्संगठन का आधार फेडरल अथवा संघ-शासन हो, ताकि धीरे-धीरे सारा भारत ही एक कामनवेल्थ के रूप में सम्राट् की छत्र-छाया में आजाय।

कमीशन की रिपोर्ट

साइमन-कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित होजाने के बाद नवम्बर सन् १९३० से जनवरी सन् १९३१ तक लन्दन में गोलमेज परिषद् का अधिवेशन हुआ। काँग्रेस गोलमेज परिषद् के इस पहले अधिवेशन में शामिल नहीं हुई, क्योंकि सरकार की तरफ़ से इस बात का कोई आश्वासन नहीं दिया गया था कि इस परिषद् का एकमात्र उद्देश्य भारत के लिए औपनिवेशिक स्वराज्य का ख़ाका तैयार करना होगा।

गोलमेज़ परिषद्

इस परिषद् में देशी नरेशों की तरफ़ से यह घोषणा की गई कि वे ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों के संघ में इस शर्त पर शामिल होने के लिए तैयार हैं कि केन्द्रीय सरकार में उत्तरदायी शासन-पद्धति स्थापित की जाय। ब्रिटिश सरकार की तरफ़ से नरेशों की यह माँग इस शर्त पर स्वीकार करली गई, कि उत्तरदायी शासन-पद्धति के साथ कई प्रतिबन्धों और संरक्षणों का रक्खा जाना लाज़िमी होगा।

अप्रैल सन् १९३१ में काँग्रेस और सरकार में समझौता (गाँधी-अर्विन पैक्ट) होजाने की वजह से काँग्रेस गोलमेज परिषद् के दूसरे अधिवेशन में शामिल हुई। गाँधीजी काँग्रेस के एकमात्र प्रतिनिधि होकर लन्दन गये। कांग्रेस परिषद् में इस शर्त पर शामिल हुई, कि जो कुछ भी संरक्षण और प्रतिबन्ध रक्खे जायँगे वे भारत के हित में ही होंगे। लेकिन जब विलायत में परिषद् का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ, पार्लमेण्ट के आम चुनाव के फलस्वरूप मजदूर दल की सरकार हार गई थी और उसकी जगह 'राष्ट्रीय सरकार' क़ायम होचुकी थी, जिसमें अनुदार दल के प्रतिनिधियों का बहुमत था। इस राष्ट्रीय सरकार ने संरक्षणों और प्रतिबन्धों के बहाने सारे अधिकारों को ब्रिटेन के हित में ही सुरक्षित कर लिया।

सन् १९३२ के अन्त में ब्रिटिश सरकार ने छोटे पैमाने पर गोलमेज परिषद् का एक और अधिवेशन किया, लेकिन चूंकि कांग्रेस फिर सविनय अवज्ञा आन्दोलन शुरू कर चुकी थी इसलिए वह उसमें शरीक नहीं हुई।

मार्च सन् १९३३ में ब्रिटिश सरकार ने भारत के भावी शासन-विधान के सम्बन्ध में अपने अन्तिम प्रस्ताव एक व्हाइट पेपर अथवा श्वेत-पत्र (सरकारी खरीता) के रूप में प्रकाशित किये। जितने भी प्रतिबन्ध और संरक्षण शासन-विधान की किसी योजना में ठूँसे जा सकते हैं उनको ब्रिटेन के हित में इस योजना में ठूँसने की कोशिश की गई। फलतः, साइमन-कमीशन की रिपोर्ट की तरह, श्वेत-पत्र का भी भारत के एक कोने से दूसरे कोने तक घोर विरोध किया गया।

श्वेत-पत्र या सरकारी खरीता

लेकिन सरकार श्वेत-पत्र के प्रस्तावों पर भी बाद में क़ायम न रही। लार्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में पार्लमेण्ट के लगभग ३० सदस्यों की एक

और कमेटी श्वेत-पत्र के प्रस्तावों पर विचार करने के लिए नियुक्त की गई, जो आमतौर पर ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी सिलेक्ट कमेटी के नाम से प्रसिद्ध है। लगभग १८ महीने के गुप-चुप विचार-विमर्श के बाद, अक्तूबर १९३४ में, इस कमेटी ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। इस रिपोर्ट का भारत के सब दलों ने तीव्र बहिष्कार किया, क्योंकि यह रिपोर्ट लौट-फिरकर उस साइमन-कमीशन की रिपोर्ट के प्रस्तावों पर ही वापस आ पहुँची थी जिसका कि भारत पहले ही एकस्वर से विरोध कर चुका था।

ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की नियुक्ति

५ फ़रवरी १९३५ को ब्रिटिश सरकार ने ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की योजना के आधार पर पार्लमेण्ट की कामन्स-सभा में एक बिल पेश किया। लगभग ४ महीनें तक यह बिल कामन्स-सभा के विचाराधीन रहा। इस बीच में सरकार नें ब्रिटेन के अनुदार दल (कंज़रवेटिवों) और भारत के देशी नरेशों को खुश करने की ग़रज़ से सैकड़ों आवश्यक-अनावश्यक संशोधन इस बिल में किये। अन्त में ४ जून १९३५ को कामन्स-सभा में बिल का तृतीय वाचन पास हुआ और बिल लॉर्ड-सभा में पेश किया गया। लॉर्ड-सभा में भी संशोधनों का वही सिलसिला जारी रहा जो कामन्स-सभा से शुरू हुआ था। आखिर २४ जुलाई को लॉर्ड-सभा में भी बिल का तृतीय वाचन समाप्त हुआ। इसके बाद बिल एकबार फिर कामन्स-सभा के सामने आया और कामन्स-सभा ने फिर कुछ संशोधन किये। इन संशोधनों के लॉर्ड-सभा द्वारा स्वीकृत होजाने पर २ अगस्त १९३५ को बिल पर सम्राट् की स्वीकृति मिली और बिल गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की शक्ल में क़ानून की किताब में आगया।

नया शासन-विधान

गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की योजना को पार्लमेण्ट ने आमतौर

पर दो भागों में बाँटा है--(१)'प्रान्तीय स्वराज्य' और (२) 'फेडरेशन'। ब्रिटिश सरकार ने फिलहाल एक्ट की उन धाराओं को जारी किया है जिनका आमतौर पर 'प्रान्तीय स्वराज्य' से सम्बन्ध है। ये धारायें १ अप्रैल सन् १९३७ से अमल में लाई गई हैं। एक्ट का शेष भाग तब अमल में आयगा जब कि फ़ेडरेशन की स्थापना की जायगी।

: १ :

# नये विधान का 'प्रान्तीय स्वराज्य'

*ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का दावा*

नये शासन-विधान के मातहत १ अप्रैल १९३७ से ब्रिटिश भारत के ११ प्रान्तों में प्रान्तीय शासन की जो योजना अमल में आई है, ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का दावा है कि उसके द्वारा ब्रिटिश सरकार ने उन प्रान्तों को 'प्रान्तीय विषयों' के शासन में वास्तविक उत्तरदायित्व यानी जिम्मेदारी देने का प्रयत्न किया है और यही वास्तव में 'प्रान्तीय स्वराज्य' है। लेकिन यदि कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति ब्रिटिश सरकार के इस 'प्रान्तीय स्वराज्य' के असली स्वरूप को पहचानने की थोडी भी कोशिश करे तो उसे फ़ौरन ही पता चल जायगा कि ब्रिटिश सरकार के 'प्रान्तीय स्वराज्य' और सच्चे उत्तरदायी शासन में थोड़ा-बहुत नहीं बल्कि जमीन-आसमान का फ़र्क़ है।

*प्रान्तीय स्वराज्य का वास्तविक अभिप्राय*

प्रान्तीय स्वराज्य का वास्तविक अभिप्राय यह है कि प्रान्तीय विषयों के शासन के लिए एकमात्र जनता के निर्वाचित प्रतिनिधि ही जिम्मेदार हों, और उन विषयों के शासन में किसी भी बाह्य सत्ता का हस्तक्षेप न हो। अर्थात् न तो केन्द्रीय सरकार और न ब्रिटिश सरकार ही किसी प्रकार का दख़ल दे सकें। दूसरी गोलमेज परिषद् के अवसर पर गांधीजी ने जब इस बात की घोषणा की थी कि यदि ब्रिटिश सरकार इस समय भारत के प्रान्तों को प्रान्तीय स्वराज्य देने के लिए तैयार होजाय तो वह उसे

पर दो भागों में बाँटा है---(१)'प्रान्तीय स्वराज्य' और (२) 'फेडरेशन'। ब्रिटिश सरकार ने फिलहाल एक्ट की उन धाराओं को जारी किया है जिनका आमतौर पर 'प्रान्तीय स्वराज्य' से सम्बन्ध है। ये धारायें १ अप्रैल सन् १९३७ से अमल में लाई गई हैं। एक्ट का शेष भाग तब अमल में आयगा जब कि फ़ेडरेशन की स्थापना की जायगी।

प्रान्त की सब अदालतों के ऊपर एक हाईकोट होगा, जिसके जजों की नियुक्ति यथापूर्व ब्रिटिश सरकार के हाथ में रहेगी। मिनिस्टरों को हाईकोट से सम्बन्ध रखनेवाले मानलों में आमतौर पर कोई दखल देने का अधिकार न होगा।

ब्रिटिश पार्लमेण्ट, भारत-मन्त्री और वाइसराय भी गवर्नरों के जरिये प्रान्त के शासन में उचित हस्तक्षेप कर सकेंगे।

*प्रान्तों का नया क्रम*

एक्ट की धारा ४६ के अनुसार प्रान्तीय स्वराज्य की यह योजना इन ११ प्रान्तों में जारी की गई है--(१) मद्रास,(२) बम्बई,(४) बंगाल, संयुक्तप्रान्त, (५) पंजाब,(६) बिहार, (७) मध्यप्रान्त व बरार, (८) आसाम, (९) पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, (१०) उडीसा और(११)सिन्ध। इन प्रान्तों को एक्ट में गवर्नर-प्रान्त का दर्जा दिया गया है।

इन प्रान्तों के अलावा ६ प्रान्त ब्रिटिश भारत में और हैं, जिनमें चीफ़ कमिश्नरियाँ क़ायम हैं और जिनमें शासन का काम केन्द्रीय सरकार चीफ कमिश्नरों के जरिये चलाती है। ये चीफ कमिनरियाँ इस प्रकार हैं—(१) ब्रिटिश बलूचिस्तान, (२)दिल्ली,(३) अजमेर-मेरवाड़ा,(४) कुर्ग, (५) अण्डमान-निकोवार और (६) पन्थ पीपलोदा। इन प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य की योजना अभीतक जारी नहीं कीगई है। कुर्ग के अलावा इनमें से किसी प्रान्त में कोई लेजिस्लेटिव कौंसिल भी नहीं है।

वर्मा---वर्मा जो अभीतक ब्रिटिश भारत का ही एक अंग था, १ अप्रैल १९३७ से ब्रिटिश भारत से अलग कर दिया गया है। वर्मा के लिए जो शासन-विधान ब्रिटिश सरकार ने बनाया है उसके मूल सिद्धान्त भी लगभग वही हैं जो ब्रिटिश भारत और ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के लिए ब्रिटिश सरकार नें निर्धारित किये हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि

वर्मा में अब केन्द्रीय और प्रान्तीय दो सरकारें जुदा-जुदा न रहेंगी और वर्मा भारतीय संघ (फेडरेशन) में शामिल न होगा। वर्मा-सरकार अब भारत-सरकार के मातहत न होकर सीधी ब्रिटिश सरकार और भारत-मन्त्री के (जो वर्मा के मामलों में वर्मा-मन्त्री कहलायगा) मातहत रहेगी।

अदन—वर्मा के साथ-साथ अदन भी १ अप्रैल सन् १९३७ से ब्रिटिश भारत से अलग कर दिया गया है और अब उसका शासन सीधा ब्रिटिश सरकार के कॉलोनियल आफिस के मातहत रहेगा।

: २ :

# गवर्नर

*गवर्नरों की नियुक्ति*

गवर्नरों की नियुक्ति, एक्ट की धारा ४८ के अनुसार, कमीशन के जरिये सम्राट् द्वारा की जाती है। प्रत्येक गवर्नर को उसकी नियुक्ति पर जो नियुक्ति-पत्र मिलता है उसीका नाम कमीशन है। और चूंकि ब्रिटेन में सम्राट् हरेक मामले में अपने मिनिस्टरों की सलाह पर निर्भर रहते हैं, इसलिए गवर्नरों की नियुक्ति वास्तव में भारत-मंत्री के हाथ में ही समझनी चाहिए, चाहे कमीशन सम्राट् के हस्ताक्षरों से ही क्यों न जारी किया जाय।

इस नियुक्ति-पत्र के अलावा, जो प्रत्येक गवर्नर को उसके नाम से जारी किया जाता है, दो और ख़रीतों से भी गवर्नर का सम्बन्ध रहता है। इनमें पहले को 'लेटर्स पेटेण्ट' अर्थात् 'खुला पत्र' और दूसरे को 'इन्स्ट्रूमेण्ट ऑफ़ इन्स्ट्रक्शन' यानी 'हिदायतनामा' या 'आदेश-पत्र' कहते हैं।

वाइसराय की नियुक्ति की भाँति गवर्नरों की भी नियुक्ति आमतौर पर ५ साल के लिए की जाती है, हालांकि ऐसा कोई क़ानूनी नियम नहीं है। मद्रास, बम्बई और बंगाल इन तीन प्रान्तों के, जो पहले प्रेसिडेंसी कहलाते थे, गवर्नर आमतौर पर वे अंग्रेज होते हैं जो ब्रिटेन के सार्वजनिक या पार्लमेण्टरी जीवन में प्रमुख स्थान पा चुके हों। शेष प्रान्तों के गवर्नर आमतौर पर इण्डियन सिविल सर्विस के उन उच्च अंग्रेज अफ़सरों में से लिये जाते हैं जो किसी प्रान्तीय सरकार या केन्द्रीय

सरकार के सेक्रेटरी पद तक पहुँच गये हों या वाइसराय या किसी गवर्नर की एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिल के सदस्य हों। प्रान्तों में एग्ज़ीक्यूटिव कौंसिलों के न रहने पर अब केवल प्रान्तीय सरकारों के सेक्रेटरी ही इस पद के लिए चुने जा सकते हैं। वैसे, जबतक गवर्नरों को प्रान्तीय शासन के कार्य में हस्तक्षेप करने के वास्तविक अधिकार मिले हुए हैं, यह किसी भी हालत में उपयुक्त नहीं मालूम पड़ता कि जो सेक्रेटरी मिनिस्टरों के मातहत काम कर चुके हों उन्हींको मिनिस्टरों के ऊपर गवर्नर नियुक्त किया जाय। हिज़ हाइनेस आगाख़ाँ के नेतृत्व में जो प्रतिनिधि-मण्डल ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी के सामने पेश हुआ था उसने इस बात पर जोर भी दिया था कि भविष्य में सिविल सर्विस के अफ़सरों को गवर्नरी का मौक़ा न दिया जाय; लेकिन कमेटी ने आगाख़ाँ-प्रतिनिधि-मण्डल की मांग की लापरवाही से अवहेलना करते हुए अपनी रिपोर्ट में लिखा है, कि "हम कोई कारण नहीं देखते कि सम्राट् के हाथों को इस प्रकार बांधने से क्या लाभ होगा। गवर्नरी के लिए यदि योग्य-से-योग्य व्यक्ति मिल सकते हैं तो केवल सिविल सर्विस के सदस्यों में से ही।"[1]

यह ध्यान रखने की बात है कि भारतीय नेता आमतौर पर सिविलियन गवर्नरों के बजाय उन गवर्नरों को ज्यादा पसन्द करते हैं जो सीधे विलायत के सार्वजनिक और पार्लमेण्टरी जीवन में से लिये जाते हैं, क्योंकि उनके विचारों में अपेक्षाकृत कुछ उदारता होती है।

एक बात और। प्रान्त के निवासियों, प्रान्त की धारा-सभा या प्रान्त के मन्त्रि-मण्डल को गवर्नर की नियुक्ति के बारे में दख़ल देने का न तो कोई अधिकार दिया गया है और न ही उनसे इस बारे में कोई पूछ-ताछ की जायगी। इस भय से कि कहीं उपनिवेशों ( डोमिनियन ) की भांति

१. ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट, पेज १०[illegible]।

भारत में भी यह माँग न उठाई जाय कि गवर्नर और गवर्नर-जनरल की नियुक्ति मिनिस्टरों की सलाह पर होनी चाहिए, पार्लमेण्टरी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में इस बात का खुलासा कर दिया है कि गवर्नर-जनरल या गवर्नरों की नियुक्ति के बारे में किसीभी मन्त्रि-मण्डल को सलाह देने का अधिकार नहीं होगा।[१]

*गवर्नरों का भारतीयकरण*

उपनिवेशों की इस माँग के सिद्धान्त को कि गवर्नर उस उपनिवेश का ही कोई निवासी हो, ब्रिटिश सरकार कई वर्ष पहले स्वीकार कर चुकी है, और जहाँतक हमें मालूम है इसपर अमल भी होने लगा है, लेकिन हिन्दुस्तान में गवर्नरों के भारतीयकरण की ओर ब्रिटिश सरकार ने अभीतक कोई ध्यान नहीं दिया है। इसकी वजह है, और वह यह है कि जहाँ उपनिवेशों में ब्रिटिश सरकार ने उत्तरदायी शासन-पद्धति को यथासम्भव अक्षरशः जारी करने का प्रयत्न किया है वहाँ भारत में उसका ऐसा कोई इरादा नहीं दिखाई देता; नहीं तो गवर्नरों को इतने अधिक अधिकारों और विशेषाधिकारों से क्यों विभूषित किया जाता? जबतक गवर्नरों को वास्तव में अपने अधिकारों और विशेषाधिकारों को प्रयोग में लाने का अवसर दिया जाता है और जबतक वे इनके प्रयोग में भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी न होकर ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश पार्लमेण्ट के प्रति उत्तरदायी हैं, तबतक गवर्नरों का भारतीयकरण न तो सम्भव ही दिखाई देता है और न उससे कुछ विशेष लाभ ही है। हाँ, यदि गवर्नरों को भारतीय जनता के प्रति उत्तरदायी बना दिया जाय, या उन्हें केवल उपाधिधारी गवर्नर का स्थान दे दिया जाय, तो उनके भारतीयकरण से लाभ हो सकता है।

१. ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट; पैरे ६७ और १६५।

### लेटर्स पेटेण्ट

प्रत्येक प्रान्त के गवर्नर के ओहदे का निर्माण सम्राट् के 'लेटर्स पेटेण्ट' द्वारा किया गया है। नये विधान के अमल में आने से कुछ काल पूर्व ही ये लेटर्स पेटेण्ट जारी किये गये थे। इनके द्वारा प्रत्येक सरकारी अधिकारी और भारतवासी को यह आदेश किया गया है कि वे हर वक़्त गवर्नर को सहायता देते रहें। इन लेटर्स पेटेण्ट के मातहत प्रत्येक गवर्नर को स्वास्थ्य सुधारने या अपने किसी प्राइवेट काम के लिए भारत से बाहर जाने के लिए भारत-मन्त्री से चार महीने तक की छुट्टी माँगने का अधिकार है। चार महीने से ज्यादा की छुट्टी देने के लिए भारत-मन्त्री को पार्लमेण्ट के दोनों भवनों में सफ़ाई पेश करनी पड़ेगी।

### आदेश-पत्र

गवर्नर को अपने अधिकारों के प्रयोग में किन-किन सिद्धान्तों पर चलना चाहिए और भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में अपने अधिकारों का प्रयोग किस तरह करना चाहिए आदि बातों का उल्लेख सम्राट् के एक आदेश-पत्र यानी हिदायतनामे द्वारा गवर्नर को किया जाता है, जिसे एक्ट में 'इंस्ट्रूमेण्ट ऑफ़ इंस्ट्रक्शन' कहा गया है। एक्ट द्वारा गवर्नरों को जितने भी अधिकार दिये गये हैं उनका प्रयोग गवर्नर क़ानून की निगाह में स्वतंत्र रूप से नहीं बल्कि सम्राट् के प्रतिनिधि की हैसियत से ही करते हैं, अतः गवर्नरों को अपने नियंत्रण में रखने का यह एक सुगम मार्ग सम्राट् ने अपने हाथ में रक्खा है। नये विधान में इन आदेश-पत्रों का वास्तविक महत्त्व यह है कि ब्रिटिश सरकार इन आदेश-पत्रों के द्वारा गवर्नमेंट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में परिवर्तन किये बिना भी भारत में उत्तरदायी शासन की मात्रा बहुत कुछ कम कर सकती है, क्योंकि एक्ट की कोई भी धारा सम्राट् को गवर्नरों को यह आदेश देने से नहीं

रोकती कि भविष्य में गवर्नर अपने सब अधिकारों का प्रयोग प्रान्त की धारा-सभा और मन्त्रि-मण्डल की मर्जी के माफ़िक ही किया करें। इन आदेश-पत्रों के बारे में यह बात भी अच्छी तरह जान लेना जरूरी है कि इनके द्वारा गवर्नरों को आमतौर पर कोई अधिकार सम्राट् द्वारा नहीं प्रदान किये जाते। इनके द्वारा तो गवर्नरों को केवल यह निर्देश किया जाता है कि वे अपने उन अधिकारों का, जो गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत उन्हें दिये गये हैं, प्रयोग किस प्रकार करें।

*आदेश-पत्रों के बारे में पार्लमेण्टरी नीति में परिवर्तन*

अभीतक जो आदेश-पत्र भारत के या अन्य उपनिवेशों के गवर्नर-जनरल या गवर्नरों को सम्राट् द्वारा जारी किये जाते थे उनमें पार्लमेण्ट कोई दख़ल नहीं देती थी। लेकिन गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट ने इस पुराने नियम को एकदम उठाकर ताक पर रख दिया है। एक्ट की धारा ५३ के अनुसार अब सम्राट् द्वारा जारी किये प्रत्येक आदेश-पत्र के लिए पार्लमेण्ट के दोनों भवनों की मंजूरी भी लेनी पडेगी। आदेश-पत्रों के मामले में इस प्रकार पार्लमेण्ट के दोनों भवनों को और ख़ासकर लॉर्ड-सभा को अधिकार देने का एकमात्र कारण यही दिखाई देता है कि ब्रिटेन का अनुदार-दल, जिसका आजकल कामन्स-सभा में बहुमत है, यह नहीं चाहता कि भविष्य में भारतीय आकांक्षाओं से सहानुभूति रखनेवाले किसी दल का कामन्स-सभा में बहुमत होजाय तो वह दल लॉर्ड-सभा की मर्जी के बिना ही गवर्नरों के आदेश-पत्रों में परिवर्त्तन कर सके और भारत में उत्तरदायी शासन की मात्रा बढ़ा सके।

*आदेश-पत्रों के अन्तर्गत गवर्नरों के कर्तव्य*

प्रान्तीय स्वराज्य के प्रारम्भ होने पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों के गवर्नरों को जो नये आदेश-पत्र जारी किये गये हैं वे एक-दूसरे से लगभग मिलते-जुलते

है। केवल पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और मध्यप्रान्त व बरार के गवर्नरों के आदेश-पत्रों में एक-दो धारायें विशेष हैं। यहाँ हम इन आदेश-पत्रों की कुछ ऐसी धाराओं का ही वर्णन करेंगे जिनका गवर्नर के किसी अधिकार-विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं है बल्कि जिनके द्वारा गवर्नरों को कुछ ख़ास कर्त्तव्यों को पूरा करने का ज़िम्मा दिया गया है।

आदेश-पत्रों की दूसरी धारा के अनुसार गवर्नरों को यह आदेश किया गया है कि वे अपने नियुक्ति-पत्र को पूर्ण गम्भीरता के साथ प्रान्त के हाई-कोर्ट के चीफ जस्टिस के सामने, या उसकी अनुपस्थिति में उसी हाईकोर्ट के किसी और जज के सामने, किसी के ज़रिये पढ़वायें और प्रकाशित करें।

तीसरी धारा के अनुसार प्रत्येक गवर्नर को यह आदेश किया गया है कि वह प्रान्त के हाईकोर्ट के चीफ़ जस्टिस या अन्य किसी जज के सामने पहले सम्राट् के प्रति वफ़ादारी यानी राजभक्ति की शपथ ले और फिर इस बात की शपथ ले कि वह अपने ओहदे का काम ठीक तरह से निबाहेगा और निष्पक्ष रहकर न्यायपूर्वक शासन करेगा।

चौथी धारा के अनुसार गवर्नर को यह अधिकार और आदेश दिया गया है कि वह या तो स्वयं या किसी और व्यक्ति द्वारा प्रत्येक मिनिस्टर को, जिसे वह नियुक्त करे, पहले तो इस आशय की शपथ दिलाये कि वह अपने सम्राट् की सचाई के साथ नौकरी बजावेगा और निष्पक्ष होकर देश के क़ानून व रिवाजों के मुताबिक़ हरेक व्यक्ति के साथ न्याय करेगा, और दूसरे यह कि मिनिस्टरी के ओहदे के कारण ज्ञात हुई किसी भी बात को वह किसी के सामने तबतक ज़ाहिर न करेगा जबतक कि ऐसा करना मिनि-स्टरी के ओहदे के फ़र्ज़ को अदा करने के लिए ज़रूरी न हो, या जबतक कि गवर्नर—अर्थात् गवर्नर के विशेषाधिकारों से सम्बन्ध रखने वाले किसी मामले में जब बात सम्बन्ध रखती हो—ख़ासतौर पर अनुमति न दे दे।

छठी धारा के अनुसार गवर्नर को इस बात की याद दिलाई गई है कि चूंकि गवर्नर के भारत से ग़ैरहाजिर रहने में बहुत हानि होने की सम्भावना है, हमारा गवर्नर भारत छोड़कर तबतक बाहर नहीं जायगा जबतक कि वह हमसे या हमारे भारत-मन्त्री के ज़रिये छुट्टी न लेले।

बीसवीं धारा के अनुसार गवर्नर को यह आदेश दिया गया है कि वह (१) सुशासन जारी रखने की हरचन्द कोशिश करे; (२) नैतिक, सामाजिक और आर्थिक हित को बढ़ानेवाले उपायों को जारी करने और प्रान्त के सार्वजनिक जीवन एवं शासन में जनता के प्रत्येक वर्ग को उचित स्थान दिलानेवाले उपायों को जारी करने की हरचन्द कोशिश करे; और (३) हरेक वर्ग एवं धर्म के अनुयायियों में सहयोग एवं सद्भावना और धार्मिक विश्वासों एवं भावनाओं के प्रति सहिष्णुता उत्पन्न करने की हरचन्द कोशिश करे और इन आदेशों का वह, जब भी कभी उसे अपने अधिकारों का प्रयोग करने का मौक़ा हो, हर समय ख़याल रक्खे।

*गवर्नरों के खर्चे*

एक्ट के तीसरे परिशिष्ट में उन खर्चों का जिक्र किया गया है जो प्रत्येक प्रान्त में उस प्रान्त के गवर्नर के वेतन और उसकी आन-बान व शान को बनाये रखने के लिए करने पड़ेंगे। इस परिशिष्ट की धारा १ के अनुसार गवर्नरों को निम्न प्रकार वार्षिक वेतन दिया जाया करेगा :—

वेतन

| | |
|---|---|
| मद्रास, बम्बई, बंगाल और संयुक्तप्रान्त में | १,२०,००० रु० |
| पंजाब और बिहार में | १,००,००० ,, |
| मध्यप्रान्त व बरार में | ७२,००० ,, |
| आसाम, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और सिन्ध में | ६६,००० ,, |

छुट्टी जाने पर उन्हें निम्न प्रकार मासिक वेतन मिला करेगा :—

| | |
|---|---|
| मद्रास, बंगाल, बम्बई, संयुक्तप्रान्त, पंजाब और बिहार के गवर्नरों को | ४,००० रु० |
| मध्यप्रान्त व बरार के गवर्नर को | ३,००० ,, |
| शेष प्रान्तों के गवर्नरों को | २,७५० ,, |

परिशिष्ट की धारा २ के अन्तर्गत सम्राट् को यह अधिकार दिया गया है कि वह उन भत्तों की रक़में समय-समय पर आर्डर-इन-कौंसिलों द्वारा नियत करते रहें जिनका गवर्नरों को दिया जाना उनकी आन-बान व शान के लिए जरूरी हो। इसी प्रकार धारा ४ के अनुसार सम्राट् को आर्डर-इन-कौंसिल द्वारा यह निश्चय करने का अधिकार दिया गया है कि गवर्नरों को चुंगी वग़ैरा के मामले में क्या-क्या रिआयतें प्राप्त होंगी। गवर्नरों को दिये जानेवाले इन विभिन्न भत्तों और चुंगी-सम्बन्धी रिआयतों के बारे में जो आर्डर-इन-कौंसिल सम्राट् ने जारी किया है, वह बड़ा मनोरंजक है। इसके अनुसार प्रत्येक गवर्नर को नियुक्ति के समय सरञ्जाम ( equipment ) और सफ़र-खर्च के लिए कई सौ पौण्ड भत्ते लेने का अधिकार होगा। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के गवर्नरों के लिए भिन्न-भिन्न रक़में नियत की गई हैं। उदाहरण के लिए उन भत्तों को देखिए, जो संयुक्तप्रान्त के गवर्नर को नियुक्ति के समय मिला करेंगे। संयुक्तप्रान्त का गवर्नर नियुक्ति के समय

भत्ते

यूरोप में निवास करता हो तो उसे एकमुश्त १,८०० पौण्ड लेने का अधिकार होगा, जबकि भारत या सीलोन में निवास करता हो और भारत का सरकारी नौकर न हो तो वह एकमुश्त ६५० पौण्ड लेने का अधिकारी होगा। लेकिन यदि वह भार। में सरकारी नौकर हो (गवर्नर के अलावा), तो उसे एकमुश्त ४०० पौण्ड मिलेंगे। और यदि वह किसी दूसरे प्रान्त का पहले से गवर्नर हो, तो उसे २०० पौण्ड सरञ्जाम के लिए मिलेंगे और अपना, अपने परिव।र का तथा अपने सारे अमले का असली सफर-खर्च (मय असवाव के लेजाने के खर्च के) उसे मिलेगा। यदि नियुक्ति के समय वह यूरोप, भारत या सीलोन के अलावा और कहीं रहता हो तो उसे ९०० पौण्ड सरंजाम के लिए और अधिक-से-अधिक ३०० पौण्ड सफ़र-ख़र्च के लिए मिलेंगे, जिसकी असली रक़म हरेक मर्तबा भारत-मंत्री द्वारा निर्धारित की जाया करेगी।

इन भत्तों के अलावा भारत-मंत्री को समय-समय पर हरेक गवर्नर के लिए यह निश्चय करने का भी अधिकार होगा कि उसे अपने लिए मोटरें खरीदने, उन्हें अपने प्रान्त में लेजाने और उनका बीमा कराने के लिए प्रान्त का कितना रुपया ख़र्च करने का अधिकार होगा।

सरकारी कोठियाँ

प्रत्येक प्रान्त के गवर्नर को प्रान्त की उन सरकारी कोठियों में बिना कोई भाड़ा दिये रहने का अधिकार होगा जो उपर्युक्त आर्डर-इन-कौंसिल के एक परिशिष्ट में दी हुई हैं। ये सरकारी कोठियाँ इस प्रकार हैं:—

मद्रास के गवर्नर के लिए—मद्रास, ग्विण्डी और उटकमण्ड की सरकारी कोठियाँ।

बम्बई के गवर्नर के लिए—बम्बई, महाबलेश्वर और गणेशखिण्ड की सरकारी कोठियाँ।

बंगाल के गवर्नर के लिए—कलकत्ता, ढाका, दार्जिलिंग और बारकपुर की सरकारी कोठियां।

संयुक्तप्रान्त के गवर्नर के लिए—इलाहाबाद, लखनऊ और नैनीताल की सरकारी कोठियां।

पंजाब के गवर्नर के लिए—लाहौर की सरकारी कोठी और शिमला का बार्न्स कोर्ट।

बिहार के गवर्नर के लिए—पटना और रांची की सरकारी कोठियां और नटेरहाट की शैले ( Chalet at Naterhat )।

मध्यप्रान्त व बरार के गवर्नर के लिए—नागपुर, पचमढ़ी और जबलपुर की सरकारी कोठियां।

आसाम के गवर्नर के लिए—शिलांग की सरकारी कोठी मय पीक-काटेज के।

पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के गवर्नर के लिए—पेशावर और नथियागली की सरकारी कोठियां।

सिन्ध के गवर्नर के लिए—करांची की सरकारी कोठी।

उड़ीसा के गवर्नर के लिए—पुरी की सरकारी कोठी और प्रान्त की नई राजधानी में गवर्नर के लिए बनाई जानेवाली नई सरकारी कोठी।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि यदि प्रान्तीय सरकार खर्च की बचत के खयाल से प्रान्त में केवल एक ही राजधानी रखने का निश्चय कर भी ले, तब भी गवर्नर इस बात के लिए बाधित नहीं कि वह भी प्रान्तीय सरकार के निश्चय के साथ चले। भारत-मन्त्री ने यह अधिकार भी अपने हाथ में सुरक्षित रखा है कि यदि गवर्नरों के लिए और सरकारी कोठियों की जरूरत हो, या उनमें सजावट करने की जरूरत पड़े, तो ऐसा करने के लिए गवर्नर को प्रान्तीय खजाने से रुपया खर्च करने का अधिकार दे दें।

उपर्युक्त आर्डर-इन-कौंसिल की ५ वीं और ७ वीं धाराओं के अनुसार प्रत्येक गवर्नर को बिना किसी प्रकार का भाड़ा दिये हुए प्रान्त

सवारी-खर्च

के उन सब सरकारी रेलवे सैलूनों, मोटरों, नावों, मोटर-बोटों और हवाई जहाजों को अपने काम में लाने का अधिकार होगा जो उसके या उसके किसी पूर्वाधिकारी के काम के लिए भारत-मंत्री की स्वीकृति से अलग रक्खे या ख़रीदे गये हों। भारत-मंत्री को यह भी अधिकार होगा कि वह उचित समझे तो किसी भी प्रान्त के गवर्नर को प्रान्तीय सरकार के ख़र्चे से और हवाई जहाज खरीदने का अधिकार देदे।

इन सब सवारियों को बाक़ायदा चालू रखने और इनमें रद्दोबदल व मरम्मत आदि करने में जो ख़र्चा होगा वह सब सरकारी खजाने से दिया जायगा और भारत-मन्त्री को उनकी रक़में वगैरा नियत करने का अधिकार होगा।

उपर्युक्त सब ख़र्चे के अलावा प्रत्येक प्रान्त के गवर्नर को सफ़र-ख़र्च के

सफ़र-ख़र्च

लिए हर साल नीचे लिखे अनुसार सरकारी खजाने से और भी रुपया लेने का अधिकार होगा:—

मद्रास १,१३,०००); बम्बई ६५,०००); बंगाल १,१२,०००); संयुक्तप्रान्त १,२५,०००); पंजाब ६०,०००); बिहार ६०,०००); मध्यप्रान्त व बरार २६,०००); आसाम ५५,०००); पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त १८,०००); सिन्ध ३०,०००); उडीसा ३५,०००)।

प्रत्येक गवर्नर को हर साल अपनी कोठियों के लिए नीचे दी हुई

फर्नीचर व उसकी मरम्मत

तालिका के अनुसार नया फर्नीचर खरीदने का अधिकार होगा:—

मद्रास १४,०००); बम्बई २३,०००); बंगाल २०,५००); संयुक्त-

प्रान्त ४,०००); पंजाब ३,०००); विहार ४,५००); मध्यप्रान्त व बरार २,९००); आसाम १,०००); पश्चिमोत्तर सीमप्रान्त १,७५०); उडीसा २,५००); सिन्ध १,०००)।

और पुराने फर्नीचर की मरम्मत वगैरा के लिए प्रत्येक प्रान्त के गवर्नर को हर साल नीचे लिखे अनुसार रुपया ख़र्च करने का अधिकार होगा :—

मद्रास २१,५००); बम्बई २५,०००); बंगाल ३४,०००); संयुक्त-प्रान्त १४,५००); पञ्जाब १०,५००); बिहार १३,०००); मध्यप्रान्त व बरार ९,८००); आसाम ४,०००); पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ५,०००); सिन्ध ४,०००); उडीसा ८,०००)।

भोजन-ख़र्च

गवर्नरों के भोजन के लिए इस प्रकार रुपया ख़र्चा किया जा सकेगा—मद्रास १८,०००); बम्वई २५,०००); बंगाल २५,०००); संयुक्तप्रान्त १५,०००); पंजाब १२,०००); बिहार ६,०००); मध्यप्रान्त व बरार ६,०००); आसाम ६,०००); पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ६,०००); सिन्ध ८०००); उडीसा ६०००)।

मिलिटरी-सेक्रेटरी

प्रत्येक गवर्नर क़ो एक सेक्रेटरी के अलावा, जिसका ज़िक्र हम आगे करेंगे, एक मिलिटरी सेक्रेटरी या ए०डी०सी० रखने का भी अधिकार होगा। इस मिलिटरी-सेक्रेटरी और उसके दफ़्तर वग़ैरा के लिए विभिन्न प्रान्तों में गवर्नर इतना रुपया ख़र्च कर सकेंगे—मद्रास१,१२,०००); बम्वई १,३६,०००); बंगाल १,२१,०००); संयुक्तप्रान्त १,१६,०००); पंजाब ८८,०००); बिहार ७५,०००); मध्यप्रान्त व बरार ६१,०००); आसाम ६३,०००); पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त ६८,०००); सिन्ध ५९,०००); उडीसा ४०,०००)।

मिलिटरी-सेक्रेटरी के ख़र्च के अलावा मद्रास, बम्बई और बंगाल के गवर्नरों को बैण्ड, बॉडीगार्ड और अपने अलग अस्पताल के लिए इतना रुपया और ख़र्च करने का अधिकार होगाः—

| | बैण्ड | बॉडीगार्ड | अस्पताल |
|---|---|---|---|
| मद्रास | ४३,०००) | १,२६,०००) | ३६,०००) |
| बम्बई | ४५,०००) | ७८,०००) | ३३,६००) |
| बंगाल | ५०,०००) | १,००,०००) | ३४,८००) |

**मुतफ़र्रिक ख़र्च**

ऊपर दिये हुये सब ख़र्चों के अलावा गवर्नरों को मुतफ़र्रिक ख़र्च के लिए भी भारी-भारी रक़में दी जाया करेंगी, जो विभिन्न प्रान्तों में इस प्रकार होंगीः—

मद्रास ९२,०००); बम्बई १,०८,०००); बंगाल १,००,०००); संयुक्तप्रान्त २३,०००); पंजाब २१,७००); बिहार २१,७००); मध्यप्रान्त व बरार १६,६००); आसाम १४,१००); पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त १४,१००); सिन्ध १७,८००); उडीसा ~~३५,०००)~~। ११,५००)

**चुंगी की रिआयतें**

गवर्नरों को अपने माल के लिए चुंगी की भी रिआयत रहेगी। उनके नीचे लिखे माल पर कोई चुंगी नहीं लगेगीः—

(अ) गवर्नर और उसके परिवार के काम में आनेवाली सब चीज़ें;

(ब) गवर्नर के परिवार और उसके मेहमानों के लिए मँगाये जानेवाले खाद्य पदार्थ एवं मादक द्रव्य;

(स) गवर्नर की कोठियों के लिए मँगाया जानेवाला फ़र्नीचर; और

(द) गवर्नर की मोटरें।

प्रान्तीय धारा-सभा को उपर्युक्त सब ख़र्चों में न तो काट-छाँट करने का और न उनमें और किसी प्रकार के हस्तक्षेप का कोई अधिकार होगा। इन विषयों पर धारा-सभा में कोई वादविवाद भी न हो सकेगा।

## गवर्नरों के सेक्रेटरी

प्रान्तीय स्वराज्य से पूर्व गवर्नरों के जो प्राइवेट सेक्रेटरी होते थे, उनका आमतौर पर गवर्नर के सरकारी कर्त्तव्यों और गवर्नर के सरकारी पत्र-व्यवहार से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहता था। गवर्नर का सरकारी पत्र-व्यवहार आमतौर पर उन सेक्रेटरियों द्वारा किया जाता था, जो प्रान्तीय सरकार के सेक्रेटरी कहलाते हैं। प्राइवेट सेक्रेटरी आमतौर पर गवर्नर के व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन से सम्बन्ध रखनेवाली बातों में गवर्नर की मदद करते थे। लेकिन प्रान्तीय स्वराज्य के प्रारम्भ होने पर गवर्नर के इस प्राइवेट सेक्रेटरी को मिलिटरी सेक्रेटरी या ए० डी० सी० का नाम दिया गया है और गर्वनर को उसके सरकारी काम-काज में मदद देने के लिए एक नये सेक्रेटरी की जगह क़ायम की गई है, जिसका ओहदा होगा 'सेक्रेटरी टू दी गवर्नर'। यह उन सेक्रेटरियों से भिन्न होगा जो आमतौर पर सारी प्रान्तीय सरकार के सेक्रेटरी कहलाते हैं।

एक्ट की धारा ३०५ के अनुसार प्रत्येक गवर्नर को अपना सेक्रेटरी नियुक्त करने और उस सेक्रेटरी की सहायता के लिए अन्य कर्मचारी और क्लर्क वग़ैरा नियुक्त का अधिकार होगा। ये सेक्रेटरी और क्लर्क वग़ैरा सीधे गवर्नर के मातहत रहेंगे और प्रान्तीय मंत्रि-मण्डल या किसी मिनिस्टर को इन्हें किसी प्रकार का हुक्म देने का कोई अधिकार न होगा। इनके वेतन वग़ैरा पर जो ख़र्च होगा उसे नियत करने और इनके दफ़्तर वग़ैरा के प्रबन्ध का एकमात्र अधिकार गवर्नर को होगा। प्रान्तीय धारा-सभा को इनके वेतन और दफ़्तर के अन्य ख़र्च में काट-छाँट करने का कोई अधिकार न होगा।

ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि इस सेक्रेटरी का काम बहुत ज़िम्मेदारी का होगा, "इसलिए वह ऐसा व्यक्ति

होना चाहिए जो प्रान्त के मामलों से खूब वाक़िफ़ हो और जिसका शासन से खूब घनिष्ठ सम्बन्ध रहा हो।"[1] इससे साफ़ ज़ाहिर होता है कि इस नई जगह के निर्माण का मुख्य उद्देश्य है गवर्नर को उसके उन अधिकारों के प्रयोग में मदद देना जिनको वह नये विधान के अन्तर्गत मिनिस्टरों और धारा-सभा के विरुद्ध काम में लासकेगा। ऐसी हालत में निश्चय ही गवर्नर के सेक्रेटरी का पद बहुत महत्त्व का है। यह तो निश्चय है कि आमतौर पर यह सेक्रेटरी अंग्रेज़ सिविलियनों में से ही चुना जायगा। इसलिए उससे यह उम्मीद करना कि विशेषाधिकारों के प्रयोग में वह गवर्नर को भारतीय जनता के हितों के अनुकूल सलाह देगा, व्यर्थ ही है।

१. ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट; पैरा १०१।

: ३ :

# गवर्नरों के अधिकार

गवर्नरों के अधिकार त्रिविध हैं, और एक्ट में उनका वर्णन भी तीन प्रकार की भाषा में किया गया है। पहली श्रेणी में वे अधिकार आते हैं जिनका प्रयोग गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से करेगा (i.e. those powers in which he will exercise 'his discretion.'); दूसरी श्रेणी के अधिकार वे हैं जिनमें वह 'अपने विवेक' से काम लेगा ( i.e. those powers in which he will exercise 'his individual judgment.'); और तीसरी श्रेणी में वे अधिकार हैं जिनके बारे में एक्ट में केवल गवर्नर शब्द का प्रयोग किया गया है।

त्रिविध अधिकार

एक्ट में किसी जगह इस बात की व्याख्या नहीं की गई है कि गवर्नरों के अधिकारों के बारे में तीन प्रकार की भाषा का प्रयोग करने का क्या अभिप्राय है। लेकिन गवर्नरों को एक्ट की धारा ५३ के अन्तर्गत जो आदेश-पत्र जारी किये गये हैं उनकी धारा ८ से इसपर बहुत-कुछ प्रकाश पड़ता है। इस धारा में कहा गया है, कि "उन अधिकारों को छोड़कर जिनके प्रयोग में उसे 'अपनी मर्ज़ी' काम में लाने को कहा गया है, गवर्नर अपने सब अधिकारों के प्रयोग में अपने मिनिस्टरों की सलाह पर चलेगा, बशर्ते कि ऐसा करने से उसे अपनी 'ख़ास ज़िम्मेदारियों' का पालन करने में और अपने उन अधिकारों का ठीक-ठीक प्रयोग करने में, जिनमें उसे 'अपने विवेक' से काम लेने के लिए कहा गया है, कोई

बाधा न पड़े। इन दोनों हालतों में अपने मिनिस्टरों की सलाह के बावजूद गवर्नर को यह अधिकार होगा कि वह अपने अधिकारों का प्रयोग ठीक उसी प्रकार करे जिस प्रकार कि उपर्युक्त जिम्मेदारियों और अधिकारों का पालन करने के लिए उसे ठीक प्रतीत हो।"

मिनिस्टरों की सलाह

आदेश-पत्रों की इस धारा से स्पष्ट है कि दूसरी और तीसरी श्रेणी के अधिकारों के प्रयोग के बारे में, अर्थात् एक तो उन अधिकारों के प्रयोग के बारे में जिनके प्रयोग के लिए गवर्नर को 'अपना विवेक' काम में लाने के लिए कहा गया है और दूसरे उन अधिकारों के प्रयोग के बारे में जिनमें केवल गवर्नर शब्द का प्रयोग किया गया है, मिनिस्टर गवर्नरों को अपनी सलाह देने के अधिकारी होंगे और गवर्नरों के लिए भी आमतौर पर यह लाज़िमी होगा कि वे पहले अपने मिनिस्टरों की सलाह लें; लेकिन पहली श्रेणी के अधिकारों के प्रयोग के बारे में, अर्थात् उन अधिकारों के प्रयोग में जिनके लिए गवर्नर को 'अपनी मर्ज़ी' काम में लाने के लिए कहा गया है, न तो एक्ट में ही यह कहा गया है कि मिनिस्टर उनके बारे में गवर्नरों को सलाह दे सकेंगे या नहीं और न आदेश-पत्रों में ही। मगर जहाँ एक ओर एक्ट और आदेश-पत्रों में यह बात नहीं कही गई कि मिनिस्टर इन मामलों में गवर्नर को सलाह दे सकेंगे या नहीं, एक्ट और आदेश-पत्रों में न तो ऐसी कोई बन्दिश है कि मिनिस्टर इन मामलों में गवर्नर को सलाह नहीं दे सकते और न ही इस बात की कोई बन्दिश है कि गवर्नर इन मामलों में अपने मिनिस्टरों से सलाह नहीं ले सकते। इसका यह मतलब हुआ कि पहली श्रेणी के अधिकारों के बारे में भी अगर गवर्नर चाहें तो मिनिस्टरों से सलाह ले सकते हैं, और मिनिस्टर गवर्नर को सलाह दे सकते हैं; अर्थात्, उनके रास्ते में कोई क़ानूनी बन्दिश नहीं है।

रही मिनिस्टरों की सलाह पर अमल करने न करने की बात। सो जहाँतक प्रथम श्रेणी के अधिकारों का सवाल है, ब्रिटिश सरकार की ओर से जब इसी बात का कोई संकेत नहीं हुआ कि गवर्नरों को इन मामलों में भी अपने मिनिस्टरों से सलाह लेलेना आवश्यक है, तब यह तो कहा ही कैसे जा सकता है कि यदि मिनिस्टर इन मामलों में कोई सलाह गवर्नरों को दें भी तो गवर्नर उस सलाह को मानने के लिए बाध्य होंगे ? इसलिए प्रथम श्रेणी के अधिकारों के बारे में ब्रिटिश सरकार की फ़िलहाल यही नीति समझनी चाहिए कि पहले तो गवर्नर उनके प्रयोग के बारे में आमतौर पर मिनिस्टरों से सलाह लेंगे ही नहीं, और यदि लेंगे भी तो वे उसे मानने के लिए बाध्य न होंगे। दूसरी श्रेणी के अधिकारों के बारे में, अर्थात् उन अधिकारों के बारे में जिनमें गवर्नरों को 'अपने विवेक' से काम लेने के लिए कहा गया है, यह तो निश्चित ही है कि गवर्नर मिनिस्टरों से सलाह लेने के लिए बाध्य हैं और मिनिस्टरों को भी सलाह देने का अधिकार है, लेकिन, जहाँतक उस सलाह के मानने न मानने का सवाल है, आदेश-पत्रों द्वारा यह स्पष्ट कर दिया गया है कि यदि गवर्नर उपयुक्त समझें तो वे उस सलाह के ख़िलाफ़ भी काम कर सकेंगे। शेष सब अधिकारों के बारे में भी, अर्थात् उन अधिकारों के बारे में जिनमें केवल 'गवर्नर' शब्द का प्रयोग किया गया है, यह बात स्पष्ट ही है कि गवर्नर अपने मिनिस्टरों से सलाह लेने के लिए बाध्य हैं और मिनिस्टरों को सलाह देने का अधिकार है। जहाँतक उस सलाह को मानने न मानने का सवाल है, एक्ट और आदेश-पत्रों को पढ़कर यही निष्कर्ष निकलता है कि आमतौर पर गवर्नर इन मामलों में अपने मिनिस्टरों की सलाह पर चलने के लिए बाध्य होंगे; लेकिन जब वे यह समझें कि मिनिस्टरों की सलाह पर चलने से वे अपनी 'ख़ास ज़िम्मेदा-

रियों का पालन करने में समर्थ न होसकेंगे, तब वे अपने मिनिस्टरों की सलाह के ख़िलाफ़ भी काम कर सकेंगे।

इस सिलसिले में यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि इस बात का फ़ैसला करने का कि अपने अधिकारों के प्रयोग में किस समय गवर्नर अपने मिनिस्टरों की सलाह पर अमल करेगा और किस समय नहीं, एकमात्र अधिकार गवर्नर को ही दिया गया है और उसका निर्णय इस विषय में अन्तिम होगा।[1] इसका मतलब यह हुआ कि यदि मिनिस्टर, धारा-सभा या जनता यह समझें कि गवर्नर अपने मिनिस्टरों की सलाह के ख़िलाफ़ अमल करके अपने अधिकारों का दुरुपयोग कर रहा है, तो उनके हाथ में कोई ऐसा ज़रिया नहीं जिससे वे गवर्नर को मिनिस्टरों की सलाह पर अमल करने के लिए बाध्य कर सकें। फ़ेडरल कोर्ट, हाईकोर्ट या और कोई अदालत इस मामले में कोई दख़ल नहीं देसकती। एक्ट में तो यहाँतक कहडाला गया है कि कोई भी अदालत इस बात की तहक़ीक़ात तक नहीं कर सकती कि मिनिस्टरों ने किसी मामले में गवर्नर को क्या सलाह दी।[2]

अदालतों का दख़ल

एक्ट की धारा ५४ में गवर्नर को अपनी 'मर्ज़ी' और 'विवेक' वाले अधिकारों के प्रयोग में यदि किसीके मातहत किया गया है तो केवल वाइसराय के। एक्ट की धारा ५४ के अनुसार, "जहाँतक गवर्नर के 'अपनी मर्ज़ी' के और 'अपने विवेक' के अधिकारों का सवाल है, प्रत्येक प्रान्त का गवर्नर वाइसराय के मातहत रहेगा और उसे वाइसराय की उन सब आज्ञाओं का पालन करना पड़ेगा जो उसे वाइसराय 'अपनी मर्ज़ी' से दे; लेकिन वाइसराय

हस्तक्षेप का हक़

१. गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट; धारा ५०, उपधारा ३।

२. गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट; धारा ५१, उपधारा ४।

कोई भी आज्ञा देते समय इस बात की तहक़ीक़ात कर लेगा कि वह सम्राट् द्वारा जारी किये हुए किसी आदेश-पत्र के ख़िलाफ़ तो ऐसी आज्ञा नहीं दे रहा है।" और चूँकि एक्ट की धारा १४ और ३१४ के अन्तर्गत वाइसराय अपने अधिकारों के प्रयोग में स्वयं भारत-मन्त्री के मातहत होगा, ब्रिटिश सरकार प्रान्तीय मामलों में जब चाहे तब भारत-मन्त्री, वाइसराय और गवर्नरों के ज़रिये आसानी से हस्तक्षेप कर सकेगी।

गवर्नर, वाइसराय, भारत-मन्त्री और ब्रिटिश सरकार के अधिकारों के उपर्युक्त क़ानूनी विश्लेषण से यह बात स्पष्ट है कि ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने 'प्रान्तीय स्वराज्य' का जो ढाँचा नये एक्ट के द्वारा तैयार किया है उसकी सफलता एकमात्र इस बात पर निर्भर है कि गवर्नर, वाइसराय, भारत-मन्त्री और ब्रिटिश सरकार मिनिस्टरों को वास्तव में किस हद तक जनता की मर्ज़ी के माफ़िक काम करने देते हैं। अगर ब्रिटिश सरकार चाहे तो गवर्नरों के सारे अधिकारों का प्रयोग मिनिस्टरों पर ही छोड़ दे और अगर वह चाहे तो मिनिस्टरों के मार्ग में पग-पग पर रोड़ा अटकाने के लिए गवर्नरों को आदेश देदे। चूँकि प्रान्तों में गवर्नरों को ही सारे क़ानूनी अधिकारों का केन्द्र बनाया गया है और मिनिस्टर केवल उसके सलाहकार हैं, और चूँकि गवर्नर अपने अधिकारों के प्रयोग में वाइसराय और भारत-मन्त्री के मातहत हैं, इसलिए ब्रिटिश सरकार के प्रान्तीय मामलों में हस्तक्षेप करने के अधिकारों में कोई क़ानूनी अड़चन किसी हालत में पड़ ही नहीं सकती। किस समय मिनिस्टरों को कितने अधिकारों को अमल में लाने का अधिकार और अवसर प्राप्त होगा, इसका फ़ैसला एकमात्र ब्रिटिश सरकार, भारत-मन्त्री, वाइसराय और गवर्नरों की मर्ज़ी पर निर्भर है। एक्ट में मिनिस्टरों के अधिकारों का तो कहीं वर्णन ही नहीं है; उसमें जहाँ-कहीं वर्णन है वहाँ गवर्नरों के अधिकारों का ही

है। मिनिस्टरों को जो कुछ भी स्थिति प्राप्त है वह केवल गवर्नर के सलाहकार होने की वजह से ही है।

शासन-कार्य के तीन विभाग

शासन-कार्य को आजकल आमतौर पर तीन मुख्य विभागों में बांटा जाता है—(१) क़ानून-निर्माण, (२) शासन, और (३) न्याय। इनमें पहला विभाग क़ानून बनाता है, दूसरा उनपर अमल करता और कराता है, और तीसरा उनका भंग करनेवालों यानी अपराधी के दण्ड का निर्णय और क़ानून की व्याख्या करता है।

इनमें जहाँतक प्रान्त के शासन और क़ानून-निर्माण विभागों का सम्बन्ध है, गवर्नर को उनके ऊपर अकथनीय और अवर्णनीय अधिकार दिये गये हैं; लेकिन जहाँतक प्रान्त के न्याय-विभाग का सम्बन्ध है, वह आमतौर पर गवर्नर के हस्तक्षेप से मुक्त होगा। प्रान्तीय हाईकोर्ट ज्यादातर गवर्नर-जनरल और ब्रिटिश सरकार के मातहत होंगे। अतः हम पहले गवर्नर के उन अधिकारों का ही वर्णन करेंगे जिनको वह प्रान्त के रोज़मर्रा के शासन में प्रयोग कर सकेगा और साथ ही उसके न्याय-विभाग सम्बन्धी कुछ अधिकारों पर भी प्रकाश डालेंगे। गवर्नर के उन अधिकारों का वर्णन जिनका प्रयोग वह प्रान्त के क़ानून-निर्माण विभाग यानी प्रान्तीय धारा-सभाओं के सम्बन्ध में कर सकेगा, इसके बाद किया जायगा। और सबसे अन्त में गवर्नर के कुछ ऐसे क़ानून-निर्माण सम्बन्धी तथा अन्य अधिकारों का वर्णन करेंगे, जिनका प्रयोग वह केवल विशेष परिस्थितियों में कर सकेगा।

## रोजमर्रा के शासन में गवर्नर का स्थान

एक्ट की धारा ४९ में गवर्नर को प्रान्त के रोज़मर्रा के शासन का केन्द्र बताया गया है। प्रान्तीय शासन से सम्बन्ध रखनेवाले जितने

भी अधिकार हैं उनका प्रयोग गवर्नर के नाम पर ही होगा। लेकिन इसी धारा में साथ ही यह भी कहा गया है कि यदि प्रान्तीय धारा-सभा चाहे तो एक्ट पास करके मातहत अधिकारियों, अदालतों और म्यूनिसिपल संस्थाओं को भी प्रान्तीय शासन-सम्बन्धी अधिकार दे सकती है। मगर प्रान्तीय धारा-सभा के प्रत्येक एक्ट के लिए गवर्नर या वाइसराय की मंजूरी आवश्यक है, इसलिए अगर गवर्नर या वाइसराय यह समझें कि मातहत अधिकारियों को अमुक अधिकार देना उपयुक्त नहीं है तो वे धारा-सभा के उस एक्ट को नामंजूर कर सकते हैं।

रोज़मर्रा के शासन का केन्द्र

प्रान्त के रोज़मर्रा के शासन में आमतौर पर गवर्नर के ऐसे अधिकार बहुत कम हैं जिनमें वह 'अपनी मर्ज़ी' से काम कर सके और अपने मिनिस्टरों की सलाह लेने के लिए बाध्य न हो। लेकिन प्रान्त के रोज़मर्रा के शासन में ऐसे अधिकारों का नम्बर काफ़ी ज्यादा है जिनमें उसे 'अपने विवेक' से काम लेने के लिए कहा गया है; अर्थात् वे अधिकार जिनमें वह अपने मिनिस्टरों की सलाह लेने के लिए तो बाध्य होगा लेकिन मानने के लिए नहीं। और सबसे ज्यादा नम्बर गवर्नर के उन अधिकारों का है जिनमें केवल गवर्नर शब्द का प्रयोग किया गया है और जिनमें वह न केवल अपने मिनिस्टरों की सलाह लेने के लिए बल्कि उसे मानने के लिए भी बाध्य होगा, बशर्ते कि वह यह न समझे कि ऐसा करने से उसको 'खास ज़िम्मेदारियों' के पालन में बाधा पड़ती है।

ख़ास ज़िम्मेदारियां

पहले हम गवर्नरों की उन 'ख़ास ज़िम्मेदारियों' का वर्णन करेंगे जो प्रत्येक प्रान्त के गवर्नर के लिए एकसी हैं। एक्ट की धारा ५२ के अनुसार, ये 'ख़ास ज़िम्मेदारियां' इस प्रकार हैं:—

"(१) प्रान्त या उसके किसी भाग के अमन व चैन को हर भयंकर ख़तरे से बचाना।

(२) अल्पसंख्यक जातियों के वाजिब हितों की रक्षा करना।

(३) वर्तमान तथा भूतपूर्व सरकारी नौकरों और उनके आश्रितों के उन अधिकारों की जो एक्ट द्वारा या एक्ट के अन्तर्गत उनको दिये गये हैं या उनके लिए क़ायम रक्खे गये हैं, और उनके वाजिब हितों की रक्षा करना।

(४) ब्रिटिश हितों के प्रति भेदभाव-पूर्ण व्यवहार को रोकना।

(५) प्रान्त के उन क्षेत्रों के अमन व सुशासन की रक्षा करना जो एक्ट के अन्तर्गत अर्ध-वहिर्गत क्षेत्र घोषित किये गये हैं।

(६) किसी भी भारतीय रियासत के अधिकारों की और उसके नरेश के अधिकारों व शान-शौकत की रक्षा करना।

(७) उन आज्ञाओं का पालन करना जो वाइसराय क़ानूनन **'अपनी मर्ज़ी'** से गवर्नर को दे।"

इनके अलावा मध्यप्रान्त और बरार के गवर्नर की यह एक और ख़ास ज़िम्मेदारी होगी कि प्रान्त की आय का एक उचित भाग बरार में या बरार के लिए व्यय हो। इसी प्रकार सिन्ध के गवर्नर की यह एक और ख़ास जिम्मेदारी होगी कि सक्खर की नहर-योजना पर ठीक तरह से अमल होता रहे।

जिन-जिन प्रान्तों में वहिर्गत-क्षेत्र क़ायम किये गये हैं उन प्रान्तों के गवर्नरों की एक और ख़ास जिम्मेदारी इस बात को देखने की होगी कि वहिर्गत-क्षेत्रों के शासन में, जो आमतौर पर मिनिस्टरों के अधीन न होंगे, मिनिस्टरों के और किसी काम की वजह से बाधा तो नहीं पड़ती। ब्रिटिश सरकार को इन क्षेत्रों के शासन की इतनी फ़िक्र है कि उसने केवल इन क्षेत्रों के शासन को ही मिनिस्टरों के अधिकार-क्षेत्र

से वाहर नहीं कर दिया, वल्कि गवर्नर को ख़ास जिम्मेदारी के रूप में यह अधिकार भी दिया है कि शेष प्रान्त के शासन में मिनिस्टरों की किसी कार्रवाई से इन क्षेत्रों के शासन में कोई वाधा पड़े तो वह मिनिस्टरों की सलाह पर अमल न करे। इसी प्रकार जिन प्रान्तों के गवर्नरों को ख़ास गवर्नर-जनरल के एजेण्ट की हैसियत से कुछ फ़र्ज़ अदा करने पड़ेंगे उन प्रान्तों के गवर्नरों की इस वात के देखने की एक और ख़ास जिम्मेदारी होगी कि उन फ़र्ज़ों के अदा करने में मिनिस्टरों के किसी काम से कोई वाधा तो नहीं पड़ती। उदाहरणार्थ, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के गवर्नर को गवर्नर-जनरल के एजेण्ट की हैसियत से कवीलो इलाक़ों (Tribal areas) के वारे में कई फ़र्ज़ अदा करने होंगे और इन मामलों में मिनिस्टरों का कोई दख़ल न होगा। लेकिन अगर सीमाप्रान्तीय मिनिस्टर अपने अधिकार-क्षेत्र में रहते हुए भी कोई ऐसी कार्रवाई करने लगें जिससे गवर्नर को इन इलाक़ों-सम्बन्धी अपने फ़र्ज़ अदा करने में कोई वाधा पड़े, तो उसे मिनिस्टरों की कार्रवाई पर प्रतिवन्ध लगा देने का अधिकार होगा।

इन ख़ास जिम्मेदारियों के वारे में यह वात जानना आवश्यक है कि ये इतनी अस्पष्ट भाषा में हैं और इनका क्षेत्र इतना व्यापक रक्खा गया है कि गवर्नर जव चाहे तव इनके वहाने मिनिस्टरों के काम में रोड़े अटका सकता है, क्योंकि वह अपनी इन ख़ास जिम्मेदारियों के पालन में भारतीय या प्रान्तीय जनता के प्रति उत्तरदायी न होकर गवर्नर-जनरल और भारत-मन्त्री के ज़रिये व्रिटिश सरकार और व्रिटिश पार्लमेण्ट के प्रति उत्तरदायी होगा। और इसलिए व्रिटेन के हितों में ही इनका प्रयोग करेगा। इनकी योजना का वास्तविक उद्देश्य भी यही मालूम पड़ता है। स्पष्टतः इनके ज़रिये व्रिटिश सरकार ने विभिन्न हितों

को संरक्षण देने का प्रयत्न किया है, ताकि मिनिस्टर उन हितों को कुछ नुक़सान न पहुँचा सकें। रोज़मर्रा के शासन में यही उद्देश्य गवर्नर के उन अधिकारों का है जिनको एक्ट में गवर्नर की 'मर्ज़ी' और 'विवेक' पर छोड़ा गया है। लेकिन जहाँ गवर्नर की ख़ास ज़िम्मेदारियों का उद्देश्य विभिन्न हितों को एक प्रकार का आम संरक्षण देना है, गवर्नर के इन विशेषाधिकारों का उद्देश्य कुछ ख़ास हितों को और भी ख़ासतौर से संरक्षण देना है। हम अब इन्हीं अधिकारों और संरक्षणों का वर्णन करेंगे।

गवर्नर पर सरकारी कर्मचारियों के अधिकारों और हितों की रक्षा करने की जो 'ख़ास ज़िम्मेदारी' रक्खी गई है, उसके सहारे गवर्नर आल-

**आल-इण्डिया सर्विस**

इण्डिया सर्विस के अफ़सरों[१] के अधिकारों और हितों की पूर्ण रूप से रक्षा कर सकता है; लेकिन ब्रिटिश सरकार और पार्लमेण्ट को इन अफ़सरों के अधिकारों, प्रभाव और स्थिति को पहले के ही समान बनाये रखने की इतनी फ़िक्र है कि उसने एक्ट में गवर्नरों को और स्पष्ट रूप से यह आदेश दिया है कि जब कभी इनका कोई मामला पेश हो तब गवर्नर ख़ुद भी अपने 'विवेक' का उपयोग करे। इसका अर्थ यह हुआ कि इन अफ़सरों से सम्बन्ध रखनेवाले मामलों में मिनिस्टरों को गवर्नर की स्वीकृति के बग़ैर कोई हुक्म जारी करने का अधिकार न होगा, जैसा कि एक्ट की धाराओं से स्पष्ट है।

धारा २४६ (२) के अनुसार इन अफ़सरों की नियुक्ति और तबा-

१. आल-इण्डिया सर्विस के अफ़सरों से तात्पर्य्य उन अफ़सरों से है जिनकी नियुक्ति सीधी भारत-मन्त्री द्वारा होती है। यह ध्यान रहे कि 'प्रान्तीय स्वराज्य' के अन्तर्गत भी इण्डियन सिविल सर्विस, इण्डियन पुलिस सर्विस और इण्डियन मेडिकल सर्विस के अफ़सरों की भर्ती यथावत् भारत-मन्त्री द्वारा ही होती रहेगी।

दले के लिए गवर्नर को 'अपने विवेक' से काम लेने का अधिकार होगा। इसका साफ़ अर्थ यह हुआ कि इन अफ़सरों की नियुक्ति और तबादलों के हरेक मामले में मिनिस्टरों को गवर्नर से मंज़ूरी लेनी पडेगी। धारा २४७ (२) के अनुसार इन अफ़सरों की तरक्क़ी वगैरा के क़ागजात और तीन महीने से ज्यादा की छुट्टी की दरख्वास्तों को गवर्नर के पास भेजना पडेगा। उदाहरणार्थ, यदि मिनिस्टर किसी सिविलियन की तीन महीने से अधिक की छुट्टी मंज़ूर न करें तो उन्हें इसके लिए गवर्नर को राज़ी करना पडेगा। इसी धारा के अन्तर्गत मिनिस्टर ऐसे किसी अफ़सर को विना गवर्नर की मंज़ूरी के मोअत्तिल भी न कर सकेंगे। मोअत्तिल होजाने की हालत में उस अफ़सर को कितना वेतन मिलेगा, इसका फ़ैसला भी गवर्नर 'अपने विवेक' से ही करेगा। इसी प्रकार धारा २४८ (२) के अनुसार यदि इन अफ़सरों को मोअत्तिली के अलावा कोई और हलका दण्ड देना हो, या केवल ताकीद ही करनी हो, तो भी मिनिस्टरों को गवर्नर से मंज़ूरी लेनी पडेगी। वेतन, भत्तों और पेंशनों में कमी भी विना गवर्नर की मंज़ूरी के नहीं की जा सकेगी। यही नहीं बल्कि प्रान्तीय सरकार को भेजे जानेवाले आवेदन-पत्रों पर कोई प्रतिकूल आज्ञा भी मिनिस्टर गवर्नर की मंज़ूरी विना नहीं दे सकेंगे।

ये सब नियम उन अफ़सरों पर भी लागू होंगे (१) जो फ़ौज के अफ़सर हों लेकिन प्रान्तीय सरकार के मातहत काम करते हों या (२) जो उन जगहों पर नियुक्त किये जायँ जो आमतौर पर आल-इण्डिया सर्विस के अफ़सरों के लिए ही सुरक्षित समझी जाती हैं।

आल-इण्डिया सर्विस के अफ़सरों के बाद प्रान्त में दूसरा नम्बर उन अफ़सरों का आता है जो प्रान्तीय यानी प्राविंशल सर्विस के अफ़सर कहलाते हैं। इनकी भर्ती भविष्य में प्रान्तीय सरकारों के हाथ में

ही रहेगी, लेकिन प्रान्तीय स्वराज्य से पहले भर्ती किये गये प्राविंशल सर्विस के अफ़सरों के लिए भी कुछ संरक्षण एक्ट में मौजूद हैं। जैसे, धारा २५८ (१) के अनुसार प्रान्तीय सर्विस के अफ़सरों की कोई भी जगह तबतक नहीं तोड़ी जायगी जबतक कि मिनिस्टर गवर्नर से मंजूरी न लेलें। दूसरे शब्दों में, १ अप्रैल १९३७ से पहले नौकर हुए प्रान्तीय सर्विस के अफ़सरों को कमी में तबतक नहीं लाया जा सकेगा जबतक कि खुद गवर्नर मंजूरी न देदे। और, धारा २५८ (२) के अनुसार इन अफ़सरों के वेतन, भत्तों व पेंशनों में कोई कमी मिनिस्टर बिना गवर्नर की मंजूरी के न कर सकेंगे और इनके आवेदन-पत्रों पर भी कोई प्रतिकूल आज्ञा मिनिस्टरों द्वारा बिना गवर्नर की मंजूरी के नहीं सुनाई जा सकेगी।

प्रान्तीय सर्विस

पुलिस के अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए पुलिस-विभाग के ऊपर मिनिस्टरों के अधिकारों और उत्तरदायित्व को और भी कम कर दिया गया है। उदाहरणार्थ, धारा ५६ के अन्तर्गत गवर्नर को यह आदेश दिया गया है कि जब कभी पुलिस-विभाग सम्बन्धी क़ायदों में, जो पुलिस से सम्बन्ध रखनेवाले भिन्न-भिन्न एक्टों के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकार द्वारा जारी किये जाते हैं, तब्दीली करने का प्रस्ताव किया जाय तो, जहाँतक उन कायदों का पुलिस के संगठन और अनुशासन से ताल्लुक हो, गवर्नर अपने विवेक से काम ले। दूसरे शब्दों में इसका स्पष्ट अभिप्राय यह हुआ कि जब कभी पुलिस के संगठन और अनुशासन से सम्बन्ध रखनेवाले क़ायदों में मिनिस्टरों द्वारा तब्दीली की जायगी, तो गवर्नर स्वभावतः अपने मिनिस्टरों की बनिस्बत पुलिस के इन्सपेक्टर-जनरल की सलाह की, जो सम्भवतः एक अंग्रेज होगा, ज्यादा क़द्र करेगा।

पुलिस

इस मामले में बिलकुल अँधेरे में रक्खा जायगा। स्पष्ट ही यह बड़ी विचित्र बात है। क्योंकि मिनिस्टरों से जहाँ एक ओर क़ानून और व्यवस्था को क़ायम रखने और आतंकवादी प्रवृत्तियों का दमन करने की आशा की जायगी, वहाँ यदि आतंकवाद के दमन के लिए वे यह जानना चाहें कि उनको आतंकवादी प्रवृत्तियों के बारे में जो ख़बरें मिलती हैं वे विश्वस्त भी हैं या नहीं, तो उनको यह भी न बताया जायगा कि इन ख़बरों का देनेवाला कौन है, हालाँकि उनका ही मातहत अफ़सर इंस्पेक्टर-जनरल पुलिस सब जान सकेगा।

उच्चाधिकारी

धारा २७१ के द्वारा जज व मजिस्ट्रेट और दूसरे ऐसे उच्चाधिकारियों के लिए जो प्रान्तीय सरकार या प्रान्तीय सरकार से भी ऊँची किसी सत्ता (जैसे कि भारत-सरकार या भारत-मन्त्री) की स्वीकृति बिना अपनी जगहों से नहीं हटाये जा सकते, यह एक विशेष संरक्षण और रक्खा गया है कि यदि सरकारी काम के दौरान में वे कोई जुर्म या अपराध करें तो उनपर कोई भी फ़ौजदारी मुक़दमा तबतक नहीं चलाया जा सकता जबतक कि गवर्नर 'अपने विवेक' द्वारा उसकी मंज़ूरी न देदे। 'अपने विवेक' से ही गवर्नर यह भी निश्चय करेगा कि यदि मुक़दमा चलाने की अनुमति दी जाय तो मुक़दमा किस अदालत में और किस प्रकार चलेगा। और यदि किसी सरकारी काम के सिलसिले में इन अधिकारियों पर कोई दीवानी दावा दायर होजाय और उस दावे में उन्हें हर्जाना देना पड़े, तो गवर्नर 'अपने विवेक' द्वारा सरकारी ख़ज़ाने से वह हर्जाना दिला सकता है।

जबसे ब्रिटिश सरकार का भारत पर अधिपत्य हुआ है, तभीसे उसने भारत के बड़े-बड़े अमीर-उमरावों को अंग्रेज़ी सत्ता के प्रति ख़ैर-ख़्वाही दिखाने और ग़दर आदि को दबाने में मदद देने की वजह से बहुत-

सी जागीरें वगैरा इनाम में दी थीं। इन जागीरों को पानेवाले ब्रिटिश भारत में भिन्न-भिन्न नामों से जाने जाते हैं। कहीं वे जागीरदार कहलाते हैं तो कहीं ताल्लुक़ेदार, इनामदार, वतनदार या माफ़ीदार। इनके अधिकारों की रक्षा के लिए एक्ट की धारा ३०० के अन्तर्गत यह नियम बनाया गया है कि ऐसा कोई भी हुक्म जो इन व्यक्तियों के जागीर-सम्बन्धी अधिकारों और रिआयतों के विरुद्ध हो, तबतक नहीं दिया जायगा जबतक कि गवर्नर 'अपने विवेक' से ऐसा करने की इजाज़त न देदे। संक्षेप में, अकेले मिनिस्टरों को यह अधिकार न होगा कि वे गवर्नर की मंजूरी के बिना जागीरदारों और ताल्लुक़ेदारों आदि का थोड़ा भी बाल बाँका कर सकें या उनसे उनकी जागीरें वगैरा छीन सकें।

जागीरदार और ताल्लुक़ेदार

पुराने महाराजाओं और नवाबों व उनके वारिसों को जो पेंशनें प्रान्तीय सरकारों द्वारा अभीतक दी जाती रही हैं उनके लिए भी धारा ३०० के अन्तर्गत यह नियम बनाया गया है कि उनमें न तो कोई कमी की जा सकेगी और न ही वे बन्द की जा सकेंगी, जबतक कि गवर्नर 'अपने विवेक' से अनुमति न दे दे।

नवाबों की पेंशनें

सरकारी खजानों में सरकारी रुपया किस प्रकार जमा किया जाय, किस प्रकार निकाला जाय और रुपये की हिफाज़त वग़ैरा के लिए किन नियमों का पालन किया जाय, आदि सब बातों के बारे में क़ानून-क़ायदे बनाने का अधिकार भी मिनिस्टरों और धारा-सभाओं को नहीं दिया गया है। इन मामलों के लिए भी गवर्नर को 'अपना विवेक' काम में लाने का अधिकार होगा।

सरकारी खजाने

हाईकोर्टों का खर्चा मंजूर करने के लिए भी गवर्नर को 'अपने

विवेक' से काम लेने का अधिकार होगा। इसमें जजों के वेतन, भत्ते और हाईकोर्ट के अन्य अफ़सरों व कर्मचारियों के वेतन, भत्ते तथा पेंशनें शामिल हैं।

हाईकोर्टों का ख़र्चा

जिन-जिन प्रान्तों में वहिर्गत-क्षेत्र क़ायम किये गये हैं उन-उन प्रान्तों में वहिर्गत-क्षेत्रों का शासन एकमात्र गवर्नरों के अधिकार में होगा। इनके शासन में गवर्नर को 'अपने विवेक' से ही नहीं बल्कि 'अपनी मर्ज़ी' से काम करने का अधिकार होगा। अर्थात् इन क्षेत्रों के शासन में मिनिस्टरों को दख़ल देने का कोई अधिकार न होगा। यही नहीं बल्कि इनके बारे में धारा-सभायें भी कोई क़ानून नहीं बना सकेंगी।

वहिर्गत क्षेत्र

धारा १२३ के अन्तर्गत यदि वाइसराय क़बीलों के इलाक़े, सेना-विभाग, वैदेशिक विभाग या ईसाई गिरजाघरों से सम्बन्ध रखनेवाले अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों को किसी प्रान्त के गवर्नर को अपने एजेण्ट की हैसियत में सौंप दे, तो इन अधिकारों का प्रयोग और कर्त्तव्यों का पालन गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से ही करेगा। अर्थात् मिनिस्टरों को इन मामलों में दख़ल देने का कोई अधिकार न होगा।

ए० जी० जी०

एक्ट की धारा ३०६ के द्वारा प्रान्तीय गवर्नरों को भारतीय अदालतों के अधिकार-क्षेत्र से बिलकुल मुक्त कर दिया गया है। उनके ख़िलाफ़ किसी अदालत में न तो कोई कार्रवाई की जा सकती है और न उनके ख़िलाफ़ कोई सम्मन, वारण्ट या और किसी तरह का कोई हुक्मनामा जारी किया जा सकता है। इस प्रकार कोई गवर्नर भयंकर-से-भयंकर अपराध भी करे तब भी उसके ख़िलाफ़ कोई क़ानूनी कार्रवाई भारत की अदालतों

गवर्नर और अदालतें

में नहीं की जासकती और न उसे गिरफ्तार ही किया जासकता है। हाँ, भूतपूर्व गवर्नरों के लिए यह गुंजाइश जरूर रक्खी गई है कि सम्राट् की प्रिवी कौंसिल की अनुमति से—या यों कहिए कि भारत-मन्त्री या ब्रिटिश सरकार की अनुमति से—उनपर भारतीय अदालतों में मुकदमा चलाया जा सकेगा। गवर्नर की स्थिति को अदालतों के सामने इतना सुरक्षित कर देने का एकमात्र परिणाम यह होगा कि यदि गवर्नर अपने अधिकारों का दुरुपयोग भी करे या वह अपने अधिकारों की सीमा के बाहर निकल जाय तो भी ऐसी कोई क़ानूनी तरकीब नहीं कि उसे भारत में ऐसा करने से रोका जा सके या कोई दण्ड दिया जाय।

इस प्रकार रोजमर्रा के शासन में गवर्नरों को ऐसे अधिकार प्राप्त हैं जिनके द्वारा वे अपने मिनिस्टरों की सलाह लिये बग़ैर या उनकी उपेक्षा करके अपनी मनमानी कर सकते हैं। इसी प्रकार क़ानून-निर्माण विभाग यानी प्रान्तीय धारा-सभाओं के सम्बन्ध में भी उन्हें ऐसे अधिकार मिले हुए हैं कि गवर्नरों के सहयोग के बग़ैर धारा-सभाओं के अधिकार शून्यवत हो जाते हैं, जैसा कि धारा-सभाओं सम्बन्धी आगे के विवेचन से मालूम होगा।

## गवर्नर और धारा-सभायें

एक्ट की धारा ६२ के अनुसार प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिवेशन बुलाना या समाप्त करना और अधिवेशन का स्थान निश्चित करना एकमात्र गवर्नर की 'मर्ज़ी' पर है। यदि वह चाहे तो इस सम्बन्ध में अपने मिनिस्टरों की सलाह तक न ले, और सलाह ले भी तो वह उसे मानने के लिए बाध्य न होगा। यह तो हुई क़ानूनी स्थिति; लेकिन व्यवहार में गवर्नर के लिए यह अक्सर सम्भव न होगा कि इन मामलों में वह अपने

धारा-सभाओं के अधिवेशन

मिनिस्टरों की सलाह न ले या उनकी सलाह के ख़िलाफ़ काम करे। फिर भी यदि किसी वक़्त वह यह निश्चय करले कि इस मौक़े पर मिनिस्टरों की सलाह मानना उचित नहीं है तो उसे अपनी मनमानी करने का पूर्ण अधिकार होगा। इसी तरह किसी समय धारा-सभा के अधिकांश सदस्य यह चाहें कि इस समय धारा-सभा का अधिवेशन बुलाया जाय तो भी वह उनकी प्रार्थना मानने के लिए बाध्य न होगा।

गवर्नर के धारा-सभा का अधिवेशन बुलाने न बुलाने के अधिकार पर एक पाबन्दी ज़रूर है; वह यह कि हरसाल कम-से-कम एक-बार तो धारा-सभा के दोनों भवनों के अधिवेशन बुलाने ही पड़ेंगे और किसी भवन का एक अधिवेशन समाप्त होने के बाद साल-भर के अन्दर-अन्दर फिर उसी भवन का दूसरा अधिवेशन बुलाना भी ज़रूरी होगा।

असेम्बली को भंग करने का अधिकार

६२ वीं धारा के अन्तर्गत प्रत्येक प्रान्त के गवर्नर को अपने प्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली को उसकी अवधि से पहले भंग करने का भी अधिकार होगा, यद्यपि मॉण्टफ़ोर्ड-युग की भांति अब गवर्नर उसकी अवधि को बढ़ा नहीं सकते। हां, लेजिस्लेटिव कौंसिलों के बारे में नियम भिन्न हैं। उन्हें गवर्नर भंग नहीं कर सकेंगे। धारा-सभा को भंग करने के अधिकार को हिन्दुस्तान में किस प्रकार अमल में लाया जायगा, यह अभी ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। कांग्रेस के मंत्रि-पद ग्रहण करने से पूर्व कांग्रेस और सरकार में गवर्नरों के विशेषाधिकारों के बारे में जो वाद-विवाद चला था, उसमें कांग्रेस की ओर से यही कहा गया था कि यद्यपि पार्लमेण्ट ने गवर्नरों को बेगिनती विशेषाधिकार दिये हैं, लेकिन इस बात का कोई भी बन्दोबस्त नहीं किया गया कि यदि गवर्नर प्रान्त के मंत्रि-मण्डल और धारा-सभा की मर्ज़ी के विरुद्ध अपने विशेषाधिकारों

का प्रयोग करें तो इस बात का फ़ैसला कैसे हो कि गवर्नरों का ऐसा करना उचित है या नहीं ? कांग्रेस ने इसका यह हल पेश किया था कि गवर्नर अपने विशेषाधिकारों को मिनिस्टरों की सलाह के विरुद्ध काम में लाने का निश्चय उसी हालत में करें जब कि धारा-सभा मिनिस्टरों के विरुद्ध हो; और यदि धारा-सभा मिनिस्टरों का साथ देती हो, तो वे अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग तभी करें जब कि उन्हें यह विश्वास हो कि धारा-सभा को भंग करके और नया चुनाव करके जो नई धारा-सभा बनेगी वह गवर्नर का साथ देगी। ब्रिटिश सरकार और भारत-मंत्री ने कांग्रेस की इस सीधी-सी माँग को न मानकर इस बात को प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिया है कि वह भारत के मिनिस्टरों और धारा-सभाओं को वास्तविक ज़िम्मेदारी सौंपने के लिए तैयार नहीं है।

भाषण और सन्देश

धारा ६३ उपधारा १ के अनुसार, "गवर्नरों को 'अपनी मर्ज़ी' से प्रान्तीय धारा-सभा के दोनों भवनों में या उनकी संयुक्त बैठक में, और यदि उस प्रान्त में केवल एक भवन है तो उस भवन में, भाषण देने का अधिकार होगा और इस उद्देश्य से वह सदस्यों को उपस्थित होने का आदेश भी दे सकेंगे।" और धारा ६३ उपधारा २ के अनुसार, "गवर्नर को 'अपनी मर्ज़ी' से धारा-सभा के दोनों भवनों को, और यदि उस प्रान्त में केवल एक भवन है तो उस भवन को, ऐसे बिलों के बारे में जो उन भवनों में पेश हैं या और किसी बात के बारे में, सन्देश भेजने का अधिकार होगा और जिस भवन को इस प्रकार का सन्देश भेजा जायगा उस भवन का यह फ़र्ज़ होगा कि वह जल्दी-से-जल्दी उस बात पर विचार करे जिसके लिए कि सन्देश में निर्देश किया गया हो।"

धारा-सभा के भवनों को सन्देश भेजने के अधिकार का प्रयोग किस

तरह किया जायगा, यह ठीक-ठीक कहना अभी सम्भव नहीं है; लेकिन इसका कुछ उल्लेख ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट में मिलता है, जिसमें कहा गया है कि "यदि धारा-सभायें ऐसा क़ानून पास करने की कोशिश करें जिससे हिन्दुस्तानी ईसाई आदि अल्पसंख्यक जातियों के हितों को नुक़सान पहुँचने की सम्भावना हो, तो गवर्नर धारा-सभा को सन्देश भेजकर पहलेसे ही यह जता देने का अधिकारी होगा कि धारा-सभा उस क़ानून को पास भी कर देगी तो भी वह उस बिल को अपनी मंज़ूरी नहीं देगा।"[1]

धारा-सभा के भवनों को सन्देश द्वारा आदेश भेजने के अलावा एक्ट की धारा ८६ उपधारा २ के अनुसार, "यदि गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से

वादविवाद रोकने का अधिकार

यह तसदीक करदे कि ऐसे किसी बिल पर धारा-सभा में वाद-विवाद होने से, जो धारा-सभा में या तो पेश होचुका हो या जो पेश किया जानेवाला हो, या किसी बिल की किसी ख़ास धारा पर वाद-विवाद होने से, या किसी बिल में किये जानेवाले किसी ख़ास संशोधन पर वाद-विवाद होने से, गवर्नर की उस 'ख़ास ज़िम्मेदारी' के पालन में बाधा पड़ती है जो उसे प्रान्त के अमन व चैन को बनाये रखने के लिए दीगई है, तो उसे 'अपनी मर्ज़ी' से उस बिल, धारा या संशोधन पर वाद-विवाद को रोक देने का अधिकार होगा और उसकी आज्ञा को मानना सबका फ़र्ज़ होगा।"

आमतौर पर इस अधिकार का प्रयोग उन मौक़ों पर किया जायगा जबकि प्रान्त में साम्प्रदायिक विद्वेष की अग्नि ज़ोरों पर होगी। आदेश-पत्रों के १८वें पैरे के अनुसार, "गवर्नर अपने इस अधिकार का प्रयोग सद-

१ ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट; पृष्ठ ७८, पैरा १८१।

तक नहीं करेगा जबतक कि उसे इस बात का विश्वास न होजाय कि उस बिल, धारा या संशोधन पर सार्वजनिक रूप से वाद-विवाद होने मात्र से ही प्रान्त के अमन व चैन में खलल पड़ने की आशंका होगी।" लेकिन राजनैतिक उथल-पुथल के समय राजनैतिक प्रश्नों पर वाद-विवाद रोकने की दृष्टि से इस अधिकार का प्रयोग नहीं किया जायगा, इसकी कोई गारण्टी नहीं है।

प्रान्तीय धारा-सभा द्वारा पास किये गये प्रत्येक बिल के एक्ट बनने के लिए पहले गवर्नर की मंजूरी की जरूरत होती है। गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की धारा ७५ के अनुसार, धारा-सभा के बिलों को मंजूर या नामंजूर करना गवर्नर की 'मर्जी' पर है, या वह चाहे तो उसे वाइसराय की मंजूरी के लिए भी रख सकता है। अलबत्ता, अब गवर्नर द्वारा मंजूरी मिल जानें पर फिर वाइसराय की मंजूरी की जरूरत नहीं होगी, जैसा कि मॉण्टफ़ोर्ड-युग में होता था। इन अधिकारों के अलावा गवर्नर को 'अपनी मर्ज़ी' से किसी भी बिल को प्रान्तीय धारा-सभा के भवनों में इस प्रार्थना के साथ वापस भेज देने का भी अधिकार होगा कि धारा-सभा के भवन उस बिल पर या उसकी ख़ास-ख़ास धाराओं पर पुनर्विचार करें या उसमें सुझाये गये संशोधन मंजूर करलें। बिल जब इस प्रकार वापस होजायगा, तो धारा-सभा के भवनों को उसपर गवर्नर के सन्देश के मुताबिक विचार करना लाज़िमी होगा।

धारा-सभा के बिलों की मंजूरी

बिलों को मंजूर या नामंजूर करने के बारे में गवर्नरों को आदेश-पत्रों के द्वारा भी कुछ ख़ास हिदायतें दी गई हैं। आदेश-पत्रों के १६वें पैरे में कहा गया है, कि "इस बात का निर्णय करने में कि हमारा गवर्नर हमारे नाम पर किसी बिल को मंजूर करेगा या नामंजूर, हमारा

गवर्नर इस बात को देखने का खास खयाल रक्खेगा कि उस बिल का उन 'खास ज़िम्मेदारियों' पर, जो एक्ट द्वारा उसको दी गई हैं, कैसा असर पड़ता है। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि वह और किसी बिना पर, जो उसे आवश्यक और उपयुक्त प्रतीत हो, किसी बिल को नामंजूर नहीं कर सकता। किसी भी बिल को नामंजूर करने का उसे पूरा अधिकार होगा।" और ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी के अनुसार, "गवर्नरों के ये अधिकार वास्तविक होंगे, और जब भी कभी इनकी आवश्यकता होगी तभी गवर्नर इनका प्रयोग करेंगे।"[1]

आदेश-पत्रों की हिदायतें

आदेश-पत्रों के १७वें पैरे के द्वारा गवर्नर को और भी कई प्रकार के बिलों को मंजूर न करने का खासतौर पर आदेश दिया गया है। गवर्नर को इन बिलों को वाइसराय की मंजूरी के लिए भेजना होगा, और वाइसराय को उन्हें सम्राट् यानी ब्रिटिश सरकार की मंजूरी के लिए भेजना होगा। ये बिल निम्न प्रकार हैं :—

(अ) जो पार्लमेण्ट के किसी ऐसे एक्ट में संशोधन करते हों, या उसके विरुद्ध हों, जो ब्रिटिश भारत में जारी हो;

(ब) जो गवर्नर की राय में हाईकोर्टों के प्रभाव को कम करते हों;

(स) जिनके बारे में गवर्नर यह समझे कि उनके द्वारा ब्रिटेन के प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार होने की सम्भावना है;

(द) जिनके बारे में गवर्नर यह समझे कि वे एक्ट की सम्पत्ति-हरण-विरोधी धाराओं के विरुद्ध जाते हैं;

(य) जिनके द्वारा जमींदारों के स्थायी बन्दोबस्त में कोई परिवर्तन या उसका अन्त किया जाय।

[1] ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट; पृष्ठ [illegible], पैरा १८३।

मध्यप्रान्त व वरार के गवर्नर को एक खास हिदायत आदेश-पत्र द्वारा इस बात की दीगई है कि जब कभी वह मध्यप्रान्त व वरार की धारा-सभा के ऐसे किसी बिल को मंजूर करे जो वरार में भी लागू हो, तो उसे इस बात की घोषणा करनी होगी कि उसने उस बिल को सम्राट् और निजाम हैदरावाद के बीच वरार के सम्बन्ध में हुए इकरारनामे के फलस्वरूप ही लागू किया है।

गवर्नरों को केवल यही अधिकार नहीं है कि वे प्रान्तीय धारा-सभाओं के बिलों को मंजूरी दें या उन्हें नामंजूर करें, बल्कि कई प्रकार के बिलों पर तो उनकी पूर्व-अनुमति मिले बिना प्रान्तीय धारा-सभा के किसी भवन में विचार भी नहीं हो सकता। उदाहरणार्थ, एक्ट की धारा १०८ उपधारा २ के अनुसार, जब-तक गवर्नर 'अपनी मर्जी' से पहले अनुमति न देदे तबतक धारा-सभा के किसी भी भवन में निम्न प्रकार के बिलों या संशोधनों पर विचार भी नहीं होसकता :—

पूर्व-अनुमति

(अ) जो गवर्नर के किसी एक्ट में संशोधन करते हों या उसके विरुद्ध हों;

(ब) जो गवर्नर के किसी आर्डिनेंस में संशोधन करते हों या उसके विरुद्ध हों;

(स) जो पुलिस से सम्बन्ध रखनेवाले किसी एक्ट में संशोधन करते हों या उसके विरुद्ध हों।

अलावा इसके किसी, बिल पर विचार करने की पूर्व-अनुमति देदेने का यह मतलब नहीं है कि गवर्नर बाद में भी उसे मंजूर करने के लिए बाध्य होंगे। पूर्व-अनुमति देने का नियम केवल जाब्ते के लिए है। लेकिन चूंकि पूर्व-अनुमति का नियम केवल जाब्ते के लिए है, एक्ट की धारा

१०९ के अन्तर्गत यह नियम भी बनाया गया है कि प्रान्तीय धारा-सभा का कोई भी बिल, जो बाद में उपयुक्त मंजूरी मिलने पर एक्ट बन चुका है, केवल इस बिना पर क़ानून-विरुद्ध नहीं समझा जायगा कि प्रान्तीय धारा-सभा ने उसपर विचार करने के लिए गवर्नर से पहले अनुमति नहीं ली थी।

धारा-सभा के प्रत्येक भवन को आमतौर पर अपने ज़ाब्ते के लिए नियमोपनियम बनाने का ख़ुद अधिकार होता है। प्रान्तीय धारा-सभाओं को भी यह अधिकार एक्ट की धारा ८४ के अन्तर्गत मिला हुआ है; लेकिन इसी धारा के अन्तर्गत साथ में गवर्नरों को भी यह अधिकार दिया गया है कि वे भी प्रान्त की धारा-सभा के भवनों के ज़ाब्ते के लिए 'अपनी मर्ज़ी' से नियमोपनियम बनादें। और, यदि धारा-सभा के भवनों के और गवर्नरों के बनाये हुए नियमों में भेद होगा तो गवर्नरों के नियम ही श्रेष्ठ माने जायँगे।

प्रश्नों और प्रस्तावों पर क़लम-कुल्हाड़ा

धारा-सभा के सदस्यों के प्रश्नों, प्रस्तावों और 'काम रोको'-प्रस्तावों पर गवर्नरों का जो क़लम-कुल्हाड़ा चलता रहता है, वह इन्हीं नियमों के अन्तर्गत गवर्नरों द्वारा लिये हुए अधिकारों के फलस्वरूप चलता है। इन नियमों का खुलासा आगे किया गया है; लेकिन यहाँ यह बता देना उपयुक्त होगा कि इन नियमों के अनुसार वैदेशिक नीति, देशी रियासतों, क़बीलों के इलाक़ों, वहिर्गत-क्षेत्र आदि कई विषयों पर धारा-सभा में कोई भी बहस या विचार-विमर्श तबतक नहीं होसकता जबतक कि गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से पूर्व-अनुमति न देदे।

धारा-सभाओं के निर्माण, संगठन और चुनाव सम्बन्धी मामलों में भी बहुत-से अधिकारों का प्रयोग गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से ही किया करेगा।

**निर्माण सम्बन्धी अधिकार**

उदाहरणार्थ, जिन ६ प्रान्तों में लेजिस्लेटिव कौंसिलें स्थापित हैं उनमें नामज़द सदस्यों की नामज़दगी करने में गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से काम लेसकेगा। इसी प्रकार उडीसा की लेजिस्लेटिव असेम्बली में 'पिछडी हुई जातियों और इलाकों' के लिए जो ४ प्रतिनिधि नामज़द किये जाया करेंगे उनकी नामज़दगी करने में भी गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से काम लेसकेगा। क़ानूनन गवर्नर इन मामलों में अपने मिनिस्टरों से सलाह लेने के लिए बाध्य नहीं है; इसलिए अभीतक यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि प्रान्तों के गवर्नर इन मामलों में अपने मिनिस्टरों से कहाँतक सलाह लेंगे। कांग्रेस के मन्त्रि-पद ग्रहण करने का निश्चय होते ही संयुक्त-प्रान्त के गवर्नर ने कांग्रेसी मिनिस्टरों की सलाह लिये बिना ही संयुक्त-प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल के नामज़द सदस्यों की नामज़दगी की घोषणा करने में जो जल्दबाजी दिखाई, उससे तो यही प्रतीत होता है कि गवर्नर इन मामलों में मिनिस्टरों के दख़ल को ज्यादा पसन्द नहीं करते।

धारा-सभाओं के आम चुनाव के लिए या किसी उप-चुनाव के लिए तारीख़ें भी गवर्नर ही 'अपनी मर्ज़ी से' निश्चित करेगा।

इसी प्रकार जो व्यक्ति किसी अपराध में दो साल या दो साल से अधिक की सज़ा मिलने के कारण चुनाव में नहीं खडे होसकते, या जो उम्मीदवार और चुनाव-एजेण्ट नियत समय के भीतर चुनाव के ख़र्च का हिसाब दाख़िल न कर सकने के कारण आगे के चुनावों में खडे होने के अयोग्य ठहरा दिये जाते हैं, उन सबकी अयोग्यताओं को भी एक्ट की धारा ६९ के अनुसार समय से पूर्व गवर्नर ही 'अपनी मर्ज़ी' से दूर कर सकता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कानून-निर्माण विभाग सम्बन्धी जितने भी मुख्य-मुख्य अधिकार हैं उन सबका भी केन्द्र गवर्नर को ही बनाया गया है; लेकिन जहाँ शासन-विभाग सम्बन्धी अधिकारों के बारे में मिनिस्टरों को सलाहकारों की स्थिति तो दी गई है, वहाँ कानून-निर्माण विभाग सम्बन्धी अधिकारों के प्रयोग में कानूनन गवर्नर मिनिस्टरों की सलाह पूछने के लिए भी बाध्य नहीं हैं, यद्यपि व्यवहार में वे इस क्षेत्र में भी मिनिस्टरों की सलाह पर चलें तो कोई रुकावट नहीं ह। गवर्नरों को इस प्रकार की कानूनी स्थिति प्रदान करने का कारण यह दिखाई देता है कि शासन-विभाग में मार्के के परिवर्तन करने का अधिकार पार्लमेण्ट ने मिनिस्टरों और धारा-सभाओं को देना उचित नहीं समझा है; क्योंकि यह बात स्पष्ट है कि शासन-विभाग में मार्के का कोई भी परिवर्तन तबतक नहीं होसकता जबतक कि शासन-विभाग से सम्बन्ध रखनेवाले कानूनों में ही आमूल परिवर्तन न कर डाला जाय। इसलिए नई योजनाओं, नये प्रोग्रामों और नई नीतियों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए मिनिस्टरों को गवर्नरों का ही मुंह ताकना पड़ेगा।

गवर्नर और मिनिस्टर

## विशेष परिस्थितियों के अधिकार

गवर्नरों के जितने अधिकारों का अभीतक वर्णन किया गया है, वे आमतौर पर ऐसे अधिकार हैं जिनका प्रयोग वे साधारण परिस्थितियों में किया करेंगे। लेकिन उनके कुछ अधिकार ऐसे भी हैं जिनका प्रयोग वे विशेष परिस्थितियों में ही कर सकेंगे। ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी ने उन्हें 'विशेषाधिकार' कहा है। लेकिन हमारे ख़याल में विशेषाधिकार तो गवर्नरों को मिले हुए सभी अधिकार हैं, क्योंकि उत्तरदायी शासन-पद्धति में गवर्नर का छोटा-सा अधिकार भी वस्तुतः उसका विशेषाधिकार

ही हैं। अतः हम इन्हें गवर्नरों के विशेष परिस्थितियों के अधिकार कहेंगे, जोकि इस प्रकार हैं—( १ ) आर्डिनेंसों के जरिये शासन करना; ( २ ) प्रान्तीय धारा-सभा की उपेक्षा करके खास अपने अधिकार से एक्ट बनाना; ( ३ ) धारा-सभा द्वारा खर्च की मंजूरी न मिलने पर भी खर्च करने की आज्ञा जारी कर देना; और ( ४ ) मिनिस्टरों के हाथ से सब महकमे अपने हस्तगत करके प्रान्तीय धारा-सभा को भी भंग कर देना तथा प्रान्तीय स्वराज्य का खात्मा करके तीन साल के लिए गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट का भी अमल स्थगित करके शासन के सारे अख़्तियारात खुद लेलेना।

गवर्नरों के आर्डिनेंस

एक्ट की धारा ८९ के मातहत, "यदि किसी समय गवर्नर को यह विश्वास होजाय कि परिस्थिति ऐसी होगई है कि उसे अपने उन कर्त्तव्यों की पूर्त्ति के लिए, जिनके लिए कि एक्ट में उसे 'अपनी मर्जी' और 'अपना विवेक' काम में लाने के लिए कहा गया है, तुरन्त कार्रवाई करनी चाहिए, तो वह ऐसे आर्डिनेंस जारी कर सकेगा जो उसे उस परिस्थिति में उपयुक्त प्रतीत हों।

"इस धारा के अन्तर्गत जारी किये हुए किसी भी आर्डिनेंस की अवधि ६ महीने तक होगी, लेकिन दूसरे आर्डिनेंस द्वारा उसे फिर ६ महीने के लिए बढ़ाया जा सकेगा। . . . .

"इन आर्डिनेंसों का क़ानून में वही स्थान होगा जोकि प्रान्तीय धारा-सभा द्वारा पास किये गये उस एक्ट का होता है जिसे गवर्नर या वाइसराय द्वारा उपयुक्त मंजूरी मिल चुकी हो। लेकिन आर्डिनेंस के जरिये गवर्नर कोई ऐसा कानून बनाये जो प्रान्तीय धारा-सभा के अधिकार-क्षेत्र के बिलकुल बाहर हो, तो उस हदतक आर्डिनेंस कानून-विरुद्ध समझा जायगा।"

"इस प्रकार जारी किये गये आर्डिनेंसों को सम्राट् उसी प्रकार रद कर सकेंगे जिस प्रकार कि वे प्रान्तीय धारा-सभाओं के एक्टों को कर सकते हैं, और गवर्नर भी जब चाहे तब उन्हें वापस लेसकेगा।

"यदि गवर्नर किसी आर्डिनेंस के जरिये पिछले किसी आर्डिनेंस की मियाद को और बढ़ाना चाहेगा, तो उसे उसकी सूचना वाइसराय के जरिये भारत-मन्त्री को देनी होगी और भारत-मन्त्री का यह फ़र्ज होगा कि वह उस आर्डिनेंस की प्रतियाँ पार्लमेण्ट के दोनों भवनों के सामने पेश करे।

"गवर्नर इस धारा के अन्तर्गत आर्डिनेंस जारी करते समय 'अपनी मर्ज़ी' से काम लेगा, लेकिन जबतक वह वाइसराय की मंजूरी न लेलेगा तबतक आर्डिनेंस जारी न करेगा। वाइसराय भी अपनी मंजूरी देते समय 'अपनी मर्ज़ी' से काम लेगा।

"गवर्नर की राय में यदि वाइसराय से पहले मंजूरी लेलेना सम्भव न हो, तो वह वाइसराय की मंजूरी के वग़ैर भी आर्डिनेंस जारी कर सकेगा। लेकिन उस हालत में, वाइसराय 'अपनी मर्ज़ी' से उसे यह आदेश दे सकेगा कि आर्डिनेंस वापस लेलिया जाय और तब गवर्नर के लिए आर्डिनेंस को वापस लेलेना लाज़िमी होगा।"

यह ध्यान रखने की बात है कि 'प्रान्तीय स्वराज्य' से पहले आर्डिनेंस जारी करने का अधिकार केवल वाइसराय को था और वही प्रान्तों या सारे ब्रिटिश भारत के लिए आर्डिनेंस जारी कर सकता था, लेकिन 'प्रान्तीय स्वराज्य' के अमल में आते ही यह अधिकार गवर्नरों तक को देदिया गया है।

इस सिलसिले में यह भी जानना ज़रूरी है कि इस धारा के अन्तर्गत गवर्नर अपने प्रान्त की धारा-सभा की मंजूरी लेने या उसकी

सलाह लेने तक के लिए बाध्य नहीं हैं, और यदि धारा-सभा का कोई सदस्य आर्डिनेंस में रद्दोबदल करने के लिए कोई बिल पेश करना चाहे तो उसपर भी कोई विचार तबतक नहीं होसकता जबतक कि पहले गवर्नर अनुमति न देदे।

एक्ट की धारा ८८ के द्वारा गवर्नर को यह भी अधिकार दिया गया है कि यदि किसी समय ऐसी परिस्थिति उत्पन्न होजाय कि ख़ास उसके मिनिस्टर ही यह उपयुक्त समझने लगें कि इस समय आर्डिनेंस जारी करना जरूरी है, तो वह उनकी सलाह पर भी आर्डिनेंस जारी कर सकता है। इस प्रकार जारी किये गये आर्डिनेंसों को हम 'मिनिस्टरों के आर्डिनेंस' कहेंगे, हालांकि क़ानूनन वे गवर्नरों के नाम से ही जारी किये जायेंगे। एक्ट की धारा ८८ में उनका इस प्रकार विधान किया गया है:—

मिनिस्टरों के आर्डिनेंस

"यदि किसी ऐसे वक्त जब कि प्रान्त की धारा-सभा का अधिवेशन न होरहा हो, गवर्नर को यह विश्वास होजाय कि परिस्थिति ऐसी हो गई है कि उसे तुरन्त कार्रवाई करनी चाहिए, तो वह ऐसे आर्डिनेंस जारी कर सकेगा जो उसे उस परिस्थिति में उपयुक्त प्रतीत हों।"

इस भाषा से यही प्रतीत होता है कि गवर्नर इस धारा के अन्तर्गत आमतौर पर मिनिस्टरों की सलाह पर ही काम करेगा, लेकिन उसे कई हालतों में अपने मिनिस्टरों की सलाह पर अमल करने से इन्कार करने का भी अधिकार होगा। आर्डिनेंस जारी करने की मिनिस्टरों की प्रार्थना को गवर्नर निम्न हालतों में नामंजूर कर सकेगा:—

(१) उसके जारी करने से उसकी किसी 'ख़ास जिम्मेदारी' के पालन में बाधा पड़ती हो; या

(२) उसके द्वारा कोई ऐसा क़ानून बनाया जाय कि जिसको ख़ास प्रान्तीय धारा-सभा पास करना चाहे तो उसमें भी तत्सम्बन्धी बिल पर बिना गवर्नर या वाइसराय की पूर्व-अनुमति के विचार न होसकता हो।

इन दोनों हालतों में गवर्नर को 'अपने विवेक' से काम करने का अधिकार होगा, यानी उसे उपयुक्त प्रतीत हो तो आर्डिनेंस जारी करे और उपयुक्त प्रतीत न हो तो न भी करे। लेकिन, धारा ८८ में कहा गया है कि, "यदि इन आर्डिनेंसों में कोई आर्डिनेंस ऐसा हो कि उसे बिल के रूप में प्रान्तीय धारा-सभा से पास कराने के पहले वाइसराय की मंजूरी लेना ज़रूरी हो, या यदि इन आर्डिनेंसों में कोई आर्डिनेंस ऐसा हो कि यदि उसे बिल के रूप में प्रान्तीय धारा-सभा से पास कराया जाय तो गवर्नर उस बिल को ख़ुद मंजूर करने के बजाय वाइसराय की मंजूरी के लिए भेजना उचित समझे, तो इन दोनों हालतों में गवर्नर वाइसराय से पहले मंजूरी लिये बिना आर्डिनेंस जारी न कर सकेगा।"

धारा ८८ के अन्तर्गत मिनिस्टरों की सलाह पर जारी किये गये आर्डिनेंसों और धारा ८९ के अन्तर्गत स्वयं गवर्नरों द्वारा जारी किये गये आर्डिनेंसों में एक बड़ा भेद यह भी है, कि जहाँ गवर्नरों के आर्डिनेंस उन सब विषयों के बारे में जारी किये जा सकते हैं जो नये एक्ट में 'प्रान्तीय सूची' या 'सम्मिलित सूची' में शामिल हैं, वहाँ मिनिस्टरों के आर्डिनेंस 'सम्मिलित सूची' वाले विषयों के बारे में तब ही जारी किये जा सकेंगे जब कि वे केन्द्रीय क़ानूनों के विरुद्ध न हों। साथ ही, धारा ८८ के अन्तर्गत जारी किये गये आर्डिनेंस के लिए यह भी ज़रूरी है कि प्रान्तीय धारा-सभा का अधिवेशन शुरू होते ही उसकी प्रतियाँ उसमें पेश की जायँ। प्रान्तीय धारा-सभा के प्रथम भवन अर्थात् लेजिस्लेटिव असेम्बली का अधिवेशन प्रारम्भ होने के बाद वह आर्डिनेंस

ज्यादा-से-ज्यादा ६ सप्ताह तक क़ायम रह सकता है। और इस अर्से में यदि असेम्वली आर्डिनेंस को रद करने का प्रस्ताव पास करदे और वाद में उस प्रस्ताव को प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल भी मंजूर करले, तो लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रस्ताव के पास होते ही वह आर्डिनेंस रद समझा जायगा। जिन प्रान्तों में लेजिस्लेटिव कौंसिलें नहीं हैं उन प्रान्तों में लेजिस्लेटिव असेम्वली द्वारा प्रस्ताव पास होते ही ऐसा आर्डिनेंस रद होजायगा।

इस सम्बन्ध में यह वात ग़ौर करने की है कि धारा ८८ के मातहत आर्डिनेंस जारी करने के वाद यदि सालभर तक भी प्रान्तीय धारा-सभा का अधिवेशन न वुलाया जाय तो धारा ८८ के मिनिस्टरों के आर्डिनेंस वाक़ायदा सालभर क़ायम रह सकते हैं, जवकि धारा ८९ के गवर्नरों के आर्डिनेंस पहलेपहल ६ महीने के लिए ही जारी किये जा सकते हैं।

मिनिस्टरों के आर्डिनेंसों और गवर्नरों के आर्डिनेंसों में समानता यह है कि मिनिस्टरों के आर्डिनेंसों को भी सम्राट् प्रान्तीय धारा-सभा के एक्टों की भाँति रद कर सकते हैं और दोनों ही किसी भी समय वापस लिये जा सकते हैं।

आर्डिनेंस जारी करने के अलावा गवर्नर को धारा-सभा की तरह से एक्ट पास करदेने का भी अधिकार है। जहाँ आर्डिनेंस कुछ ख़ास अवधि के लिए पास किये जा सकते हैं, गवर्नरों के ये एक्ट विना किसी मियाद के उसी प्रकार पास किये जा सकेंगे जिस प्रकार धारा-सभाओं के एक्ट पास किये जाते हैं। पुराने गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में भी इसी प्रकार का एक अधिकार गवर्नर को था, लेकिन उस अधिकार का प्रयोग तभी किया जा सकता था जव कि पहले गवर्नर या प्रान्तीय सरकार किसी क़ानून को प्रान्तीय धारा-सभा से पास कराने में असफल होजाय, जवकि नये एक्ट में गवर्नर के

गवर्नरों के एक्ट

लिए यह भी-लाजिमी नहीं है कि वह पहले धारा-सभा की राय लेले। गवर्नर को यह अधिकार एक्ट की धारा ९० के मातहत दिया गया है, जो इस प्रकार है :—

"अगर किसी समय गवर्नर को अपने उन कर्त्तव्यों की पूर्त्ति के लिए, जिनके लिए एक्ट में उसे 'अपनी मर्जी' या 'अपना विवेक' काम में लाने के लिए कहा गया है, यह प्रतीत हो कि और क़ानूनों का बनाना आवश्यक है, तो वह धारा-सभा के भवनों को सन्देश द्वारा यह समझाकर कि किन परिस्थितियों की वजह से और क़ानूनों का बनाना जरूरी होगया है, या तो

(अ) फ़ौरन ही गवर्नर के एक्ट की शक्ल में ऐसे क़ानून को पास करदे जिसे वह जरूरी समझे; या

(ब) अपने सन्देश के साथ उस क़ानून का मसविदा, जिसे वह जरूरी समझता हो, धारा-सभा के भवनों को भेज दे।

"यदि वह फौरन एक्ट पास करने के बजाय केवल बिल का मसविदा ही धारा-सभा को भेजना ठीक समझे, तो उसे एक महीना गुजर जाने के बाद यह अधिकार होगा कि उस बिल को, जिसे उसने मसविदे के तौर पर धारा-सभा में भेजा था, या तो उसी शक्ल में या कुछ संशोधनों के साथ गवर्नर के एक्ट के तौर पर पास करदे। लेकिन ऐसा करने से पहले उसे धारा-सभा के भवनों के उन प्रार्थना-पत्रों पर ग़ौर करना भी लाजिमी होगा जो उसके पास उस एक महीने के भीतर-भीतर उस बिल के बारे में या बिल में संशोधन करने की ख़ातिर भेजे जायें।

"क़ानून में गवर्नरों के एक्टों का भी वही स्थान समझा जायगा, जो प्रान्तीय धारा-सभा के एक्टों का समझा जाता है; लेकिन यदि गवर्नर के एक्ट में कोई ऐसी बात हो जो प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकार-क्षेत्र से बाहर हो, तो वह एक्ट उस हदतक क़ानून के ख़िलाफ़ समझा जायगा।"

इस सिलसिले में यह वता देना भी जरूरी है कि पुराने गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में गवर्नरों को इस प्रकार क़ानून बनाने का जो अधिकार था वह केवल उन विषयों के लिए था जो मॉण्टफ़ोर्ड-युग में 'सुरक्षित विषय' कहलाते थे। इस प्रकार तत्कालीन हस्तान्तरित विषयों से सम्बन्ध रखनेवाला कोई क़ानून गवर्नर पास नहीं कर सकते थे। लेकिन अब गवर्नरों को 'प्रान्तीय' और 'सम्मिलित' सब विषयों के एक्ट पास करने का अधिकार होगा।

गवर्नरों के आर्डिनेंसों की तरह गवर्नरों के एक्टों की प्रतियाँ भी गवर्नरों को वाइसराय के जरिये भारत-मंत्री के पास भेजना लाजिमी है और भारत-मन्त्री का फ़र्ज है कि वह उन्हें पार्लमेण्ट के दोनों भवनों में पेश करे।

गवर्नरों के आर्डिनेंसों की भाँति गवर्नरों के एक्ट जारी करने में भी गवर्नर को 'अपनी मर्जी' से काम करने के लिए कहा गया है, यानी वह अपने मिनिस्टरों की सलाह पूछने या उसे मानने के लिए वाध्य न होगा। लेकिन हरेक एक्ट जारी करने से पहले उसपर वाइसराय की मंजूरी लेलेना जरूरी होगा और वाइसराय भी मंजूरी देने में 'अपनी मर्जी' से काम लेगा।

धारा ८० के अन्तर्गत गवर्नर को यह अधिकार है कि यदि प्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली वजट की किसी मद में काट-छाँट करदे या किसी मद को विलकुल ही नामंजूर करदे, और गवर्नर यह समझे कि उसकी 'ख़ास जिम्मेदारियों' का ठीक-ठीक पालन करने के लिए यह जरूरी है कि असेम्बली की काट-छाँट को मंजूर न किया जाय, तो उसे यह हुक्म जारी करने का अधिकार होगा कि असेम्बली के फ़ैसले के वावजूद उसी प्रकार खर्च किया जाय जिस प्रकार कि बजट में पहले प्रस्ताव किया गया था।

खर्च की मंजूरी

यों तो प्रायः उपर्युक्त सभी विशेषाधिकार असाधारण और आपत्ति-

जनक हैं; लेकिन वह विशेषाधिकार तो इन सबसे बाज़ी लेजाता है, जो एक्ट की धारा ९३ के अन्तर्गत दिया गया है। वह इस प्रकार है :—

शासन-विधान का भंग

"यदि किसी समय गवर्नर को यह विश्वास होजाय कि ऐसी परिस्थिति पैदा होगई है कि प्रान्त का शासन एक्ट की योजना के अनुसार नहीं चलाया जा सकता, तो वह एक घोषणा-पत्र के ज़रिये

( अ ) इस बात की घोषणा कर सकता है कि वह अपने इन-इन अधिकारों का प्रयोग, जिनका कि उल्लेख उस घोषणा-पत्र में होगा, 'अपनी मर्ज़ी' से ही करेगा; और

( ब ) प्रान्त की और किसी भी सत्ता के सब या कुछ अधिकारों को अपने हाथ में लेसकता है।

"घोषणा-पत्र के ज़रिये उसे यह जताने का भी अधिकार होगा कि प्रान्तीय विधान से सम्बन्ध रखनेवाली एक्ट की कौन-कौनसी धाराओं को उसने स्थगित कर दिया है। लेकिन वह इस प्रकार न तो हाईकोर्ट के किसी अधिकार को अपने हाथ में लेसकेगा, और न हाईकोर्ट से सम्बन्ध रखनेवाली एक्ट की किसी धारा को ही स्थगित कर सकेगा।

"गवर्नर को किसी भी समय अपने घोषणा-पत्र में रद्दोबदल करने या उसे वापस लेने का भी अधिकार होगा।

"इस प्रकार के हरेक घोषणा-पत्र की नक़ल फ़ौरन भारत-मन्त्री के पास भेजी जायगी, जो उसे पार्लमेण्ट के दोनों भवनों के सामने रखेगा। गवर्नर इस प्रकार का कोई घोषणा-पत्र तबतक नहीं निकालेगा जबतक कि वह वाइसराय से पहले मंजूरी न लेले। और इस मामले में गवर्नर व वाइसराय दोनों को 'अपनी मर्ज़ी' से काम करने का अधिकार होगा।

"पहले-पहल यह घोषणा-पत्र ६ महीने के लिए जारी होगा। लेकिन

अगर पार्लमेण्ट के दोनों भवन चाहें तो वे इसकी अवधि को जब चाहे तब प्रस्ताव पास करके एक-एक साल के लिए और बढ़ा सकते हैं; अलबत्ता इस प्रकार कोई भी घोषणा-पत्र तीन साल से ज्यादा समय के लिए जारी न रक्खा जा सकेगा।

"घोषणा-पत्र द्वारा इस प्रकार शासन-विधान भंग कर दिये जाने पर यदि गवर्नर प्रान्तीय धारा-सभा के क़ानून बनाने के अधिकारों को अपने हाथों में लेले, तो इस दर्मियान जो क़ानून गवर्नर द्वारा बनाये जायंगे वे घोषणा-पत्र की अवधि के ख़त्म होने के बाद भी दो साल तक जारी रह सकेंगे।"

गवर्नर के इस विशेषाधिकार के बारे में कोई टिप्पणी करना व्यर्थ है। क्योंकि यह अधिकार जितनी व्यापक भाषा में गवर्नरों को दिया गया है, वही इस अधिकार की सबसे बढ़िया टिप्पणी है।

**गवर्नरों का वास्तविक महत्व**

नये विधान में गवर्नरों का वास्तविक स्थान क्या होगा, इसके बारे में हम ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट का एक उद्धरण देते हैं:—

"यह बात स्पष्ट है कि प्रान्तों में उत्तरदायी शासन-पद्धति का सफल होना बहुत-कुछ गवर्नरों के व्यक्तित्व और अनुभव पर निर्भर करता है। ......... नये विधान में जो कुछ उन्हें करना पडेगा वह उससे कम क़ीमती या कम महत्व का नहीं होगा जो कि अभीतक उन्होंने किया है।"[1]

इसपर से जो एकमात्र निष्कर्ष निकाला जासकता है, वह यह है कि चूंकि गवर्नर ब्रिटिश साम्राज्यवादी मशीन का ही एक पुर्जा है, इसलिए नये विधान में गवर्नरों का वास्तविक महत्व इसीमें है कि वे ब्रिटिश पार्लमेण्ट और ब्रिटिश सरकार के एजेण्ट के तौर पर भारत में ब्रिटिश हितों की रक्षा कहांतक करते हैं।

१. ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट; पृष्ठ ५७, पैरा १०२।

: ४ :

# मिनिस्टर

उत्तरदायी शासन का मूल सिद्धान्त—जैसा कि इंग्लैण्ड और ब्रिटिश साम्राज्य के आस्ट्रेलिया, कनाडा, अफ़्रीका आदि उपनिवेशों में आजकल माना जाता है—यह है कि अधिकार चाहे किसी के नाम पर हों, उनका प्रयोग जनता के उन चुने हुए प्रतिनिधियों की सलाह पर ही किया जा सकता है जिनका कि उस देश या प्रान्त की धारा-सभा में बहुमत हो। इस प्रकार सलाह देने के लिए जो व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं उन्हींका नाम मिनिस्टर है। सम्राट्, गवर्नर-जनरल या गवर्नरों को अपने मिनिस्टरों की सलाह के विरुद्ध काम करने का अधिकार दो ही हालतों में होता है। इनमें पहली हालत तो यह है कि मिनिस्टर धारा-सभा का विश्वास खोदें और धारा-सभा उनमें अपने अविश्वास को निश्चित रूप से प्रकट करदे; और दूसरी वह है जब धारा-सभा का तो मिनिस्टरों में विश्वास हो लेकिन सम्राट्, गवर्नर-जनरल या गवर्नर का यह निश्चित मत हो कि देश मिनिस्टरों की नीति के ख़िलाफ़ होगया है। इनमें से पहली हालत में मिनिस्टरों को इस्तीफ़ा देना पड़ता है और उनकी जगह धारा-सभा के वे सदस्य नियुक्त किये जाते हैं जिनका धारा-सभा में बहुमत हो। हां, यदि मिनिस्टरों को यह विश्वास हो कि देश उनके साथ है, तो उन्हें सम्राट्, गवर्नर-जनरल या गवर्नर से यह प्रार्थना करने का अधिकार होता है कि धारा-सभा को भंग करके नया चुनाव किया जाय, ताकि यह ठीक-ठीक

उत्तरदायी शासन और मिनिस्टर

निश्चित होजाय कि देश मिनिस्टरों के साथ है या धारा-सभा के। यदि चुनाव के बाद धारा-सभा में मिनिस्टरों के समर्थकों का बहुमत हो, तो यह समझा जाता है कि देश मिनिस्टरों के साथ है; उस हालत में सम्राट्, गवर्नर-जनरल या गवर्नर को अपने पुराने मिनिस्टरों की सलाह पर चलना लाज़िमी होजाता है। लेकिन यदि चुनाव के बाद धारा-सभा में मिनिस्टरों के समर्थकों का अल्पमत रहे और मिनिस्टरों के विरोधियों का बहुमत हो, तो पुराने मिनिस्टरों को इस्तीफ़ा देना पड़ता है और उनकी जगह वे व्यक्ति मिनिस्टर नियुक्त किये जाते हैं जिनका धारा-सभा में बहुमत हो; उस हालत में सम्राट्, गवर्नर-जनरल या गवर्नर को अपने नये मिनिस्टरों की सलाह पर चलना लाज़िमी होजाता है। दूसरी हालत में भी धारा-सभा को भंग करके और नये चुनाव की आज्ञा देकर इस बात का फ़ैसला किया जाता है कि देश वास्तव में मिनिस्टरों के साथ है या नहीं। यदि नये चुनाव के बाद भी मिनिस्टरों के समर्थकों का धारा-सभा में बहुमत रहे, तो मिनिस्टरों की सलाह पर ही काम किया जाता है; लेकिन यदि नये चुनाव के बाद मिनिस्टरों के समर्थकों का धारा-सभा में बहुमत न रहे और दूसरा कोई दल मन्त्रि-मण्डल बनाने को तैयार हो, तो पुराने मिनिस्टरों को इस्तीफ़ा देना पड़ता है और उनकी जगह वे व्यक्ति मिनिस्टर नियुक्त किये जाते हैं जिनका नई धारा-सभा में बहुमत हो। उस हालत में सम्राट्, गवर्नर-जनरल या गवर्नर को अपने इन नये मिनिस्टरों की सलाह पर चलना लाज़िमी होजाता है। तीसरी और कोई हालत ऐसी नहीं है जिसमें सम्राट्, गवर्नर-जनरल या गवर्नर को मिनिस्टरों की सलाह के विरुद्ध काम करने का अधिकार हो।

इस विवेचन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वास्तविक उत्तरदायी शासन-पद्धति के अनुसार सम्राट्, गवर्नर-जनरल या गवर्नर अपनी

ज़िम्मेदारी पर तो किसी अधिकार का प्रयोग कर ही नहीं सकते। उन्हें सदा किसी-न-किसी मिनिस्टर की सलाह पर ही काम करना पड़ेगा। अगर वे समझें कि मिनिस्टरों में धारा-सभा का विश्वास नहीं रहा है तो वे अपने मिनिस्टरों को बदल सकते हैं, और यदि वे यह समझें कि मिनिस्टरों और धारा-सभा दोनों में ही देश का विश्वास नहीं रहा है तो धारा-सभा का नया चुनाव कराके इस बात का फ़ैसला करा सकते हैं कि वास्तव में देश किसके साथ है; लेकिन उन्हें काम करना पड़ेगा किसी-न-किसी मिनिस्टर की सलाह पर ही।

इस प्रकार उत्तरदायी शासन-पद्धति में मिनिस्टर का स्थान बड़ी ज़िम्मेदारी का और बड़ा महत्वपूर्ण होता है। लेकिन ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के इस दावे के बावजूद कि उन्होंने प्रान्तों में प्रान्तीय स्वराज्य के साथ-साथ उत्तरदायी शासन-पद्धति भी स्थापित की है, नये विधान में मिनिस्टरों को उतना महत्व नहीं दिया गया है।

एक्ट की धारा ५१ उपधारा १ के अन्तर्गत मन्त्रि-मण्डल (अर्थात् मिनिस्टरों) की नियुक्ति का अधिकार गवर्नर को दिया गया है और इसी धारा की उपधारा ४ के अनुसार मिनिस्टरों की नियुक्ति में गवर्नर को 'अपनी मर्ज़ी' से काम करने का अधिकार दिया गया है। दूसरे शब्दों में, मिनिस्टरों की नियुक्ति के मामले में क़ानूनन गवर्नर किसीकी सलाह लेने या मानने के लिए बाध्य नहीं होगा। हां, आदेश-पत्रों की धारा ८ में इस सम्बन्ध में कुछ महत्वपूर्ण आदेश गवर्नरों को दिये गये हैं, जो इस प्रकार हैं :—

मिनिस्टरों की नियुक्ति

"अपने मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों की नियुक्ति करते समय उनके चुनाव में हमारा गवर्नर निम्न विधि को अपनाने की ज्यादा-से-ज्यादा

कोशिश करेगा; यानी उस व्यक्ति से सलाह-मशविरा करके जो उसकी राय में प्रान्तीय धारा-सभा में दृढ़ बहुमत रखता हो, उन व्यक्तियों को नियुक्त करेगा (जिनमें यथासम्भव खास-खास अल्पसंख्यक जातियों के सदस्य भी शामिल हों) जो संयुक्त रूप से धारा-सभा का सबसे अच्छी तरह विश्वास प्राप्त कर सकते हों। ऐसा करते समय हमारा गवर्नर इस बात का भी सदा ख़याल रक्खेगा कि मिनिस्टरों में संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना को बढ़ाना आवश्यक है।"

आदेश-पत्रों की इस धारा के अनुसार यद्यपि गवर्नरों के लिए यह लाज़िमी है कि वे धारा-सभा की उस पार्टी के नेता से ही सलाह-मशविरा करके मंत्रि-मण्डल का निर्माण करें जिसका धारा-सभा में बहुमत हो, फिर भी गवर्नर आदेश-पत्र की इस आज्ञा को भंग करें तो कोई ऐसा क़ानूनी ज़रिया नहीं है कि जिससे उनको ऐसा करने के लिए बाध्य किया जा सके। क़ानूनन अवश्य गवर्नर का यह फ़र्ज़ है कि वह आदेश-पत्रों के आदेशों का भी ठीक उसी तरह पालन करे जिस तरह कि वह पार्लमेण्ट के किसी एक्ट की धाराओं का करता है, लेकिन आदेश-पत्रों के आदेशों के बारे में यह विचित्र बात है कि उनके पालन में वह केवल सम्राट् के प्रति ही उत्तरदायी समझा जाता है; सम्राट् के अलावा और कोई अधिकारी या अदालत गवर्नरों को आदेश-पत्रों के आदेशों के विरुद्ध काम करने के कारण दोषी या अपराधी नहीं ठहरा सकते। इसी प्रकार हालाँकि आदेश-पत्र में गवर्नरों को यह आदेश दिया गया है कि वे अपने मिनिस्टरों में संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना को प्रोत्साहन दें, लेकिन यदि गवर्नर इस आदेश के विरुद्ध आचरण करने लगें तो उन्हें किसी क़ानूनी ज़रिये से रोका नहीं जासकता।

मन्त्रि-मण्डल के निर्माण के बारे में आमतौर पर प्रचलित प्रथा यह

मंत्रि-मण्डल का निर्माण : प्रचलित प्रथा

है कि प्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली के आम चुनावों के बाद गवर्नर उस पार्टी के नेता को मन्त्रि-मण्डल बनाने का निमन्त्रण देता है जिसका कि धारा-सभा में बहुमत हो। यदि वह नेता उस निमन्त्रण को स्वीकार करले और मन्त्रि-मण्डल बनाने के लिए तैयार होजाय, तो उससे मिनिस्टरों के नाम पेश करने के लिए कहा जाता है और गवर्नर की मंजूरी के बाद उन्हें गजट में प्रकाशित कर दिया जाता है। इस प्रकार जो व्यक्ति मंत्रि-मण्डल बनाता है वह प्राइम मिनिस्टर, चीफ मिनिस्टर या प्रीमीयर यानी प्रधान-मंत्री के नाम से प्रसिद्ध होता है; बाक़ी सब मिनिस्टर या मन्त्री कहलाते हैं। लेकिन कोई भी मिनिस्टर सरकारी काम तबतक नहीं सम्हाल सकता जबतक कि वह सम्राट् की वफ़ादारी की और दूसरी उन शपथों को गवर्नर या गवर्नर द्वारा नियुक्त किसी अन्य व्यक्ति के सामने न लेले जिनका कि गवर्नरों के आदेश-पत्रों में उल्लेख किया गया है। मिनिस्टरों के काम का बँटवारा भी गवर्नर आमतौर पर प्रधान-मंत्री की सलाह से ही करता है, हालांकि इस मामले में भी एक्ट की धाराओं के अन्तर्गत उसे 'अपनी मर्ज़ी' से चलने का अधिकार है। आमतौर पर प्रत्येक मिनिस्टर के ज़िम्मे प्रान्तीय शासन-विभाग के कुछ महकमे कर दिये जाते हैं और मिनिस्टरों को अक्सर उन महकमों के मिनिस्टर के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है।

मंत्रि-मण्डल के सदस्यों का चुनाव करने का काम कुछ कम मुश्किल नहीं है। इस काम में गवर्नर द्वारा आमंत्रित व्यक्ति को कई दिक्कतों का सामना करना पड़ता है। इसकी वजह यह है कि जगहें तो अक्सर कम होती हैं और सन्तुष्ट करना पड़ता है ज्यादा लोगों को। इसके अलावा भारत में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की एक दिक्कत और है।

गवर्नर के आदेश-पत्रों में यह बात बिलकुल स्पष्ट करदी गई है कि मंत्रि-मण्डल में यथासम्भव प्रत्येक अल्पसंख्यक जाति के सदस्य भी शामिल किये जायँ।

प्रत्येक मिनिस्टर के लिए प्रान्त की धारा-सभा का सदस्य होना आवश्यक है। यदि कोई मिनिस्टर लगातार ६ महीने तक प्रान्तीय धारा-सभा के किसी भी भवन का सदस्य न रहे, तो उसे मिनिस्टरी के ओहदे से स्वतः अलग होजाना पडेगा। अक्सर ऐसा होता है कि जिस पार्टी के नेता को मंत्रि-मण्डल बनाने के लिए बुलाया जाता है उस पार्टी का कोई प्रमुख सदस्य चुनाव में हार जाता है। यदि उस सदस्य को मंत्रि-मण्डल में लेना आवश्यक समझा जाय, तो यह तजवीज़ की जाती है कि उसे मिनिस्टर तो नियुक्त कर दिया जाय लेकिन ६ महीने के अन्दर-अन्दर किसी निर्वाचन-क्षेत्र से उसका चुनाव होजाय। ऐसा करने के लिए धारा-सभा के किसी सदस्य को, जो उस पार्टी का भी सदस्य हो, इस्तीफ़ा देने के लिए तैयार किया जाता है और उसके इस्तीफ़ा देने पर नया चुनाव होता है। यदि वह मिनिस्टर ६ महीने में किसी भी निर्वाचन-क्षेत्र से न चुना जा सके, तो ६ महीने के समाप्त होने पर उसे मिनिस्टरी का चार्ज दे देना पड़ता है।

मंत्रि-मण्डल के सदस्य आमतौर पर उसी पार्टी में से लिये जाते हैं जिसका कि धारा-सभा में बहुमत होता है। इस पद्धति का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि मंत्रि-मण्डल अपने हरेक काम के लिए संयुक्तरूप से धारा-सभा के प्रति उत्तरदायी समझा जाता है। लेकिन कभी-कभी ऐसा भी होता है—जैसा कि पंजाब, बंगाल और आसाम आदि प्रान्तों में पहले चुनावों के बाद हुआ—कि धारा-सभा में किसी भी दल का स्पष्ट बहुमत नहीं होता। ऐसी परिस्थिति में मंत्रि-मण्डल बनाने के लिए गवर्नर को

उस दल के नेता को निमंत्रण देना पड़ता है जो दूसरे दलों के सहयोग से मंत्रि-मण्डल का निर्माण कर सके। इस प्रकार बनाये गये मंत्रि-मण्डलों को अक्सर संयुक्त या गंगा-जमुनी मंत्रि-मण्डल ( Coalition Ministry ) कहते हैं। लेकिन इस प्रकार का मंत्रि-मण्डल किसी एक नीति पर नहीं चल सकता, क्योंकि उसके सदस्यों के ध्येय और उद्देश्यों में समानता कभी आ ही नहीं सकती।

संयुक्त उत्तरदायित्व और प्रधान-मन्त्री

मिनिस्टरों के संयुक्त उत्तरदायित्व के लिए प्रधान-मन्त्री का होना बहुत ही आवश्यक है। इसके लिए प्रधान-मंत्री ही मिनिस्टरों की कौंसिल का प्रधान और शासन का वास्तविक अध्यक्ष होना चाहिए, ताकि प्रत्येक मिनिस्टर प्रधान-मंत्री को ही अपना मुखिया समझे। लेकिन एक्ट की धारा ५० उपधारा २ के अन्तर्गत गवर्नर को 'अपनी मर्ज़ी' से मिनिस्टरों की कौंसिल'[१] का सभापतित्व करने का अधिकार होगा। इसके अलावा शासन का वास्तविक अध्यक्ष भी एक्ट की योजना के अनुसार गवर्नर ही होगा। इन बातों को देखते हुए यह कहना ज़रा मुश्किल दिखाई देता है कि मिनिस्टरों में संयुक्त उत्तरदायित्व की भावना किस हद तक काम कर सकेगी।

मिनिस्टरों के अधिकार

नये विधान में मिनिस्टरों के क्या-क्या अधिकार होंगे, इसके बारे में बहुत-कुछ गवर्नर के अधिकारों और स्थिति के सिलसिले में लिखा जा चुका है। वास्तव में नये विधान में गवर्नर और मिनिस्टरों के अधिकारों का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ रक्खा गया है कि एक के अधिकारों के वर्णन में दूसरे के अधि-

१. [illegible] में मंत्रि-मण्डल के सदस्यों का नाम कानून में 'मिनिस्टरों की कौंसिल' है।

कारों का स्वतः वर्णन होजाता है। फिर भी मिनिस्टरों के अधिकारों के बारे में स्वतंत्र रूप से विचार करना आवश्यक है।

क़ानूनी दृष्टि से एक्ट की धारा ५० के अनुसार मिनिस्टरों की स्थिति, व्यक्तिगत और सामूहिक रूप से, केवल सलाहकारों की है। इसके अलावा और कोई अधिकार उन्हें एक्ट की किसी धारा द्वारा प्रदान नहीं किया गया। मगर, एक्ट की धारा ५९ उपधारा ३ के अन्तर्गत गवर्नर को 'अपनी मर्ज़ी से किन्तु अपने मिनिस्टरों से सलाह लेकर'[1] ऐसे नियमों के बनाने का अधिकार दिया गया है, जिनके द्वारा वह अपने उन अधिकारों के अलावा सब अधिकारों का प्रयोग अपने मिनिस्टरों के ऊपर छोड़ सकता है जिनके प्रयोग में कि उसे 'अपनी मर्ज़ी' से चलने का हक़ है। भिन्न-भिन्न मिनिस्टरों के बीच में काम का जो बँटवारा होता है, वह भी अनुमानतः इन नियमों के ज़रिये ही किया जाता है। ये नियम आमतौर पर गुप्त समझे जाते हैं और इन्हें प्रकट नहीं किया जाता; लेकिन इन नियमों का आधारभूत सिद्धान्त यही दिखाई देता है कि जहाँतक उन विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले अधिकारों का सम्बन्ध है जिनके प्रयोग में गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से चल सकता है, मिनिस्टरों से न तो कोई पूछताछ की जायगी और न तद्विषयक क़ाग़ज़ात ही उनके पास भेजे जायँगे। उनपर हुक्म ख़ास गवर्नर द्वारा ही जारी किये जायँगे। जिन मामलों में गवर्नर 'अपने विवेक' से काम ले सकता है, उन मामलों से सम्बन्ध रखनेवाले सब काग़ज़ात मिनिस्टरों के ज़रिये गवर्नर के पास जाने चाहिएँ।

१. 'अपनी मर्ज़ी' के अधिकारों के बारे में गवर्नर आमतौर पर अपने मिनिस्टरों से सलाह लेने के लिए बाध्य नहीं है, लेकिन इस धारा के अन्तर्गत उसे खासतौर पर अपने मिनिस्टरों से सलाह लेने का आदेश दिया गया है।

शेष सब मामलों में हुक्म या तो स्वयं मिनिस्टर जारी कर सकते हैं या प्रान्तीय सरकार के भिन्न-भिन्न महकमों के सरकारी सेक्रेटरी, जो आमतौर पर इण्डियन सिविल सर्विस में से लिये जाते हैं। और यह भी सम्भव है कि इन शेष मामलों में भी गवर्नरों ने कुछ ऐसे विषय निर्धारित कर दिये हों जिनके काग़ज़ात मिनिस्टरों के पास जाने के बाद उनके पास ज़रूर भेजे जायँ।

इन नियमों के अन्तर्गत जिन-जिन मामलों में मिनिस्टरों को आज्ञा देने का अधिकार होगा, उन सब मामलों में आमतौर पर मिनिस्टर ही अन्तिम रूप से गवर्नर के प्रतिनिधि की हैसियत से आज्ञा देंगे; लेकिन एक्ट की धारा ५९ उपधारा ४ के अन्तर्गत प्रत्येक मिनिस्टर और सेक्रेटरी का यह कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि यदि किसी मामले में उनमें से किसीको भी यह बात दिखाई दे कि गवर्नर की किसी 'ख़ास ज़िम्मेदारी' का सवाल आता है या आसकता है, तो सेक्रेटरी तो उस बात की ओर मिनिस्टर व गवर्नर का ध्यान आकर्षित करे और मिनिस्टर गवर्नर का। संक्षेप में, इस प्रकार 'ख़ास ज़िम्मेदारियों' के बहाने सरकारी सेक्रेटरियों को गवर्नर तक पहुँचने का और मिनिस्टरों के मार्ग में सहज ही रोड़े अटकाने का एक बहुत ही सुलभ अवसर मिल सकता है। इंग्लैण्ड में कोई भी सरकारी सेक्रेटरी इस प्रकार सीधा सम्राट् के पास नहीं पहुँच सकता। कहते हैं कि पार्लमेण्ट में इण्डिया बिल की इस उप-धारा पर जब बहस हुई थी, तो पार्लमेण्ट के कुछ सदस्यों ने तो यहां-तक अपनी राय ज़ाहिर की थी कि शासन के जो कुछ थोड़े-बहुत अधिकार नये विधान में जनता के प्रतिनिधियों को दिये गये हैं उनका ख़ात्मा सेक्रेटरियों के इस अधिकार से हो जायगा।

यही नहीं, एक्ट की धारा ५९ उपधारा ४ के अनुसार, गवर्नर

नियम बनाकर अपने मिनिस्टरों और सरकारी सेक्रेटरियों को इस बात का भी आदेश देसकते हैं कि उसे (अर्थात् गवर्नर को) उन सब बातों की समय-समय पर सूचना दी जाती रहे जिनका कि उन नियमों में उल्लेख हो।

जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, धारा ५९ उपधारा ३ के अन्तर्गत गवर्नरों के बहुत-से अधिकार मिनिस्टरों और सेक्रेटरियों को दे दिये जायँगे, और इन मामलों में मिनिस्टर या सेक्रेटरी गवर्नर की ओर से हुक्म दे सकेंगे। लेकिन इसी धारा की उपधारा १ में एक बहुत ही विचित्र नियम यह रक्खा गया है कि किसी भी काग़ज पर हुक्म चाहे गवर्नर द्वारा दिया जाय या किसी मिनिस्टर या सेक्रेटरी द्वारा, वह हुक्म जारी होगा सदा गवर्नर के नाम से ही। उदाहरणार्थ, चाहे किसी मिनिस्टर के हुक्म से ही किसी राजबन्दी की रिहाई का या मालगुजारी की माफी का या और किसी बात का हुक्म क्यों न निकले, कहा यही जायगा कि गवर्नर ने अमुक जिले में इतनी मालगुज़ारी की छूट दी है या अमुक राजबन्दी को गवर्नर ने रिहा किया है। इस नियम को बनाने का यह उद्देश्य है कि बाहरी लोगों को यह बात न मालूम पड़ सके कि भलाई का या बुराई का कौन-सा काम गवर्नर ने किया और कौन-सा मिनिस्टरों ने। मॉण्टफ़ोर्ड-युग में ऐसा होता था कि जो भी कोई हुक्म सुरक्षित विषयों के बारे में दिया जाता उसके बारे में लिखा जाता था कि 'सकौंसिल गवर्नर' (Governor-in-Council) ने अमुक हुक्म दिया है, और जो कोई हुक्म हस्तान्तरित विषयों के बारे में दिया जाता उसके बारे में यह लिखा जाता था कि 'गवर्नर ने अपने मिनिस्टरों की सलाह पर' (Governor acting with his Ministers) अमुक हुक्म दिया है।

सरकारी हुक्म जारी करने की विधि

जहां एक्ट की धारा ५९ उपधारा १ के अनुसार प्रत्येक सरकारी हुक्म—चाहे वह गवर्नर, मिनिस्टर या सेक्रेटरी इनमें से किसीका भी हो—गवर्नर के नाम से ही जारी होगा, उपधारा २ के अनुसार गवर्नर को 'अपनी मर्ज़ी से' लेकिन मिनिस्टरों से सलाह लेकर इस बात के नियम बनाने का अधिकार होगा कि इन सबके हुक्म किसके हस्ताक्षरों से प्रकाशित होने पर प्रामाणिक माने जायेंगे। इस उपधारा के अन्तर्गत जो नियम भिन्न-भिन्न प्रान्तों में गवर्नरों ने प्रकाशित किये हैं उनका मूल सिद्धान्त अधिकतर यही है कि सब सरकारी हुक्म या तो किसी सरकारी सेक्रेटरी के हस्ताक्षर से या किसी सहायक सेक्रेटरी के हस्ताक्षर से ही जाने चाहिएं। मिनिस्टर या पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी अपने हस्ताक्षर से कोई हुक्म किसी दूसरे अफ़सर को नहीं भेज सकते। जब किसी मिनिस्टर को किसी मामले में कोई हुक्म देना होगा तो वह अपना हुक्म सरकारी सेक्रेटरी को ही सुना सकेगा, और फिर सरकारी सेक्रेटरी ही अपने हस्ताक्षरों से उसे जारी करेगा। इस बीच में सरकारी सेक्रेटरी गवर्नर की 'खास ज़िम्मेदारियों' के बहाने उस मामले को गवर्नर तक ले जाने का भी अधिकारी होगा। यहां यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि यदि गवर्नर चाहें तो इन नियमों में तब्दीली करके मिनिस्टरों और उनके पार्लमेण्टरी सेक्रेटरियों को यह अधिकार दे सकते हैं कि उनके यानी मिनिस्टरों और पार्लमेण्टरी सेक्रेटरियों के हस्ताक्षरों से जो हुक्म सुनाये जावेंगे वे अन्य सरकारी हुक्मों के समान ही प्रामाणिक समझे जायेंगे।

इंग्लैण्ड, कनाडा आदि पार्लमेण्टरी पद्धति द्वारा शासित देशों के मिनिस्टरों की स्थिति भारतीय मिनिस्टरों की स्थिति से बहुत-कुछ भिन्न है। उदाहरणार्थ, इंग्लैण्ड में भारत-मंत्री एक ओर तो भारत-सम्बन्धी मामलों में सम्राट् के सलाहकार की हैसियत से सम्राट् के भारतीय शासन

सम्बन्धी अधिकारों का प्रयोग करता है, दूसरी ओर वह स्वयं भारत-मंत्री की हैसियत से कई अधिकारों का प्रयोग करता है।

मिनिस्टरों की स्थिति

इसी प्रकार और सब बडे-बडे मिनिस्टर भी सम्राट् के सलाहकार होने के अलावा स्वयं भी एक बडे महकमे के अध्यक्ष होते हैं और उस महकमे के अध्यक्ष होने की वजह से खुद सीधे भी कई मामलों में हुक्म जारी कर सकते हैं। इससे जनता की दृष्टि में उनका महत्व बहुत बढ़ जाता है। लेकिन हिन्दुस्तान में मिनिस्टरों की स्थिति केवल गवर्नरों के सलाहकारों की रक्खी गई है। प्रान्त के जितने भी बडे-बडे विभाग हैं उनकी अध्यक्षता के लिए पृथक् सरकारी अफ़सर नियुक्त किये जाते हैं। जैसे कि इंसपेक्टर-जनरल पुलिस, इंसपेक्टर-जनरल जेल्स, इंसपेक्टर-जनरल अस्पताल, रजिस्ट्रार कोआपरेटिव सोसायटीज़, कमिश्नर ऑफ़ एक्साइज़, डाइरेक्टर ऑफ़ पब्लिक इंसट्रक्शन, डाइरेक्टर लैण्ड रेकर्ड्स वग़ैरा-वग़ैरा। इनमें से ज्यादातर जगहें उन आल-इण्डिया सर्विसों के अफ़सरों के लिए सुरक्षित हैं जिनकी भर्ती भारत-मंत्री द्वारा की जाती है। इसलिए इनमें से अधिकांश जगहें न तो तोडी जा सकती हैं, और न उनपर किसी मिनिस्टर या धारा-सभा के किसी और सदस्य को नियुक्त किया जा सकता है।

इंग्लैण्ड के मिनिस्टरों की स्थिति और भारत के मिनिस्टरों की स्थिति में एक और बड़ा भारी भेद यह भी है कि जहाँ इंग्लैण्ड में मिनिस्टर केवल पार्लमेण्ट और निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी होते हैं, भारत के मिनिस्टर एक ओर तो प्रान्त की धारा-सभा और निर्वाचकों के प्रति उत्तरदायी होंगे, दूसरी ओर गवर्नरों की 'ख़ास जिम्मेदारियों' की वजह से उन्हें गवर्नर, वाइसराय, भारत-मंत्री, ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश पार्लमेण्ट के प्रति भी कुछ हद तक उत्तरदायी रहना पडेगा।

किस प्रान्त के मन्त्रि-मण्डल में कितने मिनिस्टर होंगे, इसका कोई उल्लेख न तो एक्ट में किया गया है और न गवर्नरों के आदेश-पत्रों में।

संख्या और वेतन

अतः प्रत्येक प्रान्त का गवर्नर अपने प्रधान-मंत्री की सलाह से प्रान्त की आवश्यकतानुसार जितने चाहे उतने मिनिस्टर नियुक्त कर सकता है।

प्रत्येक प्रान्त की धारा-सभा को एक्ट के द्वारा मिनिस्टरों के वेतन और भत्तों को निश्चित करने का अधिकार है, लेकिन वह किसी भी मिनिस्टर के वेतन में उसकी अवधि से पूर्व कोई तब्दीली नहीं कर सकती। इसके अलावा मिनिस्टरों के वेतन के लिए हर साल प्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली की मंजूरी लेने की भी जरूरत नहीं है, जिस प्रकार कि और खर्चों के लिए होती है। यह ध्यान रहे कि इंग्लैण्ड में ऐसा नहीं है। वहां हरेक मिनिस्टर के वेतन की पाई-पाई के लिए हर साल पार्लमेण्ट से मंजूरी लेनी पड़ती है, और यही वजह है कि इंग्लैण्ड के मिनिस्टर पार्लमेण्ट के प्रति सदा पूर्णरूप से उत्तरदायी रहते हैं।

जिन-जिन देशों में इंग्लैण्ड के तर्ज़ की पार्लमेण्टरी शासन-पद्धति प्रचलित है, उन-उन देशों में मिनिस्टरों के अलावा और कई छोटे-छोटे

पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी

सहायक मिनिस्टर भी होते हैं। इन्हें किसी बड़े मिनिस्टर के साथ जोड़ दिया जाता है, जिसके पार्लमेण्टरी तथा शासन-सम्बन्धी काम में ये मदद देते हैं। इस प्रकार के सहायक अथवा जूनियर मिनिस्टरों को इंग्लैण्ड में आमतौर पर पार्लमेण्टरी अण्डर-सेक्रेटरी या अन्य नामों से पुकारा जाता है। इन्हें आमतौर पर कैबिनेट अर्थात् मन्त्रि-मण्डल की बैठक में भाग लेने का अधिकार नहीं होता; लेकिन कैबिनेट के सदस्यों के इस्तीफा देने पर इन्हें भी इस्तीफा देना पड़ता है।

भारत में भी कई प्रान्तों में मिनिस्टरों की सहायता के लिए इसी प्रकार के सहायक मिनिस्टर नियुक्त किये गये हैं, जिन्हें यहाँ पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी का नाम दिया गया है। गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट में पार्लमेण्टरी सेक्रेटरियों के बारे में कोई विशेष धारा नहीं रक्खी गई है और फिलहाल इन्हें मिनिस्टरों के काम में सहायता देने के लिए ही नियुक्त किया गया है। इनके कर्तव्य और अधिकारों के बारे में इतना ही लिखना काफ़ी है, कि चूँकि ये मिनिस्टरों की सहायतार्थ नियुक्त किये जाते हैं इसलिए इनके अधिकार मिनिस्टरों के अधिकारों से ज्यादा नहीं होसकते। इंग्लैण्ड आदि देशों में पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी का पद आमतौर से मिनिस्टरी पर पहुँचने की पहली सीढ़ी समझा जाता है और इसके ज़रिये योग्य और उत्साही व्यक्तियों को आगे बढ़ने का अच्छा मौक़ा मिल जाता है। शायद यही बात भारत में कुछ हद तक सत्य सिद्ध होगी।

पार्लमेण्टरी सेक्रेटरियों के वेतन-भत्तों के लिए हरसाल प्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली की मंज़ूरी लेना ज़रूरी है। इसके अलावा, चूँकि इन पदों पर आमतौर से धारा-सभा के सदस्य ही नियुक्त किये जाते हैं, प्रान्त की धारा-सभा को यह एक्ट भी पास करना पड़ता है कि कोई भी पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी धारा-सभा का सदस्य रहने से इसलिए वंचित नहीं किया जायगा कि वह सरकारी ख़ज़ाने से वेतन पाता है। इसकी वजह यह है कि गवर्मेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत सरकारी ख़ज़ाने से वेतन पानेवाला मिनिस्टरों के सिवा कोई भी व्यक्ति न तो प्रान्तीय धारा-सभा के चुनाव में खड़ा होसकता है और न प्रान्तीय धारा-सभा का सदस्य रह सकता है, जबतक कि प्रान्तीय धारा-सभा इस आशय का एक्ट न पास करदे।

एक्ट की धारा ५५ के अनुसार प्रत्येक प्रान्त के गवर्नर को यह

आदेश दिया गया है कि वह प्रान्त के लिए एक एडवोकेट-जनरल की नियुक्ति करे, जिसकी योग्यता उससे कम न हो जितनी कि हाईकोर्ट की जजी के लिए आवश्यक है। एक्ट के अन्तर्गत एडवोकेट-जनरल का काम प्रान्तीय सरकार को क़ानूनी मसलों पर सलाह देना है। इसके अलावा क़ानून से सम्बन्ध रखनेवाले और काम भी प्रान्तीय सरकार उसके सुपुर्द कर सकती है। जैसे कि हाईकोर्ट वग़ैरा में सरकार की तरफ़ से वकालत करना आदि। एडवोकेट-जनरल की नियुक्ति, बर्ख़ास्तगी और उसके वेतन-भत्ते निश्चित करने के लिए गवर्नर को 'अपने विवेक' से काम लेने का अधिकार दिया गया है। दूसरे शब्दों में एडवोकेट-जनरल की नियुक्ति, बर्ख़ास्तगी और उसके वेतन-भत्तों का निश्चय करना केवल प्रान्तीय मिनिस्टरों का ही काम न होगा, बल्कि गवर्नर को भी उसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा।

एडवोकेट-जनरल

पुरानें गवर्मेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत केवल तीन प्रान्तों यानी तीनों प्रेसिडेंसियों में ही एडवोकेट-जनरल नियुक्त किये जाते थे। लेकिन ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी ने सिफ़ारिश की कि प्रत्येक प्रान्त में शुरू से ही एडवोकेट-जनरल नियुक्त कर दिये जायें, जिनका मुख्य काम प्रान्तीय सरकार को पेचीदा क़ानूनी मसलों पर सलाह देना हो, क्योंकि नये विधान में पहले से भी ज्यादा ऐसे मौक़े आयेंगे जिनमें प्रान्तीय सरकार को उपयुक्त क़ानूनी सलाह का प्राप्त करना जरूरी होगा।[१]

इंग्लैण्ड में मन्त्रि-मण्डल को सलाह देनेवाला जो क़ानूनी अफ़सर होता है उसको एटार्नी-जनरल कहते हैं। उसकी नियुक्ति प्रधान-मन्त्री के हाथ में रहती है और वह एक प्रकार से मन्त्रि-मण्डल का ही अंग होता

१. ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट; पृष्ठ २३९, पैरा ४०१।

है। यहांतक कि मन्त्रि-मण्डल के बदलने पर उसे भी इस्तीफ़ा देना पड़ता है। लेकिन गवर्मेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत प्रान्तीय एडवोकेट-जनरलों की नियुक्ति एकमात्र मिनिस्टरों पर नहीं छोडी गई है। दूसरे शब्दों में, एक्ट की यह मंशा दिखाई देती है कि एडवोकेट-जनरल मंत्रि-मण्डल का ही एक अंग न समझा जाय बल्कि मंत्रि-मण्डल के बदलने पर भी एडवोकेट-जनरल वही बना रहे। लेकिन यह तो हुई ठेठ क़ानूनी स्थिति। व्यवहार में यह मंशा कहाँतक पूरी होसकेगी, यह कहना कठिन है।

: ५ :

# प्रान्तीय कर्मचारी

*सरकारी कर्मचारियों के आम संरक्षण*

प्रान्तीय सरकार के मातहत जितने सरकारी अफ़सर या कर्मचारी काम करते हैं, उनको आमतौर पर तीन बडी-बडी श्रेणियों में विभाजित किया जाता है, जो (१) आल-इण्डिया सर्विस, (२) प्राविंशल सर्विस और (३) सबोर्डिनेट सर्विस के नाम से जानी जाती हैं। लेकिन इन तीनों श्रेणियों के अफ़सरों को एक्ट में जो अधिकार दिये गये हैं, उनका यहाँ वर्णन करने से पहले उन आम अधिकारों और संरक्षणों को जान लेना आवश्यक है जो हरेक सरकारी कर्मचारी को एक्ट द्वारा मिले हैं।

सरकारी कर्मचारियों का सबसे पहला और मुख्य संरक्षण, जिसके बारे में पहले भी उल्लेख किया जा चुका है, यह है कि सरकारी कर्मचारियों के अधिकारों और हितों की रक्षा करने की ख़ास जिम्मेदारी गवर्नर पर रक्खी गई है। जब कभी सरकारी कर्मचारियों के अधिकारों या हितों की रक्षा का सवाल उठेगा, तो गवर्नर को अपने मिनिस्टरों की सलाह के विरुद्ध भी काम करने का अधिकार होगा।

एक्ट की धारा २४० उपधारा १ के अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी को क़ानूनी तौर पर नौकरी से जब चाहे तब बिना कोई वजह बताये अलग किया जा सकता है। इस नियम का एकमात्र अभिप्राय यह है कि यदि कोई सरकारी कर्मचारी बिना क़सूर भी नौकरी से अलग कर दिया जाय तो वह अदालतों के जरिये कोई हर्जाना वसूल नहीं कर

सकता। लेकिन इसका यह अभिप्राय हर्गिज नहीं है कि प्रान्तीय सरकार को अपने मातहत सब कर्मचारियों को नौकरी से हटाने या बर्खास्त करने का अधिकार प्राप्त होगा।

बर्खास्तगी व अलहदगी

एक्ट की धारा २४० उपधारा २ के अनुसार सरकारी कर्मचारियों को नौकरी से हटाने या बर्खास्त करने का अधिकार या तो नियुक्त करनेवाले अधिकारी को है या उस अधिकारी को जो उस नियुक्ति करनेवाले अधिकारी से भी बड़ा हो। इस नियम के फलस्वरूप इण्डियन सिविल सर्विस, इण्डियन पुलिस, इण्डियन मेडिकल सर्विस आदि आल-इण्डिया सर्विसों के सदस्यों को नौकरी से हटाने या बर्खास्त करने का एकमात्र अधिकार भारत-मंत्री को होगा; क्योंकि इन सर्विसों के सदस्यों की नियुक्ति भारत-मंत्री द्वारा ही होती है। उदाहरणार्थ, यदि प्रान्तीय सरकार किसी ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट को किसी अपराध के कारण बर्खास्त करना चाहे तो वह ऐसा न कर सकेगी; क्योंकि ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य होने के कारण भारत-मंत्री के अलावा और किसी भारतीय अधिकारी द्वारा बर्खास्त नहीं किये जा सकते।

धारा २४० की उपधारा ३ के अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी को तबतक बर्खास्त नहीं किया जा सकता और किसी भी सरकारी कर्मचारी का दर्जा तबतक नहीं घटाया जा सकता जबतक कि उसे अपनी सफाई पेश करने का पूरा-पूरा मौक़ा न दिया जाय। इस नियम के दो अपवाद हैं। पहला तो यह है कि यदि किसी कर्मचारी को किसी फ़ौजदारी मुक़दमे में सजा होजाय तो उसे सफाई पेश करने का मौक़ा दिये बिना ही बर्खास्त किया जा सकेगा। दूसरा अपवाद यह है कि यदि बर्खास्त करनेवाला अधिकारी यह समझे कि इस वक़्त इस कर्मचारी को सफाई

सफ़ाई देने का अधिकार

देने के लिए मौक़ा देना ठीक नहीं है तो वह अधिकारी उस कर्मचारी को मौक़ा दिये बिना ही बर्खास्त कर सकेगा। लेकिन इस हालत में उस अधिकारी को उन वजूहात को प्रकाशित करना पड़ेगा जिनकी वजह से उस कर्मचारी को सफ़ाई पेश करने का मौक़ा नहीं दिया गया।

एक्ट की धारा २७० के अनुसार किसी भी सरकारी कर्मचारी के विरुद्ध १ अप्रैल १९३७ से पहले किये गये किसी भी अपराध के लिए कोई भी फ़ौजदारी या दीवानी मुक़दमा तबतक नहीं चलाया जासकता जबतक कि गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से उसकी स्वीकृति न देदे। और अगर गवर्नर मुक़दमा चलाने की स्वीकृति दे भी दे, तो कोई भी सरकारी कर्मचारी अदालत द्वारा तबतक अपराधी नहीं समझा जायगा जबतक कि यह साबित न होजाय कि इस कर्मचारी ने वह अपराध बुरी नीयत से या जान-बूझकर किया था। अगर ऐसे किसी मुक़दमे में उस कर्मचारी के हक़ में फ़ैसला होजाय और वह अपने मुक़दमे का हर्जाना उस व्यक्ति से न वसूल कर सके जिसने उसपर मुक़दमा चलाया था, तो वह सरकारी ख़ज़ाने तक से अपना हर्जाना वसूल करने का हक़दार होगा।

पिछले अपराधों की माफ़ी

एक्ट की धारा २६१ उपधारा ३ के अनुसार, यदि किसी सरकारी कर्मचारी को किसी दीवानी मुक़दमे में, जो उसपर सरकारी काम की बदौलत चलाया गया हो, हर्जाना देना पड़े, तो गवर्नर 'अपने विवेक' से उसे वह हर्जाना सरकारी ख़ज़ाने से दिला सकता है।

धारा २७२ के अनुसार उन सरकारी कर्मचारियों की पेंशनों पर जो हिन्दुस्तान से बाहर के रहनेवाले हों, भारत की धारा-सभायें किसी प्रकार का कोई टैक्स नहीं लगा सकतीं।

अब हम भिन्न-भिन्न श्रेणियों के अफसरों के अधिकारों का वर्णन करेंगे।

*आल-इण्डिया सर्विसें*

प्रान्तीय कर्मचारियों में सबसे पहला नम्बर उन अफसरों का है, जो आल-इण्डिया सर्विस के अफसर कहलाते हैं। ये अफसर ज्यादातर प्रान्तों में ही काम करते हैं, लेकिन चूंकि इनकी भर्ती सारे हिन्दुस्तान के लिए भारत-मंत्री द्वारा होती है इसलिए आल-इण्डिया सर्विस वाले कहलाते हैं।

काले-गोरों की संख्या

ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट से पता चलता है कि १ जनवरी १९३३ को भारत में आल-इण्डिया सर्विसें और उनमें यूरोपियन तथा भारतीय अफसरों की संख्यायें निम्न प्रकार थीं[१] :—

| सर्विस | यूरोपियन | भारतीय | कुल |
|---|---|---|---|
| इण्डियन सिविल सर्विस | ८१९ | ४७८ | १२९७ |
| इण्डियन पुलिस | ५०५ | १५२ | ६६५[२] |
| इण्डियन फ़ारेस्ट सर्विस | २०३ | ९६ | २९९ |
| इण्डियन सर्विस ऑफ इंजीनियर्स | ३०४ | २९२ | ५९६ |
| इण्डियन मेडिकल सर्विस (सिविल) | २०० | ९८ | २९८ |
| इण्डियन एज्युकेशनल सर्विस | ९६ | ७९ | १७५ |
| इण्डियन एग्रीकल्चरल सर्विस | ४६ | ३० | ७६ |
| इण्डियन वेटीरिनरी सर्विस | २० | २ | २२ |
| कुल योग | २१९३ | १२२७ | ३४२८ |

प्रान्तीय शासन-क्षेत्र में जितने बड़े-बड़े ओहदे हैं उनपर इन्हीं आल-इण्डिया सर्विसों के अफसर नियुक्त किये जाते हैं। उदाहरणार्थ, ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट, कलक्टर, ज़िला जज, दौरा जज, कमिश्नर,

१. ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट; पृष्ठ १४७, पैरा २७७।

२. इनमें ८ अफ़सर ऐसे थे जिनको न कालों में और न गोरों में ही शुमार किया गया था।

रेवेन्यू बोर्ड के सदस्य आदि की नियुक्ति इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्यों में से ही होती है। और चूंकि इन सर्विसों की भर्ती भारत-मंत्री द्वारा होती है, इस नियम का स्वाभाविक परिणाम यही होता है कि जितने भी बड़े-बड़े ओहदे हैं वे आमतौर पर अंग्रेज़ों के ही क़ब्ज़े में चले जाते हैं।

भर्त्ती का अधिकार

सन् १९२४ में ली-कमीशन की सिफ़ारिशों के फलस्वरूप भारत-मंत्री ने पिछली तीन सर्विसों की भर्ती बन्द करके इन महकमों के अफ़सरों की भर्ती का अधिकार प्रान्तीय सरकारों को देदिया था। अतः १ अप्रैल १९३७ से प्रान्तीय स्वराज्य जारी होजाने का स्वाभाविक परिणाम यही होना चाहिए था कि शेष सब आल-इण्डिया सर्विसों के अफ़सरों की भर्ती का अधिकार भी प्रान्तीय सरकारों को मिल जाता। लेकिन एक्ट की धारा २४४ उपधारा १ के अन्तर्गत प्रान्तीय स्वराज्य जारी होजाने के बाद भी भारत-मंत्री ने इण्डियन सिविल सर्विस, इण्डियन पुलिस और इण्डियन मेडिकल सर्विस (सिविल) के अफ़सरों की भर्ती करने का अधिकार अपने हाथ में ही रक्खा है। और भारत-मंत्री इन सर्विसों के अफ़सरों की केवल भर्ती ही नहीं करता रहेगा, बल्कि धारा २४४ उपधारा ३ के अन्तर्गत उसे यह निश्चय करने का भी अधिकार होगा कि हरसाल किस प्रान्त को किस सर्विस के कितने-कितने अफ़सर लेने पड़ेंगे। यदि कोई प्रान्त ख़र्चे में कमी करने की ग़रज़ से या अपने महकमों का पुनस्संगठन करने के ख़याल से ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट, जिला मजिस्ट्रेट, सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस आदि की जगहों में कमी करना चाहेगा तो उसे ऐसा करने का अधिकार न होगा। उदाहरणार्थ, यदि संयुक्तप्रान्त की सरकार प्रान्त में ४८ जिलों के बजाय केवल ४० या ४४ ही जिले रखना चाहे तो वह ऐसा न कर

सकेंगी; क्योंकि उसे ४८ ज़िला मजिस्ट्रेट और ४८ पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट तो लाज़िमी तौर पर रखने ही पड़ेंगे।

आवपाशी यानी सिचाई-विभाग के इंजीनियरों की भर्ती प्रान्तीय स्वराज्य जारी होजाने पर भारत-मंत्री ने ख़ुद करना बन्द कर दिया है। लेकिन धारा २४५ के अन्तर्गत उसने यह अधिकार अपने हाथ में सुरक्षित रक्खा है कि वह जब चाहे तब इन अफ़सरों की भर्ती पुनः शुरू करदे।

जिन आल-इण्डिया सर्विसों के अफ़सरों की भर्ती का अधिकार भारत-मंत्री ने अपने हाथ में रक्खा है, उनके लिए धारा २४६ के अन्तर्गत जगहें

सुरक्षित जगहें

सुरक्षित रखने का अधिकार भी भारत-मंत्री को दिया गया है। इस अधिकार के प्रयोग में भारत-मंत्री जिन-जिन जगहों को किसी सर्विस के लिए सुरक्षित घोषित करदे, उन जगहों पर केवल उसी सर्विस के अफ़सर नियुक्त किये जा सकेंगे। इन जगहों को हम 'सुरक्षित जगहों' के नाम से पुकारेंगे। ऐसी कोई भी सुरक्षित जगह भारत-मंत्री की पूर्व-अनुमति के बिना तीन महीने से ज्यादा ख़ाली नहीं रक्खी जायगी और हर सुरक्षित जगह के लिए एक अफ़सर अलग नियुक्त करना जरूरी होगा। ऐसा भी नहीं किया जासकेगा कि दो सुरक्षित जगहों को मिलाकर उस जगह पर आल-इण्डिया सर्विस का एक ही अफ़सर नियुक्त कर दिया जाय।

नीचे हम उन जगहों की एक सूची देते हैं जिन्हें संयुक्तप्रान्त में भारत-मंत्री ने इण्डियन सिविल सर्विस के अफ़सरों के लिए सुरक्षित रक्खा है:—

| | | |
|---|---|---|
| बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के सदस्य | ... | २ |
| बोर्ड ऑफ रेवेन्यू का सेक्रेटरी | ... | १ |
| प्रान्तीय सरकार के सेक्रेटरी और चीफ सेक्रेटरी | ... | ६ |
| कमिश्नर | ... | ९ |

| | | |
|---|---|---|
| अफ़ीम-अफ़सर | ... | १ |
| रजिस्ट्रार कोआपरेटिव सोसायटीज़ | ... | १ |
| डिप्टी-रजिस्ट्रार कोआपरेटिव सोसायटीज़ | ... | १ |
| डाइरेक्टर लैण्ड रेकर्ड्स | ... | १ |
| लीगल रिमेम्ब्रेन्सर | ... | १ |
| एक्साइज़ कमिश्नर | ... | १ |
| अफसर बन्दोबस्त और उसके असिस्टेण्ट | ... | ६ |
| डिप्टी कमिश्नर और जिला मजिस्ट्रेट | ... | ४८ |
| रजिस्ट्रार हाईकोर्ट | ... | १ |
| जिला व सेशन जज | ... | ३१ |
| ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट व असिस्टेण्ट कमिश्नर | ... | ३२ |
| सेशन्स व सबोर्डिनेट जज | ... | ४ |
| | कुल | १४६[१] |

१. इण्डियन पुलिस के लिए संयुक्तप्रान्त में जो जगहें सुरक्षित रहेंगी, वे भी जानने लायक हैं। उनकी संख्यायें निम्न प्रकार हैं :—

| | | |
|---|---|---|
| इन्सपेक्टर-जनरल पुलिस | ... | १ |
| डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल पुलिस | ... | ५ |
| असिस्टेण्ट इन्सपेक्टर-जनरल रेलवे पुलिस | ... | १ |
| सी० आई० डी० पुलिस के डिप्टी इन्सपेक्टर-जनरल के असिस्टेण्ट | ... | ३ |
| इन्सपेक्टर-जनरल पुलिस का असिस्टेण्ट | ... | १ |
| सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस | ... | ४६ |
| सुपरिण्टेण्डेण्ट गवर्मेण्ट रेलवे पुलिस | ... | ३ |
| प्रिंसिपल पुलिस ट्रेनिंग स्कूल | ... | १ |
| असिस्टेण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस | ... | १८ |
| | कुल | ७९ |

इस प्रकार प्रान्त के जितने भी मुख्य-मुख्य विभाग हैं उनके अध्यक्ष और जिलों के शासन के अध्यक्ष आई० सी० एस० यानी इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य ही रहेंगे और शासन की सारी मशीन आई० सी० एस० अफ़सरों पर निर्भर रहेगी। इंग्लैण्ड में, जैसा कि हम पहले भी लिख चुके हैं, स्थिति इसके बिलकुल विपरीत है। वहाँ हरेक बडे महकमे के अध्यक्ष या तो केबिनेट के ही सदस्य होते हैं, या केबिनेट का समर्थन करनेवाले पार्लमेण्ट के अन्य सदस्य। और चूँकि ये सब व्यक्ति पार्लमेण्ट के सदस्य होने के नाते जनता के ही निर्वाचित प्रतिनिधि होते हैं, सारे शासन पर वे अपना असर डाल सकते हैं।

धारा २४६ उपधारा २ के अनुसार आल-इण्डिया सर्विस के अफ़सरों के तबादले व उनको भिन्न-भिन्न पदों पर नियुक्त करने का अधिकार गवर्नर को दिया गया है और इस अधिकार के प्रयोग में उसे 'अपने विवेक' से काम लेनें का अधिकार होगा।

नियुक्ति व तबादले

धारा २४७ की उपधारा १ के अनुसार इन अफ़सरों के वेतन, भत्ते व पेंशनें निश्चित करने और छुट्टी आदि विविध विषयों के बारे में नियम बनाने का अधिकार भारत-मंत्री को ही दिया गया है। अर्थात् किस अफ़सर को कितना वेतन मिलेगा, कितनी छुट्टियाँ मिलेंगी, रिटायर होने पर कितनी पेंशन मिलेगी आदि सब महत्वपूर्ण विषय प्रान्तीय सरकारों के हाथ में न होकर भारत-मंत्री के हाथ में रहेंगे। प्रान्तीय सरकारों को इन सर्विसों के बारे में केवल उन मामलों में नियम बनाने का अधिकार होगा, जिन मामलों में कि भारत-मंत्री नियम बनाने का अधिकार उनपर छोड़ दे। लेकिन चूँकि भारत-मंत्री के नियमों में आमतौर पर कोई महत्वपूर्ण बात नहीं

वेतन और भत्ते

छोडी जाती, इस बात का सहज में ही अनुमान लगाया जासकता है कि प्रान्तीय सरकारों को इन सर्विसों की नौकरी से सम्बन्ध रखनेवाले नियम बनाने के अधिकार लगभग शून्य के बराबर होंगे।

यही नहीं बल्कि इसी उपधारा के अन्तर्गत, भारत-मंत्री भी ऐसा कोई परिवर्त्तन इन सर्विसों के नियमों में नहीं कर सकेगा, जिसके द्वारा पुराने अफ़सरों के अधिकारों को छीना जा सके। उदाहरणार्थ, यदि किसी समय भारत-मंत्री इन अफ़सरों के वेतनों को घटाना चाहे तो वह पुराने अफ़सरों के लिए ऐसा न कर सकेगा।

धारा २४७ की उपधारा २ के अनुसार इन अफसरों को तरक्क़ी देने, ऊँची जगह देने, तीन महीने से ज्यादा की छुट्टी की दरख्वास्त पर हुक्म सुनाने और मोअत्तिल करने के लिए गवर्नर को 'अपने विवेक' से काम लेने के लिए कहा गया है। अर्थात् इन मामलों में मिनिस्टरों का निर्णय अन्तिम निर्णय नहीं होगा।

तरक्क़ी और छुट्टी

धारा २४७ की उपधारा ३ के अन्तर्गत इन अफसरों के साथ यह रिआयत की गई है कि यदि गवर्नर किसी अफ़सर को मोअत्तिल करने की इजाजत देदे तो भी वह तबतक अपनी पूरी तनख़्वाह ही लेता रहेगा जबतक कि गवर्नर खुद 'अपने विवेक' से यह हुक्म न दे कि मोअत्तली की हालत में अमुक अफसर को केवल इतनी ही तनख़्वाह दी जाय। और धारा २४७ की उपधारा ४ के अनुसार इन अफ़सरों के वेतन व भत्तों के लिए प्रान्तीय धारा-सभा की मंजूरी लेने की भी ज़रूरत नहीं होगी।

धारा २४७ की उपधारा ५ के अन्तर्गत इन अफ़सरों को रिटायर होने पर अपनी पेंशनें सीधे केन्द्रीय सरकार से लेलेने का अधिकार होगा।

बाद में यह केन्द्रीय सरकार का काम होगा कि वह उस पेंशन को उन प्रान्तीय सरकार या सरकारों से वसूल करे जिनके कि मातहत उस अफ़सर ने काम किया हो।

पेंशनें

प्रान्तीय अफ़सरों की पेंशनों का भार केन्द्रीय सरकार पर डालने की वजह यह है कि अक्सर इन अफ़सरों को कई प्रान्तीय सरकारों के और केन्द्रीय सरकार तक के मातहत काम करने का मौक़ा पड़ता है। इन अफ़सरों को इस झंझट से बचाने के लिए कि वे किस प्रान्त से अपनी पेंशनें वसूल करें, यह नियम बना दिया गया है कि पेंशनों के मामले में उनका एकमात्र केन्द्रीय सरकार से ही सरोकार रहेगा। आमतौर पर यही नियम हाईकोर्ट के जजों की पेंशनों के बारे में रक्खा गया है।

ब्रिटिश सरकार को इन अफ़सरों की पेंशनों के बारे में कितनी अधिक फिक्र है, इसका अनुमान भारत-मंत्री लार्ड जेटलैण्ड के उस भाषण से लग जाता है जो उन्होंने ४ जुलाई १९३५ को लार्ड-सभा में इण्डिया-बिल की बहस के दौरान में दिया था। लार्ड जेटलैण्ड ने कहा था कि "वाइसराय की ख़ास जिम्मेदारियों में एक ख़ास जिम्मेदारी सरकारी कर्मचारियों और उनके आश्रितों के अधिकारों एवं हितों की रक्षा करने की है, और इस ख़ास जिम्मेदारी को पूरा करने में वह भारत-मन्त्री के मातहत होगा। यदि भारतीय धारा-सभाओं और मिनिस्टरों की नीति के फलस्वरूप पेंशनों की अदायगी के लिए भारतीय ख़जाने में रुपया न भी रहे, तो भारत-मन्त्री को वाइसराय को यह आदेश देने का अधिकार होगा कि पेंशनों की अदायगी के लिए वह विलायत में क़र्जा तक लेले।"

धारा २४७ की उपधारा ६ के अन्तर्गत यह नियम है कि यदि प्रान्तीय सरकार किसी अफ़सर को किसी वजह से पूरी पेंशन की जगह

कम पेंशन देना चाहे, तो वह भारत-मंत्री की पूर्व-अनुमति के बग़ैर ऐसा नहीं कर सकेगी।

धारा २४७ की उपधारा ७ के अनुसार भारत-मंत्री को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह समझे कि इन अफ़सरों के लिए बनाये गये नियमों के अनुसार चलना किसी ख़ास मामले में ठीक नहीं है तो वह सारे नियमों को ताक़ पर रखकर जैसा उचित समझे कर सकेगा।

नियन्त्रण और अनुशासन आदि के मामलों में भी इन अफ़सरों की स्थिति कुछ कम सुविधाजनक नहीं है। यदि किसी अफ़सर के साथ संयोगवश उसकी नौकरी के मामले में कोई अन्याय भी होजाय, या यदि अन्याय न भी हो लेकिन वह अफ़सर समझे कि उसके साथ अन्याय हुआ है, तो धारा २४८ की उपधारा १ के अन्तर्गत उसे अपना मामला ठेठ गवर्नर तक लेजाने का हक़ होगा। और गवर्नर को यह आदेश दिया गया है कि वह उस मामले की तहक़ीक़ात कराये और 'अपने विवेक' से उस मामले का फ़ैसला करे।

नियंत्रण और अनुशासन की ढिलाई

धारा २४८ की उपधारा २ के अन्तर्गत इन अफ़सरों को किसी प्रकार की भी सज़ा, यहाँतक कि ताकीद भी, तबतक नहीं की जा सकेगी जबतक कि गवर्नर ख़ुद 'अपने विवेक' से ऐसा फ़ैसला न करे। और यदि गवर्नर किसी अफ़सर को सज़ा देने या उसे ताकीद करने का हुक्म दे भी दे, या उसकी नौकरी के नियमों की ऐसी व्याख्या करदे जो उस अफ़सर को पसन्द न हो, तो उसे अपना मामला ठेठ भारत-मन्त्री तक लेजाने का अधिकार होगा।

सबसे अन्त में धारा २४९ के अन्तर्गत भारत-मंत्री को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह समझे कि नया विधान जारी होने के कारण

आल-इण्डिया सर्विस के किसी अफ़सर को किसी प्रकार का नुक़सान पहुँचा

मुआवज़ा

है तो वह उस अफ़सर को या उसके किसी उत्तराधिकारी को प्रान्त के ख़ज़ाने से जितना उचित समझे उतना मुआवज़ा दिलादे। इस मुआवज़े के लिए उसे प्रान्तीय धारासभा की मंजूरी लेने की भी ज़रूरत नहीं होगी।

पुराने अफ़सरों के अधिकार

अभीतक आल-इण्डिया सर्विस के उन अफ़सरों के अधिकारों का वर्णन किया गया है, जिनकी भर्ती भविष्य में भारत-मन्त्री के हाथ में रहेगी। लेकिन एक्ट की धारा २५० के अन्तर्गत ये सब अधिकर समान रूप से उन पुराने अफ़सरों को भी प्रदान किये गये हैं, जिनकी भर्त्ती भारत-मंत्री ने की थी और जो नये विधान के बाद भी प्रान्तीय सरकार की नौकरी में रहेंगे। क़रीब-करीब यही स्थिति प्रान्तीय सरकार के मातहत काम करनेवाले उन अफ़सरों की रहेगी जो फ़ौज में से लिये जायँगे या फ़ौज में से लिये गये होंगे।

## प्राविंशल सर्विस

आल-इण्डिया सर्विसों के अफ़सरों के बाद प्रान्तीय अफसरों में दूसरा नम्बर उन अफ़सरों का है जो प्राविंशल सर्विस के अफ़सर कहलाते हैं। आल-इण्डिया सर्विस की भाँति प्राविंशल सर्विस भी कई शाखाओं में विभाजित हैं, जिनके अलग-अलग नाम है। आमतौर पर आल-इण्डिया सर्विसों की हरेक शाखा से मिलती हुई प्राविंशल सर्विसों की भी शाखायें होती हैं। उदाहरणार्थ, इण्डियन सिविल सर्विस के मुक़ाबले में हरेक प्रान्त में प्राविंशल सिविल सर्विस होती है। इण्डियन पुलिस सर्विस के मुक़ाबले में प्रत्येक प्रान्त में प्राविंशल पुलिस सर्विस होती है। इसी प्रकार और सर्विसों के बारे में समझना चाहिए। इण्डियन सिविल सर्विस के नये

अफ़सरों को पहले अक्सर असिस्टेण्ट कलक्टर और ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेटों के पदों पर नियुक्त किया जाता है, लेकिन यदि इन्ही पदों पर प्राविंशल सर्विस के अफसर नियुक्त किये जायँ तो उन्हें डिप्टी कलक्टर और डिप्टी मजिस्ट्रेट कहा जाता है। कुछ प्रान्तों में इण्डियन सिविल सर्विस के नये अफ़सरों को जो जगह पहले दी जाती है वह असिस्टेण्ट कमिश्नर की होती है, लेकिन यदि प्राविंशल सर्विस के अफ़सर उसी जगह पर नियुक्त किये जायँ तो उन्हें एक्स्ट्रा-असिस्टेण्ट कमिश्नर कहा जाता है। इसी प्रकार प्राविंशल पुलिस सर्विस के अफ़सरों को आमतौर पर डिप्टी सुपरिन्टेण्डेण्ट पुलिस की जगह पर नियुक्त किया जाता है, लेकिन यदि उसी जगह पर इण्डियन पुलिस का अफ़सर नियुक्त हो तो वह असिस्टेण्ट सुपरिण्टेण्डेण्ट ऑफ पुलिस कहलाता है।[1]

विशेष संरक्षण

प्राविंशल सर्विसों के अफसरों की भर्त्ती करने, उनके वेतन व भत्ते तय करने और उनकी नौकरी वग़ैरा के मामलों के लिए नियम बनाने का पूरा अधिकार प्रान्तीय सरकारों को दिया गया है। उन आम संरक्षणों के अलावा, जो हरेक सरकारी कर्मचारी के लिए एक्ट में रक्खे गये हैं, प्राविंशल सर्विस के अफसरों के लिए केवल यह संरक्षण विशेषरूप से रक्खा गया है कि इनकी नौकरी वग़ैरा के जो नियम बनाये जायँगे उनमें एक नियम इस आशय का ज़रूर होगा कि नौकरी के मामलों में इनके ख़िलाफ़ जो हुक्म

१. जिन-जिन आल-इण्डिया सर्विसों की भर्ती भारत-मन्त्री द्वारा बन्द होचुकी है, उनकी जगह प्रान्तीय सरकारों द्वारा जो नई सर्विसें क़ायम की गई हैं उनको आमतौर पर 'पहले श्रेणी की प्राविंशल सर्विस' का नाम दिया गया है और उनके साथ की पुरानी प्राविंशल सर्विसों को 'दूसरी श्रेणी की प्राविंशल सर्विस' का नाम दिया गया है।

जारी हों उनके ख़िलाफ़ कम-से-कम एक अपील उच्च अधिकारियों तक करने का इन्हें अधिकार होगा। लेकिन प्रान्तीय सरकार के हुक्म के ख़िलाफ़ कोई अपील ये किसी और उच्च अधिकारी के पास न लेजा सकेंगे।

यह तो हुई प्राविंशल सर्विस के उन अफ़सरों के अधिकारों की बात जो नये भर्त्ती होंगे। लेकिन प्राविंशल सर्विसों के पुराने अफ़सरों की

पुराने अफ़सर

स्थिति भी लगभग वैसी ही मजबूत रक्खी गई है जैसी कि आल-इण्डिया सर्विस के अफसरों की। धारा २४१ उपधारा ३ के अनुसार इन अफसरों की नौकरी के मामलों में कोई ऐसा परिवर्त्तन, जो इनके ख़िलाफ़ जाता हो, तवतक नहीं हो सकेगा जबतक कि वह परिवर्त्तन या तो भारत-मंत्री की अनुमति से या ऐसे किसी अधिकारी द्वारा न किया गया हो जिसे ८ मार्च १९२६ को ऐसा परिवर्त्तन करने का अधिकार था। ८ मार्च १९२६ की तारीख़ रखने की यह गरज़ है कि यद्यपि इस तारीख़ तक प्रान्तीय सरकारों को प्राविंशल सर्विस के अफ़सरों की भर्त्ती वग़ैरा करने का अधिकार था, लेकिन उनकी नौकरी वग़ैरा के लिए नियम ज्यादातर भारत-मंत्री द्वारा ही बनाये जाते थे। ९ मार्च १९२६ को प्रान्तीय सरकारों को पहली बार इन अफ़सरों की नौकरी के नियम बनाने का अधिकार मिला था। संक्षेप में इसका यह मतलब हुआ कि ८ मार्च १९२६ तक जो अफ़सर प्राविंशल सर्विस में भर्त्ती हो चुके थे उनका संरक्षक भी भारत-मंत्री ही रहेगा।

इसके अलावा धारा २५८ उपधारा १ के अनुसार प्रान्तीय स्वराज्य से पहले के अफसरों की कोई भी जगह तवतक कमी में नहीं लाई जा सकती जबतक कि स्वयं गवर्नर 'अपने विवेक' से उसकी मंजूरी न देदे।

हाँ, ये पुराने अफ़सर जैसे-जैसे कम होते जायँगे वैसे-वैसे इनकी जगहों में कमी की जा सकेगी।

धारा २५८ की उपधारा २ के अनुसार इन अफसरों के वेतन, भत्ते और पेंशन आदि के नियमों में कोई परिवर्त्तन तबतक नहीं होसकेगा जबतक कि गवर्नर 'अपने विवेक' से उसकी मंजूरी न देदे। इसी उपधारा के अनुसार इनके आवेदन-पत्रों पर कोई खिलाफ़ हुक्म भी तबतक नहीं दिया जायगा जबतक कि गवर्नर 'अपने विवेक' से उसे जारी न करे।

यदि प्राविंशल सर्विस के इन अफ़सरों में कुछ अफ़सर ऐसे हों जिनकी नियुक्ति भारत-मंत्री ने की हो, तो धारा २५८ उपधारा ३ के अनुसार उनकी जगहें तबतक नहीं तोडी जा सकतीं और उनके वेतन, भत्तों व पेंशन के नियमों में तबतक परिवर्त्तन नहीं किया जा सकता जबतक कि भारत-मंत्री की मंजूरी न लेली जाय। ऐसे हरेक अफ़सर को भारत-मंत्री तक अपील करने का भी अधिकार होगा।

*सबॉर्डिनेट सर्विस*

प्राविंशल सर्विस के अफ़सरों के बाद प्रान्तीय कर्मचारियों में सबॉर्डिनेट या मातहत सर्विस के कर्मचारियों का नम्बर आता है। आल-इण्डिया सर्विस और प्राविंशल सर्विस के अलावा जितने भी सरकारी कर्मचारी हैं, चाहे वे दफ़्तरी या चपरासी ही क्यों न हों, वे इसी श्रेणी में शामिल किये जाते हैं। इनकी भर्ती का अधिकार प्रान्तीय सरकारों के हाथ में रहेगा और इनकी नौकरी वगैरा के आमतौर पर सब नियम भी प्रान्तीय सरकार ही बनायगी। लेकिन इस नियम में एक अपवाद है और वह यह है कि डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस के दर्जे से नीचे के जितने भी पुलिस अफ़सर व कान्सटेबल होंगे उनकी भर्ती और नौकरी के नियमादि में परिवर्तन प्रान्तीय धारा-सभा के एक्ट के जरिये ही होसकेगा और

तत्सम्बन्धी बिलों पर विचार करने के लिए गवर्नर से पूर्व-अनुमति लेनी होगी।

इन आम संरक्षणों के अलावा जो प्रान्त के हरेक सरकारी कर्मचारी के हक़ में रक्खे गये हैं, सबोर्डिनेट सर्विस के कर्मचारियों के लिए भी यह एक संरक्षण विशेष रूप से रक्खा गया है कि हरेक कर्मचारी को अपनी नौकरी के मामलों में अपने अफ़सर के हुक्म के ख़िलाफ़ कम-से-कम एक बड़े अफ़सर तक अपील करने का अधिकार होगा। इसी तरह सबोर्डिनेट सर्विस के पुराने कर्मचारियों के लिए भी धारा २४१ उपधारा ३ में यह नियम रक्खा गया है कि ८ मार्च १९२६ से पहले के कर्मचारियों के नौकरी-सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन या तो भारत-मंत्री की अनुमति से किया जासकेगा या उन अधिकारियों द्वारा जिनको ८ मार्च १९२६ तक ऐसा करने का अधिकार था। इस सम्बन्ध में यह जानना मनोरंजक होगा कि इस तारीख़ तक सबोर्डिनेट सर्विस के कर्मचारियों की पेंशनों के बारे में भी नियम भारत-मंत्री द्वारा ही बनाये जाते थे। अतः प्रान्तीय सरकार को इन पुराने कर्मचारियों की पेंशनों के नियमों में भारत-मंत्री की अनुमति बिना परिवर्त्तन करने का कोई अधिकार न होगा। उदाहरणार्थ, यदि प्रान्तीय मिनिस्टर ८ मार्च १९२६ से पहले भर्ती हुए चपरासियों की पेंशनों के नियमों में तब्दीली करना चाहें तो उन्हें इसके लिए भारत-मंत्री से अनुमति लेनी होगी।

*पब्लिक सर्विस कमीशन*

एक्ट की धारा २६४ द्वारा प्रत्येक प्रान्त में एक पब्लिक सर्विस कमीशन की स्थापना की गई है, जिसका काम आल-इण्डिया सर्विस के अफसरों के अलावा प्रान्तीय सरकार के मातहत काम करनेवाले और सब कर्मचारियों की भर्ती करना होगा। इसके अलावा प्रान्तीय कर्मचा-

रियों की नौकरी से सम्बन्ध रखनेवाले कई मामलों में भी प्रान्तीय सरकार को प्रान्त के पब्लिक सर्विस कमीशन से सलाह लेना लाज़िमी होगा। एक्ट की धारा २६६ उपधारा ३ के अनुसार प्रान्तीय सरकार को निम्नलिखित सब मामलों में पब्लिक सर्विस कमीशन से सलाह लेनी पड़ेगी :—

( अ ) भिन्न-भिन्न सर्विसों के अफ़सरों और कर्मचारियों की भर्ती का तरीक़ा;

( ब ) सरकारी अफ़सरों व कर्मचारियों की नियुक्ति और उनकी पद-वृद्धि के सिद्धान्त; और

( स ) अनुशासन और नियन्त्रण सम्बन्धी सब मामले।

एक्ट की धारा २६६ उपधारा ४ के अनुसार डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस के दर्जे से नीचे के सब पुलिस अफसरों व कान्सटेबलों के बारे में प्रान्तीय सरकार को पब्लिक सर्विस कमीशन से उपर्युक्त मामलों में सलाह लेना लाज़िमी न होगा। और उपधारा ३ के अनुसार गवर्नर को भी यह अधिकार दिया गया है कि वह नियम बनाकर प्रान्त के और ख़ास-ख़ास अफसरों और कर्मचारियों के सम्बन्ध में पब्लिक सर्विस कमीशन के दख़ल का अन्त करदे। इस प्रकार नियम बनाने में गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से काम करेगा।

प्रान्त के पब्लिक सर्विस कमीशन के सदस्यों की संख्या निश्चित करने, उसके चेयरमैन व सदस्यों को नियुक्ति करने, उनके वेतन-भत्ते निश्चित करने और उनकी नौकरी वग़ैरा के नियम बनाने का अधिकार गवर्नर को होगा और इन सब बातों में वह 'अपनी मर्ज़ी' से काम कर सकेगा। एक्ट की धारा २६८ के अनुसार, प्रान्तीय धारा-सभा से पब्लिक सर्विस कमीशन के ख़र्चे की मंज़ूरी लेना भी जरूरी न होगा।

एक्ट की धारा २६५ के अनुसार प्रान्त के पब्लिक सर्विस कमीशन के कम-से-कम आधे सदस्य ऐसे होने चाहिएँ जो १० साल तक भारत में सरकारी मुलाज़िम रह चुके हों।

यह ध्यान रहे कि प्रान्त के पब्लिक सर्विस कमीशन मिनिस्टरों के काम में लाभदायक तभी सिद्ध होसकते हैं जब कि उनके सदस्यों की नियुक्ति वगैरा मिनिस्टरों के ही हाथ में रहे। ऐसा न होने पर यह समझा जाय कि प्रान्तों के लिए पब्लिक सर्विस कमीशनों की नियुक्ति का उद्देश्य बहुत कुछ यही है कि प्रान्त के कर्मचारियों पर धारा-सभा और मंत्रि-मण्डल का प्रभाव ज्यादा न बढ़ सके तो उसमें आश्चर्य न होगा।

: ६ :

# प्रान्तीय धारा-सभाओं का संगठन

*धारा-सभाओं के भवन*

एक्ट की धारा ६० के अन्तर्गत गवर्नर वाले प्रत्येक प्रान्त में धारा-सभा की स्थापना कीगई है, जिसके किसी प्रान्त में एक और किसीमें दो भवन होंगे। इन्हें क्रमशः लेजिस्लेटिव असेम्बली और लेजिस्लेटिव कौंसिल नाम दिया गया है। इनमें लेजिस्लेटिव असेम्बली गवर्नर वाले हरेक प्रान्त में रक्खी गई है, और उडीसा की असेम्बली के सिवा और सब प्रान्तों की असेम्बलियों के सदस्य केवल निर्वाचन द्वारा ही नियुक्त किये जाया करेंगे। लेकिन मद्रास, बम्बई, बंगाल, संयुक्तप्रान्त, बिहार और आसाम इन छः प्रान्तों में लेजिस्लेटिव असेम्बलियों के अलावा लेजिस्लेटिव कौंसिलें भी रहेंगी। धारा-सभा के इस दूसरे भवन यानी लेजिस्लेटिव कौंसिल के, जिसे आमतौर पर 'द्वितीय चेम्बर' या 'अपर चेम्बर' के नाम से भी पुकारा जाता है, अधिकांश सदस्य निर्वाचित होंगे, लेकिन कुछ गवर्नर द्वारा नामज़द भी हुआ करेंगे।

यह ध्यान रहे कि भारत के प्रान्तों में द्वितीय चेम्बरों का श्रीगणेश नये विधान के 'प्रान्तीय स्वराज्य' के साथ ही होता है। इससे पहले, मॉण्टफ़ोर्ड-युग में भी, भारत के किसी प्रान्त में द्वितीय चेम्बरें नहीं थीं।

यह भी याद रखने की बात है कि भारतीय लोकमत प्रान्तों में द्वितीय चेम्बरों की स्थापना के हमेशा विरुद्ध रहा है। यही नहीं बल्कि साइमन-कमीशन और भारत-सरकार तक ने इनकी स्थापना की कभी

एकमत से सिफ़ारिश नहीं की; बल्कि मॉण्टफोर्ड-युग की कई प्रान्तीय सरकारों ने तो इनकी स्थापना का घोर विरोध तक किया था। उदाहरणार्थ, मद्रास, बम्बई और आसाम इन तीनों प्रान्तों की सरकारों ने अपने यहाँ द्वितीय चेम्बरों की स्थापना का विरोध किया था और भारत-सरकार ने भी यह सिफ़ारिश की थी कि जिन प्रान्तों की सरकारें द्वितीय चेम्बर के पक्ष में नहीं हैं उनमें द्वितीय चेम्बरों की स्थापना हर्गिज़ न की जाय। यही नहीं बल्कि ब्रिटिश सरकार ने भी पहले व्हाइट-पेपर के ज़रिये यह प्रस्ताव किया था कि जिन प्रान्तों में द्वितीय चेम्बर स्थापित किये जायँ वहाँके दोनों चेम्बरों को यह अधिकार भी दिया जाय कि वे चाहें तो १० साल बाद प्रस्ताव पास करके अपने यहाँकी द्वितीय चेम्बर का अन्त करदें। लेकिन ज्वाइण्ट पार्लमेण्ट कमेटी ने इसके विरुद्ध सिफ़ारिश की, जिससे प्रान्तों को यह अधिकार नहीं दिया गया।[1]

*लेजिस्लेटिव असेम्बली*

नये विधान की प्रान्तीय असेम्बलियों को हम मॉण्टफ़ोर्ड-युग की लेजिस्लेटिव कौंसिलों की उत्तराधिकारिणी कहें तो अनुपयुक्त न होगा। नये विधान से इनके संगठन में सबसे पहला जो परिवर्त्तन हुआ, वह यह है कि इनका जीवन-काल ३ साल से बढ़ाकर ५ साल कर दिया गया है। लेकिन मॉण्टफ़ोर्ड-युग की तरह अब गवर्नर को इनका काल बढ़ाने का अधिकार नहीं रहा है; अलबत्ता इनको किसी भी समय भंग करके नये चुनाव की आज्ञा देने का अधिकार गवर्नर को अब भी होगा। दूसरा परिवर्त्तन यह हुआ है कि उडीसा की असेम्बली के सिवा अब इनमें नामजद सदस्य बिलकुल नहीं रहेंगे। इस नियम में केवल एक अपवाद है; वह यह कि प्रान्त का कोई भी मिनिस्टर—चाहे वह प्रान्तीय असेम्बली

१. ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट; पृष्ठ ६५, पैरा ११७।

का सदस्य न भी हो—प्रान्तीय असेम्बली की कार्रवाई में भाग ले सकता है। यही बात एडवोकेट-जनरल के बारे में भी है। लेकिन कोई भी मिनिस्टर या एडवोकेट-जनरल असेम्बली के सदस्य न होने की हालत में असेम्बली में मत देने के अधिकारी नहीं होसकते।[1] और तीसरा परिवर्त्तन यह है कि इनके सदस्यों की संख्यायें पहले से लगभग दूनी करदी गई हैं।

*असेम्बलियों के सदस्य*

प्रान्तीय असेम्बलियों के सदस्यों-सम्बन्धी विवरण खास एक्ट के बजाय उसके ५वें परिशिष्ट में दिया गया है। इसी प्रकार भिन्न-भिन्न जातियों और सीटों के लिए जो निर्वाचन-क्षेत्र वग़ैरा बनाये गये हैं उनका वर्णन एक्ट की धारा २९१ के अन्तर्गत जारी किये गये सम्राट् के एक आर्डर-इन-कौंसिल में किया गया है। इस परिशिष्ट और आर्डर-इन-कौंसिल के अनुसार प्रान्तीय असेम्बलियों के सदस्यों-सम्बन्धी खास-खास बातें निम्नप्रकार हैं।

*सीटों का बँटवारा*

एक्ट के परिशिष्ट ५ के अन्त में एक तालिका द्वारा बताया गया है कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और विशेष हितों के लिए असेम्बलियों की सीटों का बँटवारा किस प्रकार किया गया है। वह तालिका अगले पृष्ठ पर दीगई है।

इस तालिका में सीटों का जो बँटवारा किया गया है वह ब्रिटिश सरकार के उस फ़ैसले के मुताबिक है जिसे ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटेन के तत्कालीन प्रधान-मन्त्री श्री रैमज़े मैक्डॉनल्ड की सिफ़ारिश पर

१. मिनिस्टरों और एडवोकेट-जनरल को इसी प्रकार प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल की कार्रवाई में भी भाग लेने का अधिकार होगा, चाहे वे उसके सदस्य न भी हों; लेकिन सदस्य न होने की हालत में वे मत देने के अधिकारी नहीं होंगे।

## प्रान्तीय असेम्बलियों की सीटों का बँटवारा

| प्रान्त | कुल सदस्य | जनरल सीटें | | पिछड़े हुए क्षेत्रों और जातियों की सीटें | सिक्खों की सीटें | मुसलमानों की सीटें | एंग्लो-इण्डियनों की सीटें | यूरोपियनों की सीटें | हिन्दुस्तानी ईसाइयों की सीटें | व्यापार-संघों के प्रतिनिधियों की सीटें | जमींदारों की सीटें | यूनिवर्सिटी की सीटें | मजदूर-प्रतिनिधियों की सीटें | स्त्रियों की सीटें | | | | |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | कुल | हरिजनों के लिए सुरक्षित | | | | | | | | | | | जनरल | सिक्ख | मुसलमान | एंग्लो-इण्डियन | हिन्दुस्तानी ईसाइन |
| मद्रास | २१५ | १४६ | ३० | १ | ... | २८ | २ | ३ | ८ | ६ | ६ | १ | ६ | ६ | ... | १ | ... | १ |
| बम्बई | १७५ | ११४ | १५ | १ | ... | २९ | २ | ३ | ३ | ७ | २ | १ | ७ | ५ | ... | १ | ... | ... |
| बंगाल | २५० | ७८ | ३० | ... | ... | ११७ | ३ | ११ | २ | १९ | ५ | २ | ८ | २ | ... | २ | १ | ... |
| संयुक्तप्रान्त | २२८ | १४० | २० | ... | ... | ६४ | १ | २ | २ | ३ | ६ | १ | ३ | ४ | ... | २ | ... | ... |
| पंजाब | १७५ | ४२ | ८ | ... | ३१ | ८४ | १ | १ | २ | १ | ५ | १ | ३ | १ | १ | २ | ... | ... |
| बिहार | १५२ | ८६ | १५ | ७ | ... | ३९ | १ | २ | १ | ४ | ४ | १ | ३ | ३ | ... | १ | ... | ... |
| मध्यप्रान्त-बरार | ११२ | ८४ | २० | १ | ... | १४ | १ | १ | ... | २ | ३ | १ | २ | ३ | ... | ... | ... | ... |
| आसाम | १०८ | ४७ | ७ | ९ | ... | ३४ | ... | १ | १ | ११ | ... | ... | ४ | १ | ... | ... | ... | ... |
| सीमाप्रान्त | ५० | ९ | ... | ... | ३ | ३६ | ... | ... | ... | ... | २ | ... | ... | ... | ... | ... | ... | ... |
| उडीसा | ६० | ४४ | ६ | ५ | ... | ४ | ... | ... | १ | १ | २ | ... | १ | २ | ... | ... | ... | ... |
| सिन्ध | ६० | १८ | ... | ... | ... | ३३ | ... | २ | ... | २ | २ | ... | १ | १ | ... | १ | ... | ... |

बम्बई में जनरल सीटों में ७ मराठों के लिए सुरक्षित हैं। पंजाब में जमींदारों की सीटों में एक सीट तूमान-दारों के लिए है। उडीसा और आसाम में स्त्रियों की सीटें किसी जाति के लिए सुरक्षित नहीं हैं।

'साम्प्रदायिक निर्णय' के रूप में ४ अगस्त १९३२ को प्रकाशित किया था। पूना-पैक्ट और उडीसा को पृथक् प्रान्त बनाने की वजह से जो परिवर्तन उस तरीते में करने लाजिमी हुए हैं उनके अलावा और कोई विशेष परिवर्तन इस साम्प्रदायिक बँटवारे में नहीं किया गया है।

साम्प्रदायिक सीटें

तालिका का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि सिक्खों के लिए पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त में, मुसलमानों के लिए सब प्रान्तों में, एंग्लो-इण्डियनों के लिए आसाम, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, उडीसा व सिन्ध को छोड़कर शेष सब प्रान्तों में, यूरोपियनों के लिए पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त व उडीसा को छोड़कर शेष सब प्रान्तों में, और भारतीय ईसाईयों के लिए मध्यप्रान्त-बरार, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त व सिन्ध को छोड़कर शेष सब प्रान्तों में अलग सीटें सुरक्षित रक्खी गई हैं। मद्रास, बम्बई, बिहार, मध्यप्रान्त-बरार, आसाम और उडीसा इन ६ प्रान्तों में 'पिछडे हुए क्षेत्रों और जातियों' (Backward areas and tribes) के लिए भी अलग सीटें सुरक्षित रक्खी गई हैं। पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और सिन्ध को छोड़कर शेष सब प्रान्तों में हरिजनों[1] के लिए जनरल सीटों में से कुछ सीटें सुरक्षित रक्खी गई हैं। बम्बई में जनरल सीटों में से कुछ सीटें मराठों के लिए भी सुरक्षित हैं। हिन्दुओं के लिए किसी प्रान्त में और खास बंगाल, पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त और सिन्ध में भी, जहाँ उनका अल्पमत है, हिन्दुओं के नाम से कोई सीट सुरक्षित नहीं रक्खी गई। उन्हें केवल

१. भिन्न-भिन्न प्रान्तों में हरिजनों की परिभाषा में किन-किन जाति को शामिल किया जायगा, इसके बारे में सम्राट् की ओर से एक आर्डर-इन-कौंसिल जारी किया गया है। एक्ट में और आर्डर-इन-कौंसिल में इन्हें 'परिगणित जातियों' (Scheduled Castes) का नाम दिया गया है।

जनरल सीटों से ही खडे होने का अधिकार होगा। इन्हीं जनरल सीटों से उन सब जातियों को भी खड़ा होने का अधिकार होगा जिन्हें उस प्रान्त में कोई विशेष प्रतिनिधित्व न मिला हो। उदाहरणार्थ, संयुक्तप्रान्त में जनरल सीटों से सिक्ख भी खडे होसकते हैं और पारसी भी, क्योंकि इन जातियों को संयुक्तप्रान्त में कोई विशेष प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। कुछ प्रान्तों में तो उन जातियों को भी जिन्हें उस प्रान्त में विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया है, एक खास हालत में जनरल सीटों से खडे होने का अधिकार होगा। जैसे बम्बई में ईसाई सीटों के निर्वाचन-क्षेत्र सारे प्रान्त में फैले हुए न होकर खास दो-एक जिलों में ही रक्खे गये हैं। ऐसी हालत में शेष जिलों के ईसाई मतदाताओं को जनरल सीटों में शामिल होने का अधिकार दिया गया है।

पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त को छोड़कर शेष सब प्रान्तों में स्त्रियों के लिए भी कुछ सीटें सुरक्षित रक्खी गई हैं; लेकिन उनका आधार भी साम्प्रदायिक ही रक्खा गया है। अर्थात् स्त्रियों की सीटों में भी यह भेद कर दिया गया है कि ये सीटें अमुक-अमुक सम्प्रदाय की स्त्रियों के लिए सुरक्षित होंगी। उदाहरणार्थ, मद्रास की स्त्रियों की ८ सीटों में से एक सीट मुस्लिम स्त्री के लिए और एक हिन्दुस्तानी ईसाइन के लिए सुरक्षित हैं। इसी प्रकार बंगाल में मुस्लिम और एंग्लो-इण्डियन स्त्रियों के लिए, पंजाब में सिक्ख और मुस्लिम स्त्रियों के लिए, और बम्बई, संयुक्तप्रान्त, बिहार व सिन्ध में मुस्लिम स्त्रियों के लिए सीटें सुरक्षित रक्खी गई हैं। हाँ, आसाम और उडीसा में स्त्री-सीटें किसी जाति-विशेष के लिए सुरक्षित नहीं रक्खी गई।

स्त्री-सीटें

साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के अलावा प्रान्तों में कई विशेष हितों को भी संरक्षण दिया गया है। इस प्रकार साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व और

विशेष प्रतिनिधित्व इन दोनों का ही प्रान्तों की धारा-सभाओं में बोल-वाला रहेगा। यदि भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के प्रतिनिधि किसी प्रश्न पर एकमत हो भी जायें, तो 'विशेष हितों' के प्रतिनिधि दूसरे रास्ते पर जाये बिना न रहेंगे। ये विशेष हित हैं (१) व्यापार-उद्योग, (२) जमींदार, (३) मजदूर, और (४) विश्वविद्यालय। व्यापारिक और औद्योगिक हितों को पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के अलावा सब प्रान्तों में अलग सीटें दीगई हैं। जमींदारों को आसाम के अलावा सब प्रान्तों में अलग सीटें दीगई हैं। मजदूरों के लिए पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के अलावा सब प्रान्तों में सीटें सुरक्षित हैं। और विश्वविद्यालयों के लिए आसाम, पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त, उड़ीसा और सिन्ध के अलावा सब प्रान्तों में सीटें सुरक्षित हैं। पंजाब में जमींदारों की सीटों में से भी एक सीट तुमानदारों के लिए सुरक्षित है।

विशेष हितों का संरक्षण

साम्प्रदायिक सीटों में आर्डर-इन-कौंसिल द्वारा एक प्रकार का भेद और किया गया है, और उसका आधार है निर्वाचन-क्षेत्रों को शहरी व देहाती हल्कों में बांटना। उदाहरणार्थ, संयुक्त-प्रान्त की १४० जनरल सीटों में से १७ शहरी और १२३ देहाती इलाकों में बांटी गई हैं। इसी प्रकार हरिजनों के लिए सुरक्षित रक्खी गई २० सीटों में से ४ शहरी और १६ देहाती इलाकों के लिए सुरक्षित हैं। मुसल्मानों की ६४ सीटों में से १३ शहरी और ५१ देहाती इलाकों के लिए रक्खी गई हैं। स्त्रियों को ४ जनरल सीटों में से १ शहरी और ३ देहाती इलाकों के लिए सुरक्षित हैं, और मुसल्मानों की २ सीटों में से १ शहरी और १ देहाती इलाके के लिए सुरक्षित हैं। युरोपियन, एंग्लोइन्डियन और हिन्दुस्तानी ईसाइयों की सीटों को शहरी

शहरी व देहाती सीटें

व देहाती इलाक़ों में नहीं बाँटा गया, क्योंकि ये लोग ज्यादातर शहरों व क़स्बों में ही रहते हैं।

इसी प्रकार ग़ैर-साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों में भी भिन्न-भिन्न हितों को प्रतिनिधित्व देने की कोशिश कीगई है। उदाहरणार्थ, संयुक्तप्रान्त

*और भेद*

में ३ व्यापारिक सीटों में से २ यूरोपियन व्यापारियों के व्यापार-मण्डल के और १ भारतीय व्यापारियों के व्यापार-मण्डल के लिए सुरक्षित रक्खी गई हैं। ज़मींदारों की ६ सीटों में से ४ अवध के ब्रिटिश इण्डियन असोसिएशन और दो इलाहाबाद के आगरा प्रान्तीय ज़मींदार-असोसिएशन के लिए सुरक्षित रक्खी गई हैं। मज़दूरों की ३ सीटों में से १ ट्रेड यूनियनों और २ ग़ैर-यूनियन मज़दूरों के लिए सुरक्षित रक्खी गई हैं। यही बात अन्य प्रान्तों के बारे में है।

*निर्वाचन-विधि*

साम्प्रदायिक सीटों का चुनाव पृथक् निर्वाचन-पद्धति से हुआ करेगा। अर्थात् हरेक सम्प्रदाय की सीटों का चुनाव उसी जाति के मतदाता करेंगे, जबकि जनरल ( आम ) निर्वाचन-क्षेत्रों में उन सब मतदाताओं को मत देने का अधिकार होगा जिन्हें उस प्रान्त में और किसी साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र में शामिल नहीं किया गया होगा। रहे निर्वाचन-क्षेत्र। सो मुसलमान, एंग्लो-इण्डियन और सिक्खों को जिन-जिन प्रान्तों में विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया है उन-उन प्रान्तों में क़रीब-क़रीब सारे प्रान्त को ही निर्वाचन-क्षेत्रों में बाँटा गया है। लेकिन इस नियम का एक अपवाद है। बहिर्गत-क्षेत्र जैसे कुछ इलाके ऐसे हैं जिन्हें प्रतिनिधित्व का कोई अधिकर नहीं दिया गया है। जिन प्रान्तों में यूरोपियनों को सीटें दीगई हैं उनमें केवल आसाम ही एक प्रान्त है जिसमें यूरोपियनों के निर्वाचन-

क्षेत्र सारे प्रान्त में नहीं बल्कि कुछ जिलों तक ही मर्यादित हैं। ईसाइयों के निर्वाचन-क्षेत्र आमतौर पर सारे प्रान्त में न होकर उन ख़ास-ख़ास जिलों या शहरों में रक्खे गये हैं जहाँ उनकी आबादी काफ़ी है। संयुक्तप्रान्त और मद्रास इस नियम के अपवाद हैं; और बिहार में ईसाई सीट का चुनाव सीधा मतदाताओं द्वारा न होकर छोटा नागपुर कैथलिक सभा और बिहार-उडीसा की क्रिश्चियन कौंसिल द्वारा नामज़द किये गये ४०-४० सदस्यों के मतों से हुआ करेगा। पिछडे हुए क्षेत्रों और जातियों को ६ प्रान्तों में जो विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया है उनमें मद्रास, मध्यप्रान्त-बरार और आसाम में इन जातियों के निर्वाचन-क्षेत्र सारे प्रान्त में न रक्खे जाकर ख़ास-ख़ास इलाकों में ही रक्खे गये हैं और बम्बई व बिहार में यह किया गया है कि जनरल सीटों के कुछ ख़ास निर्वाचन-क्षेत्रों में ही इन जातियों को शामिल कर दिया गया है। यही उडीसा की इनकी ५ में से १ सीट के लिए किया गया है; लेकिन शेष ४ सीटों में निर्वाचन न होगा बल्कि गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से 'पिछडे हुए क्षेत्रों और जातियों' के प्रतिनिधियों को नामज़द करेगा। हरिजनों के लिए निर्वाचन-क्षेत्र पृथक् नहीं बनाये गये; वे जनरल निर्वाचन-क्षेत्रों में ही शामिल होंगे।

निर्वाचन-क्षेत्रों के बारे में यह भी जानना ज़रूरी है कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से एक ही सदस्य चुना जायगा या एक से अधिक भी? यानी ये

**बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र**

निर्वाचन-क्षेत्र एकसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्र (Single-member constituencies) होंगे या बहुसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्र (Multi-member constituencies)? नये विधान में आमतौर से तो यही नियम रक्खा गया है कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से एक ही सदस्य चुना जाय। लेकिन कुछ प्रान्तों में

ईसाई, एंग्लो-इण्डियन और यूरोपियनों के लिए बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र भी रक्खे गये हैं और कुछ प्रान्तों में मुसलमानों की और जनरल सीटों के लिए भी बहुसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्र रक्खे गये हैं---जैसे कि बम्बई और मद्रास में। इसके अलावा चूंकि पूना-पैक्ट के अन्तर्गत हरिजनों के लिए पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र नहीं बनाये जासकते, उनके लिए प्रान्त के ख़ास-ख़ास निर्वाचन-क्षेत्रों में ही सीटें सुरक्षित रखदी गई हैं; इसलिए, इस वजह से भी, उन सब प्रान्तों में, जहाँ हरिजनों को विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया है, जनरल निर्वाचन-क्षेत्र बहुसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्र ही हैं।

बहुसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्रों में अक्सर यह पेचीदगी उठ खडी होती है कि प्रत्येक मतदाता को कितने मत देने का अधिकार दिया जाय? अगर एक मतदाता को एक ही मत देने का अधिकार हो, तब तो कोई दिक्क़त नहीं; लेकिन यदि हरेक मतदाता को उतने ही मत देने का अधिकार हो कि जितनी सीटें हों, तब यह दिक्क़त पेश आती है कि प्रत्येक मतदाता को अपने सारे मत उम्मीदवारों में अपनी मर्ज़ी के माफ़िक बाँटने का अधिकार दिया जाय या प्रत्येक मतदाता एक उम्मीद-वार को एक मत से ज्यादा न देसके? नये विधान में इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न बहुसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न प्रकार के नियम रक्खे गये हैं।

इन भिन्न-भिन्न बहुसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्रों में मत-विभाजन की जो प्रणालियाँ रक्खी गई हैं उन सबका वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीं है।

**हरिजन-सीटों का चुनाव**

अतः यहाँ केवल हरिजन-सीटों की चुनाव-प्रणाली पर प्रकाश डाला जायगा। पूना-पैक्ट के अनुसार उन-उन जनरल बहुसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्रों के हरिजन मतदाताओं को, जिनमें हरिजनों के लिए सीटें सुरक्षित रक्खी गई हैं,

क्षेत्र सारे प्रान्त में नहीं बल्कि कुछ जिलों तक ही मर्यादित हैं। ईसाइयों के निर्वाचन-क्षेत्र आमतौर पर सारे प्रान्त में न होकर उन ख़ास-ख़ास जिलों या शहरों में रक्खे गये हैं जहाँ उनकी आबादी काफ़ी है। संयुक्तप्रान्त और मद्रास इस नियम के अपवाद हैं; और बिहार में ईसाई सीट का चुनाव सीधा मतदाताओं द्वारा न होकर छोटा नागपुर कैथलिक सभा और बिहार-उडीसा की क्रिश्चियन कौंसिल द्वारा नामजद किये गये ४०-४० सदस्यों के मतों से हुआ करेगा। पिछडे हुए क्षेत्रों और जातियों को ६ प्रान्तों में जो विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया है उनमें मद्रास, मध्यप्रान्त-बरार और आसाम में इन जातियों के निर्वाचन-क्षेत्र सारे प्रान्त में न रक्खे जाकर ख़ास-ख़ास इलाकों में ही रक्खे गये हैं और बम्बई व बिहार में यह किया गया है कि जनरल सीटों के कुछ ख़ास निर्वाचन-क्षेत्रों में ही इन जातियों को शामिल कर दिया गया है। यही उडीसा की इनकी ५ में से १ सीट के लिए किया गया है; लेकिन शेष ४ सीटों में निर्वाचन न होगा बल्कि गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से 'पिछडे हुए क्षेत्रों और जातियों' के प्रतिनिधियों को नामज़द करेगा। हरिजनों के लिए निर्वाचन-क्षेत्र पृथक् नहीं बनाये गये; वे जनरल निर्वाचन-क्षेत्रों में ही शामिल होंगे।

निर्वाचन-क्षेत्रों के बारे में यह भी जानना ज़रूरी है कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से एक ही सदस्य चुना जायगा या एक से अधिक भी ? यानी ये

बहुसदस्य निर्वाचन-क्षेत्र

निर्वाचन-क्षेत्र एकसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्र ( Single-member constituencies ) होंगे या बहुसदस्य-निर्वाचन-क्षेत्र(Multi-member constituencies)? नये विधान में आमतौर से तो यही नियम रक्खा गया है कि एक निर्वाचन-क्षेत्र से एक ही सदस्य चुना जाय। लेकिन कुछ प्रान्तों में

किया गया है। यह कहना व्यर्थ न होगा कि इस पद्धति ने पूना-पैक्ट के मूल उद्देश्य को नष्ट कर दिया है और उलट-फेरकर फिर उसी पृथक् निर्वाचन-पद्धति को जारी कर दिया गया है जिसका गांधीजी ने विरोध किया था। क्योंकि ज्यादातर होगा यही कि हरिजन मतदाता अपने सारे मत हरिजन उम्मीदवार को देंगे और ग़ैर-हरिजन मतदाता ग़ैर-हरिजन उम्मीदवार को।

स्त्रियों की सीटें

स्त्रियों के लिए जो सीटें भिन्न-भिन्न प्रान्तों में सुरक्षित रक्खी गई हैं, उनके निर्वाचन-क्षेत्र सारे प्रान्त में फैले हुए न होकर प्रान्त के ख़ास-ख़ास शहरों में ही रक्खे गये हैं। आमतौर पर स्त्री-सीटों के चुनाव में पुरुष और स्त्री दोनों को ही मत देने का अधिकार दिया गया है, लेकिन बंगाल व बिहार की मुस्लिम स्त्री-सीटों के चुनाव में और आसाम की जनरल स्त्री-सीटों के चुनाव में पुरुष मतदाता भाग न ले सकेंगे।

### *लेजिस्लेटिव कौंसिलें*

लेजिस्लेटिव कौंसिलें इन छः प्रान्तों में क़ायम की गई हैं ( १ ) मद्रास, ( २ ) बम्बई, ( ३ ) बंगाल, ( ४ ) संयुक्तप्रान्त, ( ५ ) बिहार और ( ६ ) आसाम। इनमें सीटों का बँटवारा उस तालिका के अनुसार होगा, जो अगले पृष्ठ पर दीगई है।

लेजिस्लेटिव असेम्बलियों की भाँति लेजिस्लेटिव कौंसिलों के लिए भी हरेक प्रान्त में मुसलमानों और यूरोपियनों की सीटें पृथक् सुरक्षित रक्खी गई हैं, जिनका चुनाव पृथक् निर्वाचन-पद्धति द्वारा हुआ करेगा। हिन्दुस्तानी ईसाइयों के लिए केवल मद्रास प्रान्त में सीटें सुरक्षित रहेंगी, जिनका चुनाव भी पृथक् निर्वाचन-पद्धति से होगा। शेष जातियों के व्यक्तियों को जनरल सीटों से खड़े होने और मत देने का अधिकार

पहले एक प्रारम्भिक चुनाव में भाग लेने का अधिकार होगा, जिसके उम्मीदवार भी हरिजन ही होंगे। इस चुनाव में जिन चार उम्मीदवारों को सबसे अधिक मत मिलेंगे वे ही बाद में उस जनरल निर्वाचन-क्षेत्र के चुनाव में हरिजनों के लिए सुरक्षित रक्खी गई सीट से खडे हो सकेंगे। इसके अलावा उस जनरल निर्वाचन-क्षेत्र की साधारण सीटों के लिए भी वे उम्मीदवार समझे जायँगे। आमतौर पर जनरल निर्वाचन-क्षेत्रों की साधारण सीटों से अन्य हरिजन उम्मीदवार भी खडे होसकेंगे, लेकिन बंगाल में कोई भी हरिजन जनरल निर्वाचन-क्षेत्रों की साधारण सीट से तबतक खड़ा न होसकेगा जबतक कि वह प्रारम्भिक चुनाव में सफल न होजाय।

प्रारम्भिक चुनाव के बाद जब आम चुनाव होगा तो प्रत्येक मतदाता को, चाहे वह हरिजन हो या ग़ैर-हरिजन, चुनाव में उतने ही मत देने का अधिकार होगा जितनी कि सीटें होंगी, और उसको भिन्न-भिन्न उम्मीदवारों में उन मतों का अपनी मर्ज़ी के माफिक बँटवारा करने का अधिकार होगा—यानी वह चाहे तो सारे मत एक ही उम्मीदवार को देदे या और किसी प्रकार उनका बँटवारा करे। यह ज़रूरी नहीं कि एक उम्मीदवार को एक ही मत दिया जाय, और यह भी ज़रूरी नहीं कि मतों का विभाजन हरिजन व ग़ैर-हरिजन दोनों प्रकार के उम्मीदवारों में किया जाय। कोई मतदाता चाहे तो अपने सारे मत हरिजन उम्मीदवार को देदे या ग़ैर-हरिजन उम्मेदवार को। व्यवहार में होगा भी ऐसा ही। मत-विभाजन का यह सिद्धान्त हैमण्ड-कमेटी [1] की सिफ़ारिश पर जारी

१. हैमण्ड कमेटी से अभिप्राय उस कमेटी से है जो गवर्मेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट पास होजाने के बाद चुनाव-सम्बन्धी विभिन्न मामलों पर विचार करने के लिए नियुक्त कीगई थी।

होगा। बंगाल व बिहार इन दो प्रान्तों की लेजिस्लेटिव कौंसिलों में कुछ सदस्य ऐसे भी हुआ करेंगे, जिनका चुनाव उन प्रान्तों की लेजिस्लेटिव असेम्वली के सदस्यों द्वारा हुआ करेगा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि लेजिस्लेटिव असेम्वली अपने ही कुछ सदस्य चुनकर लेजिस्लेटिव कौंसिल में भेज देगी; बल्कि इस चुनाव में वे सब व्यक्ति उम्मीदवार होसकेंगे जिन्हें प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल की किसी भी सीट के चुनाव में मत देने का अधिकार होगा। यदि इस प्रकार उस प्रान्त की खास लेजिस्लेटिव असेम्वली का ही कोई सदस्य कौंसिल के लिए चुन लिया जाय तो उसे असेम्वली की सीट से इस्तीफा देना होगा। ये चुनाव आनुपातिक-प्रतिनिधित्व की 'निर्वाचन-प्रणाली'( Proportional Representation by means of the single transferable vote ) द्वारा हुआ करेंगे।

प्रत्येक प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल में कुछ सदस्यों को नामज़द करने का अधिकार गवर्नर को भी होगा और वह इस अधिकार के प्रयोग में 'अपनी मर्ज़ी' से काम कर सकेगा। लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की नामज़दगी के बारे में गवर्नरों को जो आदेश सम्राट् के आदेश-पत्रों द्वारा दिया गया है, वह इस प्रकार है:—

नामज़द सदस्य

"लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की नामज़दगी करने के अपने अधिकार को हमारा गवर्नर इस प्रकार प्रयोग में लायगा कि जहांतक होसके उस असमानता को दूर किया जाय जो चुनाव के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न हितों को कौंसिल में उचित प्रतिनिधित्व न मिल सकने के कारण उत्पन्न हुई हो; और खासतौर से वह इस बात का खयाल रक्खेगा कि कौंसिल में स्त्रियों और हरिजनों को वाजिब प्रतिनिधित्व मिल जाय।"

## प्रान्तीय कौंसिलों की सीटों का बँटवारा

| प्रान्त | कुल सदस्य | जनरल | मुसलमान | यूरोपियन | हिन्दुस्तानी ईसाई | असेम्बली के नामज़द | गवर्नर द्वारा नामज़द |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| मद्रास | कम-से-कम ५४<br>ज्यादा-से-ज्यादा ५६ | ३५ | ७ | १ | ३ | ... | कम-से-कम ८<br>ज्यादा-से-ज्यादा १० |
| बम्बई | कम-से-कम २९<br>ज्यादा-से-ज्यादा ३० | २० | ५ | १ | ... | ... | कम-से-कम ३<br>ज्यादा-से-ज्यादा ४ |
| बंगाल | कम-से-कम ६३<br>ज्यादा-से-ज्यादा ६५ | १० | १७ | ३ | ... | २७ | कम-से-कम ६<br>ज्यादा-से-ज्यादा ८ |
| संयुक्तप्रान्त | कम-से-कम ५८<br>ज्यादा-से-ज्यादा ६० | ३४ | १७ | १ | ... | ... | कम-से-कम ६<br>ज्यादा-से-ज्यादा ८ |
| बिहार | कम-से-कम २९<br>ज्यादा-से-ज्यादा ३० | ९ | ४ | १ | ... | १२ | कम-से-कम ३<br>ज्यादा-से-ज्यादा ४ |
| आसाम | कम-से-कम २१<br>ज्यादा-से-ज्यादा २२ | १० | ६ | २ | ... | ... | कम-से-कम ३<br>ज्यादा-से-ज्यादा ४ |

होगा। बंगाल व बिहार इन दो प्रान्तों की लेजिस्लेटिव कौंसिलों में कुछ सदस्य ऐसे भी हुआ करेंगे, जिनका चुनाव उन प्रान्तों की लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों द्वारा हुआ करेगा। लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि लेजिस्लेटिव असेम्बली अपने ही कुछ सदस्य चुनकर लेजिस्लेटिव कौंसिल में भेज देगी; बल्कि इस चुनाव में वे सब व्यक्ति उम्मीदवार होसकेंगे जिन्हें प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल की किसी भी सीट के चुनाव में मत देने का अधिकार होगा। यदि इस प्रकार उस प्रान्त की ख़ास लेजिस्लेटिव असेम्बली का ही कोई सदस्य कौंसिल के लिए चुन लिया जाय तो उसे असेम्बली की सीट से इस्तीफा देना होगा। ये चुनाव आनुपातिक-प्रतिनिधित्व की 'निर्वाचन-प्रणाली' ( Proportional Representation by means of the single transferable vote ) द्वारा हुआ करेंगे।

प्रत्येक प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल में कुछ सदस्यों को नामज़द करने का अधिकार गवर्नर को भी होगा और वह इस अधिकार के प्रयोग में 'अपनी मर्ज़ी' से काम कर सकेगा। लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की नामज़दगी के बारे में गवर्नरों को जो आदेश सम्राट् के आदेश-पत्रों द्वारा दिया गया है, वह इस प्रकार है :—

नामज़द सदस्य

"लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों की नामज़दगी करने के अपने अधिकार को हमारा गवर्नर इस प्रकार प्रयोग में लायगा कि जहांतक होसके उस असमानता को दूर किया जाय जो चुनाव के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न हितों को कौंसिल में उचित प्रतिनिधित्व न मिल सकने के कारण उत्पन्न हुई हो; और ख़ासतौर से वह इस बात का ख़याल रक्खेगा कि कौंसिल में स्त्रियों और हरिजनों को वाजिब प्रतिनिधित्व मिल जाय।"

लेजिस्लेटिव असेम्बली के जीवन-काल की तरह लेजिस्लेटिव कौंसिल का कोई जीवन-काल निर्धारित नहीं किया गया है, यद्यपि सदस्यों की सदस्यता की अवधि अवश्य ९ साल रक्खी गई है। लेजिस्लेटिव कौंसिलों के पहले चुनाव के एक-तिहाई सदस्यों की अवधि ३ साल में और एक-तिहाई सदस्यों की अवधि ६ साल में समाप्त होजायगी। इस प्रकार हर तीन साल बाद लेजिस्लेटिव कौंसिलों के एक-तिहाई सदस्यों का नया चुनाव हुआ करेगा। कौन-कौनसे सदस्य पहले ३ साल बाद और कौन-कौनसे पहले ६ साल बाद सदस्यता से अलग होजायँगे, इस बात का निर्णय करने का अधिकार गवर्नर को होगा और वह इस मामले में 'अपनी मर्जी' से काम करने का अधिकारी होगा।

जीवन-काल

*मताधिकार*

प्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली के सदस्यों के चुनाव में किन-किन व्यक्तियों को मत देने का अधिकार होगा, इसका विस्तार से उल्लेख एक्ट के छठे परिशिष्ट में किया गया है। यह परिशिष्ट केवल साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रों के मतदाताओं की योग्यता से सम्बन्ध रखता है। शेष सीटों के लिए मत-दाताओं की क्या योग्यतायें निर्धारित कीगई हैं, इसका उल्लेख एक्ट की धारा २९१ के अन्तर्गत जारी किये गये एक आर्डर-इन-कौंसिल में किया गया है। भिन्न-भिन्न प्रान्तों के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के नियम बनाये गये हैं, लेकिन जहांतक साम्प्रदायिक सीटों का सम्बन्ध है, इन नियमों का एक उद्देश्य यह रहा है कि जनता के लगभग १५ प्रतिशत व्यक्तियों को मत देने का अधिकार मिल जाय। मॉण्टफोर्ड-युग में प्रान्तीय लेजि-स्लेटिव कौंसिलों के चुनाव के लिए मताधिकार-सम्बन्धी जो नियम बनाये

असेम्बली में

गये थे उनके फलस्वरूप ब्रिटिश भारत में लगभग ७३ लाख व्यक्तियों को मत देने का अधिकार प्राप्त हुआ था, अर्थात् ब्रिटिश भारत की जनता के लगभग ३ प्रतिशत व्यक्ति ही मत देने के अधिकारी हुए थे। साइमन-कमीशन नें सिफ़ारिश की थी कि मताधिकार-सम्बन्धी नियमों में काफ़ी ढील दी जानी चाहिए, ताकि जनता के लगभग १० प्रतिशत व्यक्तियों को मत देने का अधिकार प्राप्त होजाय। गोलमेज़ परिषद् के प्रथम अधिवेशन में मताधिकार-उपसमिति की ओर से यह सिफ़ारिश कीगई कि लगभग २५ प्रतिशत व्यक्तियों को मत देने का अधिकार होना चाहिए। अन्त में गोलमेज़ परिषद् के दूसरे अधिवेशन के बाद लॉर्ड लोथियन की अध्यक्षता में जो मताधिकार-समिति बिठाई गई उसकी सिफ़ारिशों के फलस्वरूप लगभग १३ प्रतिशत व्यक्तियों को मत देने का अधिकार दिया गया है।

मताधिकार की योग्यता का मुख्य आधार अभीतक सम्पत्ति है—जैसे मालगुज़ारी देना, लगान देना, इनकमटैक्स देना, और शहरों में मकानों का किराया या भाड़ा देना। इनके अलावा शिक्षा-सम्बन्धी योग्यता के आधार पर भी मताधिकार दिया गया है। आमतौर पर अपर प्राइमरी तक की शिक्षा पानेवाले प्रत्येक व्यक्ति को मत देनें का अधिकार दिया गया है। हरिजन जातियों और स्त्रियों के लिए नियमों में कुछ और ढील रक्खी गई है। साथ ही फ़ौज के अवसर-प्राप्त (रिटायर्ड) और पेंशन-याफ़्ता अफ़सरों व सिपाहियों को भी पहली बार एक सिरे से मत देने का अधिकार देदिया गया है।

लेजिस्लेटिव कौंसिलें आमतौर पर जमींदारों और रईसों की कौंसिलें होंगी। इसी वजह से इनके मतदाताओं की मताधिकार-योग्यता, जिसका आधार भी सम्पत्ति है, बहुत ऊँची रक्खी गई है। उदाहरणार्थ, जहाँ

संयुक्तप्रान्त में इनकमटैक्स देनेवाला कोई भी व्यक्ति लेजिस्लेटिव असेम्बली की सीटों की वोटर-लिस्ट में अपना नाम दर्ज करा सकता है, लेजिस्लेटिव कौंसिल की सीटों की वोटर-लिस्ट में इनकमटैक्स देने की वजह से वे ही व्यक्ति अपना नाम दर्ज करा सकेंगे जिनकी कम-से-कम ४,०००) वार्षिक की आमदनी पर इनकमटैक्स लगा हो।

कौंसिल में

सम्पत्ति-सम्बन्धी योग्यता के अलावा निम्न प्रकार के व्यक्तियों को भी लेजिस्लेटिव कौंसिल की वोटर-लिस्ट में शामिल होने का अधिकार होगाः—

(१) ब्रिटिश भारत की किसी भी धारा-सभा के भूतपूर्व और वर्तमान ग़ैर-सरकारी सदस्य;

(२) ब्रिटिश भारत की किसी भी एग्जीक्यूटिव कौंसिल के भूतपूर्व या वर्तमान सदस्य, या कोई भी भूतपूर्व या वर्तमान मिनिस्टर;

(३) ब्रिटिश भारत की किसी भी यूनिवर्सिटी के चान्सलर, प्रो-चान्सलर, वाइस-चान्सलर, प्रो-वाइस चान्सलर, और सिनेट व कोर्ट के भूतपूर्व या वर्तमान सदस्य;

(४) फ़ेडरल कोर्ट या किसी भी हाईकोर्ट के भूतपूर्व या वर्तमान जज;

(५) मद्रास, कलकत्ता और बम्बई के भूतपूर्व व वर्तमान मेयर;

(६) म्यूनिसिपल बोर्ड या जिला बोर्डों के भूतपूर्व व वर्तमान ग़ैर-सरकारी चेयरमैन;

(७) दीवानबहादुर, सरदारबहादुर, खानबहादुर, रायबहादुर, रायबहादुर और इनसे ऊँचे खिताब पानेवाले सब व्यक्ति; और

(८) ब्रिटिश भारत में २५०) मासिक या इससे ज्यादा पेंशन पाने-वाले सब व्यक्ति।[1]

[1] लेजिस्लेटिव कौंसिल के मताधिकार-सम्बन्धी नियमों का ब्योरे-

*सदस्यता पर पाबन्दियाँ*

प्रान्तीय धारा-सभा के चुनावों में खड़े होनेवाले उम्मीदवारों के लिए किन-किन योग्यताओं की जरूरत है और कौन-कौनसी वजूहात ऐसी हैं जिनके फलस्वरूप किसी व्यक्ति को प्रान्तीय धारा-सभा की सदस्यता से अलग कर दिया जायगा, या जिनके फलस्वरूप वह व्यक्ति चुनाव में उम्मीदवार खड़ा होने के लिए अयोग्य समझा जायगा, इन सबका उल्लेख एक्ट की धारा ६९, परिशिष्ट ५ और धारा २९१ के अन्तर्गत जारी किये गये विभिन्न आर्डर-इन-कौंसिलों में किया गया है। उसके अनुसार—

(१) प्रान्तीय धारा-सभा के चुनाव में किसी निर्वाचन-क्षेत्र से उम्मीदवार बनने के लिए सबसे पहली शर्त यह है कि वह उम्मीदवार मतदाता हो। आमतौर पर यह जरूरी नहीं कि उसका नाम उस निर्वाचन-क्षेत्र की वोटर-लिस्ट में ही दर्ज हुआ हो जिससे कि वह उम्मीदवार खड़ा होना चाहता है। इस सिलसिले में आर्डर-इन-कौंसिलों के अन्तर्गत जारी किये गये नियमों में काफी उदारता दिखाई गई है, लेकिन उनमें किसी एक सिद्धान्त को नहीं अपनाया गया है।

(२) प्रत्येक उम्मीदवार का या तो ब्रिटिश प्रजा अथवा किसी ऐसी देशी रियासत का नरेश या प्रजा होना आवश्यक है जिसका उल्लेख इस सिलसिले में सम्राट् के किसी आर्डर-इन-कौंसिल में या गवर्नरों के नियमों में किया जाय। उदाहरणार्थ, संयुक्तप्रान्त की हद के अन्दर जो देशी रियासतें हैं उनके नरेशों और प्रजा को संयुक्तप्रान्तीय लेजिस्लेटिव असेम्बली और लेजिस्लेटिव कौंसिल के चुनावों में खड़ा होने का अधिकार दिया गया है। फेडरेशन स्थापित होने पर फेडरेशन में

---

वार वर्णन सम्राट् के आर्डर-इन-कौंसिल द्वारा किया गया है।

शामिल होनेवाली प्रत्येक देशी रियासत के नरेश और वहाँकी प्रजा को भी यह रिआयत मिल जायगी।

(३) लेजिस्लेटिव असेम्बली के लिए कोई व्यक्ति तबतक उम्मीदवार नहीं होसकता जबतक कि उसकी अवस्था कम-से-कम २५ वर्ष न हो। इसी प्रकार लेजिस्लेटिव कौंसिल के लिए कोई व्यक्ति तबतक उम्मीदवार नहीं होसकता जबतक कि उसकी अवस्था कम-से-कम ३० वर्ष न हो।

(४) मिनिस्टरों के अलावा सरकारी ख़ज़ाने से वेतन या अन्य किसी प्रकार का पुरस्कार पानेवाला कोई भी कर्मचारी न तो धारा-सभा का सदस्य रह सकता है और न चुनाव में खड़ा होसकता है। लेकिन प्रान्तीय धारा-सभा को यह अधिकार है कि वह एक्ट पास करके इस पाबन्दी को उन कर्मचारियों पर से उठा ले जिनका कि वह एक्ट में उल्लेख करना उचित समझे। कई प्रान्तों में एक्ट पास करके यह नियम बना भी दिया गया है, कि कोई भी व्यक्ति चुनाव में उम्मीदवार होने या प्रान्तीय धारा-सभा का सदस्य रहने से केवल इसी बिना पर वंचित न किया जायगा कि उसने 'पार्लमेण्टरी सेक्रेटरी' का ओहदा स्वीकार कर लिया है। पंजाब में ज़ैलदारों, इनामदारों वग़ैरा को भी, जिन्हें सरकारी ख़जाने से कुछ पुरस्कार मिलता रहता है, इस प्रकार की पाबन्दी से मुक्त कर दिया गया है।

(५) कोई भी ऐसा व्यक्ति जो किसी अदालत द्वारा पागल घोषित किया जा चुका है, न तो धारा-सभा का सदस्य रह सकता है और न किसी चुनाव में उम्मीदवार होसकता है।

(६) कोई भी ऐसा व्यक्ति जो दिवालिया करार दिया गया हो और जिसे अदालत द्वारा कर्ज़ों से छुटकारा न मिला हो, न तो धारा-

सभा का सदस्य रह सकता है और न किसी चुनाव में उम्मीदवार हो सकता है।

(७) कोई भी ऐसा व्यक्ति जो किसी चुनाव-सम्बन्धी जाँच में चुनाव-ट्रिब्यूनल द्वारा किसी जुर्म करने का या किसी ग़ैर-क़ानूनी या नाजायज़ हरकत का दोषी ठहरा दिया गया हो, न तो धारा-सभा का सदस्य रह सकता है और न किसी चुनाव में उम्मीदवार होसकता है। लेकिन यह अयोग्यता ऐसी है जो कुछ समय के बाद स्वतः दूर होजाती है। चुनावों के सम्बन्ध में कौन-कौनसी हरकतें नाजायज़ समझी जायेंगी और कितने समय के बाद वह अयोग्यता दूर होजायगी, इन बातों का उल्लेख भी सम्राट् के एक आर्डर-इन-कौंसिल द्वारा किया गया है। इस आर्डर-इन-कौंसिल के अनुसार ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो किसी भी चुनाव-सम्बन्धी जुर्म में सज़ा पा चुका हो या जो चुनाव-सम्बन्धी किसी नाजायज़ हरकत का दोषी ठहराया गया हो, आमतौर पर प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनावों में ६ साल तक खड़ा होने लिए अयोग्य समझा जायगा।

(८) यदि किसी व्यक्ति को ब्रिटिश भारत में किसी जुर्म में काले पानी की या दो साल या दो साल से अधिक की सज़ा होजाय, तो रिहा होने के बाद ५ साल तक वह व्यक्ति चुनाव में उम्मीदवार होने के अयोग्य रहेगा, चाहे उसे सजा किसी राजनैतिक अपराध के कारण ही क्यों न दीगई हो। लेकिन यदि गवर्नर चाहे तो 'अपनी मर्ज़ी' से किसी भी व्यक्ति की इस अयोग्यता को ५ साल खत्म होने से पहले ही दूर कर सकता है।

(९) किसी चुनाव में उम्मीदवार या किसी उम्मीदवार का चुनाव-एजेण्ट रहनेवाला कोई व्यक्ति यदि नियत समय में चुनाव में हुए ख़र्चे का हिसाब न दाखिल करे, तो वह भी ५ साल तक अगले चुनावों में

नहीं खड़ा होसकेगा। लेकिन अगर गवर्नर चाहे तो 'अपनी मर्ज़ी' से इस अयोग्यता को भी दूर कर सकता है।

(१०) ऐसा कोई व्यक्ति जो किसी अपराध की सज़ा पूरी करने के लिए या तो कालेपानी में हो या किसी जेल में बन्द हो, चुनाव में खड़ा नहीं होसकता। यह नियम शायद नज़रबन्दों पर लागू न हो-सकेगा; क्योंकि जबतक किसी व्यक्ति पर मुक़दमा न चले और उसे अदालत द्वारा बाक़ायदा सज़ा न मिले तबतक वह अपराधी नहीं कहा जा सकता।

(११) यदि किसी सदस्य को किसी चुनाव-सम्बन्धी मामले में सज़ा होजाय या किसी और अपराध में दो या दो साल से अधिक की सज़ा हो, तो उसे अपनी सदस्यता से अलग होना पड़ेगा। लेकिन अगर वह सदस्य तीन महीने के भीतर अपील या निगरानी की दर्ख़्वास्त देदे, तो जबतक उसकी अपील या निगरानी की दर्ख़्वास्त का फ़ैसला न हो-जाय तबतक उस व्यक्ति को सदस्यता से अलग नहीं होना पड़ेगा। लेकिन इस दर्मियान में वह व्यक्ति न तो धारा-सभा की बैठकों में भाग ले सकेगा और न मत दे सकेगा।

(१२) कोई भी व्यक्ति किसी प्रान्त की धारा-सभा के दोनों चेम्बरों का एकसाथ सदस्य नहीं रह सकता। नियत समय के अन्दर-अन्दर उसे दोनों जगहों में से एक जगह से इस्तीफा देना पड़ेगा। इसी प्रकार कोई भी व्यक्ति केन्द्रीय धारा-सभा और प्रान्तीय धारा-सभा दोनों का एकसाथ सदस्य नहीं रह सकता। यदि वह नियत समय में केन्द्रीय धारा-सभा की सदस्यता से इस्तीफा न देगा तो उसकी प्रान्तीय धारा-सभा वाली जगह ख़ाली होजायगी। समय नियत करने का अधिकार गवर्नर को है और इसमें वह 'अपने विवेक' से काम लेसकेगा।

(१३) यदि कोई व्यक्ति एक ही चेम्बर में एक से अधिक जगह से चुन लिया जाय, तो उसे भी केवल एक ही जगह पर रहने का अधिकार होगा। शेष जगहों से उसको इस्तीफा देना पड़ेगा।

(१४) प्रान्तीय धारा-सभा का कोई भी सदस्य धारा-सभा की कार्रवाई में तबतक भाग नहीं लेसकता जबतक कि वह या तो गवर्नर के सामने या गवर्नर द्वारा नियुक्त किसी व्यक्ति के सामने सम्राट् के प्रति वफ़ादारी की शपथ न लेले।

(१५) यदि कोई व्यक्ति जिस चेम्बर का वह सदस्य हो उसकी बैठकों से ६० दिन तक बिना चेम्बर की आज्ञा लिये लगातार ग़ैरहाज़िर रहे, तो चेम्बर को यह अधिकार होगा कि उस व्यक्ति को चेम्बर की सदस्यता से हटादे। इन ६० दिनों में वे दिन शामिल नहीं किये जायँगे जिन दिनों कि चेम्बर का अधिवेशन या तो भंग कर दिया गया हो या ४ दिन से अधिक के लिए स्थगित रहा हो।

यदि कोई व्यक्ति उपर्युक्त नियमों के विरुद्ध किसी धारा-सभा की बैठक में बैठे या मत दे, तो प्रतिदिन ऐसा करने के लिए उसपर अदालतों द्वारा ५००) तक का जुर्माना किया जा सकेगा।

*सदस्यों के रिआयती अधिकार*

धारा-सभा की सदस्यता एक सार्वजनिक कर्त्तव्य है। इस कर्त्तव्य का ठीक-ठीक पालन करने के लिए यह जरूरी है कि धारा-सभा के सदस्यों को निर्भयता से और बिना किसी रोक-टोक के इस कर्त्तव्य के पालन का मौक़ा दिया जाय। यह तभी सम्भव है जब कि देश के साधारण क़ानून उनपर उतनी ही सख्ती से न लागू किये जायँ कि जितनी सख्ती से वे आम लोगों पर किये जाते हैं। अतः धारा-सभाओं के सदस्यों के साथ कुछ रिआयतें की जाती हैं, जो एक प्रकार से उनके रिआयती

अधिकार ( Privileges ) ही कहलाने चाहिएँ। प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्यों को जो रिआयती अधिकार नये एक्ट में दिये गये हैं उनका वर्णन एक्ट की ७१वीं धारा में किया गया है। इस धारा के अनुसार धारा-सभा के प्रत्येक सदस्य को धारा-सभा में अपनी इच्छानुसार भाषण और मत देने की स्वतंत्रता होगी। उसके भाषण के फलस्वरूप या उसके किसी भी पक्ष-विपक्ष में मत देने के कारण उसपर कोई भी दीवानी या फ़ौजदारी मुक़दमा नहीं चलाया जासकता और न ही कोई और क़ानूनी कार्रवाई उसके ख़िलाफ़ की जासकती है। इसी प्रकार हाउस के अधिकार से हाउस के जो कोई काग़ज़ात, कार्रवाई, रिपोर्ट वग़ैरा छपाई जायँगी या प्रकाशित होंगी, उनके फलस्वरूप भी किसी व्यक्ति के खिलाफ़ कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं की जा सकेगी। लेकिन किसी भी सदस्य को हाउस के नियमों के विरुद्ध भाषण देने या मत देने का कोई अधिकार न होगा। प्रत्येक सदस्य के लिए हाउस के नियमों, स्टैण्डिंग आर्डरों और अध्यक्ष की रूलिंगों का मानना लाज़िमी होगा।

**धारा-सभाओं के भवनों की सत्ता**

इंग्लैण्ड में पार्लमेण्ट के प्रत्येक हाउस को यह अधिकार है कि यदि कोई व्यक्ति उसके काम में ख़लल डाले या और किसी प्रकार उसकी सत्ता का अपमान करे तो ख़ुद वारण्ट निकालकर उसे गिरफ़्तार करले। ब्रिटिश उपनिवेशों में जब उत्तरदायी शासन स्थापित किया गया था तो उनकी धारा-सभाओं के भिन्न-भिन्न भवनों को भी अपनी सत्ता की रक्षा करने के लिए उसी प्रकार के अधिकार दिये गये थे जिस प्रकार कि इंग्लैण्ड में कामन्स-सभा को हैं। लेकिन भारत में ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने धारा-सभाओं के भवनों को वैसे ही अधिकार और स्थिति देने से हाथ खींच लिया है। एक्ट की धारा ७१ उपधारा ३ के अनुसार किसी भी धारा-सभा के भवन

को या उसकी किसी कमेटी या अफ़सर को किसी व्यक्ति को सजा देने, वारण्ट निकालने, या गिरफ्तार करने का या ऐसा और कोई अधिकार प्राप्त न होगा जैसा कि अदालतों को होता है। प्रान्तीय धारा-सभाओं के भवनों को इन मामलों में केवल यह अधिकार दिया गया है कि वे हाउस के नियमों के विरुद्ध आचरण करनेवाले व और किसी प्रकार की बेढंगी हरकत करनेवाले व्यक्तियों को, चाहे वे सदस्य हों या दर्शक अथवा प्रेस-रिपोर्टर, हाउस से निकाल दें। अलबत्ता, इसके अलावा, धारा-सभा एक्ट पास करके यह कानून भी बना सकती है कि जो व्यक्ति किसी भी हाउस की कमेटी के सामने कमेटी के प्रधान के हुक्म के बावजूद गवाही देने से या कोई दस्तावेज पेश करने से इन्कार करे तो उसे अदालतों के जरिये सजा दी जा सकेगी। हाउस की सत्ता का अपमान होने पर केवल अदालतें ही मानहानि करनेवाले व्यक्ति को सजा दे सकेंगी, खास हाउस नहीं। लेकिन यदि गवर्नर 'अपने विवेक' से यह नियम बना दे कि मौजूदा या भूतपूर्व सरकारी कर्मचारी ख़ास-ख़ास वर्णित हालतों में ही कमेटी के सामने पेश होने को बाध्य होंगे तो वे कर्मचारी उन हालतों के अलावा कमेटी के सामने गवाही देने को बाध्य नहीं होंगे। इसी तरह गवर्नर 'अपने विवेक' से यह नियम भी बना सकेगा कि कोई कमेटी किसी व्यक्ति को उन मामलों पर प्रकाश डालने के लिए बाध्य न कर सकेगी जिन्हें गवर्नर गुप्त समझता हो।

एक्ट में वर्णित सदस्यों के रिआयती अधिकारों के अलावा धारा-सभाओं को भी उनके रिआयती अधिकारों में वृद्धि करने का अधिकार है; लेकिन इसके लिए उन्हें बाक़ायदा एक्ट पास करना होगा। यह ध्यान रहे कि अभीतक किसी भी प्रान्त की धारा-सभा ने इस दिशा में कोई क़दम नहीं उठाया है।

*सदस्यों के वेतन व भत्ते*

प्रान्त की असेम्बली और कौंसिल के सदस्यों को वेतन या भत्ते कितने दिये जायें, इसका निश्चय करने का अधिकार एक्ट की धारा ७२ के अनुसार प्रत्येक प्रान्त की धारा-सभा को होगा; लेकिन इसके लिए उन्हें बाक़ायदा एक्ट पास करने पड़ेंगे। जबतक वे एक्ट पास न होजायँगे तबतक सदस्यों को उसी प्रकार भत्ता दिया जायगा जिस प्रकार कि 'प्रान्तीय स्वराज्य' जारी होने से पहले उस प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल के सदस्यों को दिया जाता था। इसका अर्थ यह हुआ कि अब प्रान्तीय धारा-सभायें एक्ट पास करके अपने सदस्यों को भत्तों के अलावा बाक़ायदा वेतन भी दे सकेंगी, जैसा कि मद्रास, संयुक्तप्रान्त आदि प्रान्तों में किया भी गया है।

: ७ :

# प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकार

*अधिकारों का विभाजन*

फेडरेशन की किसी भी योजना के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि केन्द्र और प्रान्तों में अधिकारों का विभाजन स्पष्ट रूप से कर दिया जाय। जब कभी बहुत-से प्रान्त या छोटे-छोटे देश मिलकर एक केन्द्रीय सरकार को जन्म दें और साथ में अपना पृथक् अस्तित्व भी न खोना चाहें, तो ऐसा करना ही पड़ता है। हां, यदि वे प्रान्त या देश अपना पृथक् अस्तित्व खोकर एक प्रबल केन्द्रीय सरकार को जन्म दें, तब कोई दिक्कत नहीं आती; क्योंकि, उस हालत में, वे प्रान्त एक तरह से केन्द्रीय सरकार के सामने अपना समर्पण कर देते हैं। दक्षिण अफ्रीका का यूनियन राज्य ( Union of South Africa ) इसकी एक मिसाल है। लेकिन जब विभिन्न प्रान्त अपने पृथक् अस्तित्व को न खोना चाहें, तो केन्द्रों और प्रान्त के अधिकारों का स्पष्ट रूप से बँटवारा करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, जब कनाडा के उपनिवेशों ने मिलकर एक केन्द्रीय फेडरल सरकार को जन्म दिया तो केन्द्रीय फेडरल सरकार और प्रान्तों के अधिकारों का स्पष्ट बँटवारा कर दिया गया। इसी प्रकार जब आस्ट्रेलिया के उपनिवेशों ने मिलकर केन्द्रीय फेडरल सरकार को जन्म दिया तो केन्द्र और प्रान्तों के अधिकारों का अलग-अलग बँटवारा कर दिया गया। फेडरल पद्धति की केन्द्रीय सरकार का एक मुख्य गुण वास्तव में यही होता है कि उसमें केन्द्र और प्रान्तों के अधिकार-क्षेत्रों को अलग-अलग बाँट दिया जाता है।

अधिकार-विभाजन का तरीक़ा

भारत में यद्यपि अभी फेडरेशन क़ायम नहीं हुआ है, लेकिन ब्रिटिश भारत के प्रान्तों और केन्द्र के बीच अधिकारों का जो विभाजन किया गया है उसका आधार फेडरल ही है। इस दृष्टि से 'प्रान्तीय स्वराज्य' की योजना के अमल में आते ही केन्द्रीय सरकार का स्वरूप फेडरल सरकार का होगया है, चाहे नाम उसे फेडरल सरकार का न दिया गया हो। और चूंकि इस प्रकार के अधिकार-विभाजन में यह ख़ास बात होती है कि यदि केन्द्र या प्रान्त में से कोई भी अपनी सीमा से बढ़कर एक-दूसरे के क्षेत्र में चला जाय तो फ़ौरन मामला अदालतों में उठाया जा सकता है, ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों का फेडरेशन स्थापित होने से पहले ही फेडरल कोर्ट की स्थापना करदी गई है।

'प्रान्तीय स्वराज्य' की स्थापना के पूर्व यह बात नहीं थी। पुराने गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के अन्तर्गत जारी किये अधिकार-विभाजक नियमों ( Devolution Rules ) के द्वारा विषयों का 'केन्द्रीय' और 'प्रान्तीय' इन दो सूचियों में तो पहले भी विभाजन किया हुआ था, लेकिन यदि केन्द्रीय धारा-सभा किसी प्रान्तीय विषय पर और प्रान्तीय धारा-सभा किसी केन्द्रीय विषय पर क़ानून बना देती तो इस सवाल को अदालतों में नहीं उठाया जासकता था।

निराला बँटवारा

संसार में अभीतक जितने फेडरेशन क़ायम हुए हैं उनमें अधिकार-विभाजन की या तो यह पद्धति अख़्तियार की जाती है कि केन्द्रीय या फ़ेडरल विषयों की एक सूची बना ली जाय और शेष सब विषय प्रान्तीय समझे जायँ, या प्रान्तीय विषयों की सूची बनाकर शेष सब विषयों को केन्द्रीय अथवा फेडरल समझ लिया जाता है। आस्ट्रेलिया में इनमें से पहली और कनाडा में दूसरी पद्धति अख़्तियार कीगई है। लेकिन गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट के निर्माताओं ने

एक तीसरी ही पद्धति का अनुसरण किया है, जिसके अनुसार तीन सूचियाँ बनाई गई हैं। इनमें पहली सूची 'केन्द्रीय विषयों' की है, दूसरी 'प्रान्तीय विषयों' की, और तीसरी सूची ऐसे विषयों की है जो यद्यपि शासन की दृष्टि से तो प्रान्तीय ही रहेंगे लेकिन केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं को उनपर समान रूप से क़ानून बनाने का अधिकार रहेगा। इन सूचियों को हमने परिशिष्ट में क्रमशः 'केन्द्रीय सूची', 'प्रान्तीय सूची' और 'सम्मिलित सूची' का नाम दिया है।[1]

जो विषय 'केन्द्रीय सूची' में शामिल किये गये हैं उनपर एकमात्र केन्द्रीय धारा-सभा को क़ानून बनाने का अधिकार होगा; जो विषय 'प्रान्तीय सूची' में शामिल किये गये हैं उनपर एकमात्र प्रान्तीय धारा-सभाओं को अपने-अपने प्रान्त के लिए क़ानून बनाने का अधिकार होगा; लेकिन जो विषय 'सम्मिलित सूची' में हैं उनपर केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों ही धारा-सभायें क़ानून बना सकेंगी। दोनों के क़ानूनों में परस्पर-विरोध होने पर साधारणतया केन्द्रीय धारा-सभा का क़ानून ही श्रेष्ठ समझा जायगा; लेकिन प्रान्तीय धारा-सभा सम्मिलित सूची में रक्खे गये विषयों के बारे में कोई ऐसा क़ानून पास करे जो उसी विषय पर केन्द्रीय धारा-सभा द्वारा पास किये गये किसी क़ानून के ख़िलाफ़ हो लेकिन जिसे उस प्रान्त के गवर्नर के बजाय वाइसराय ने मंजूरी देदी हो, तो प्रान्तीय धारा-सभा वाला क़ानून ही श्रेष्ठ समझा जायगा। सम्मिलित सूची में आमतौर पर ऐसे विषय शामिल हैं जैसे कि दीवानी व फ़ौजदारी क़ानून,

१. सम्मिलित सूची को भी दो भागों में बाँटा गया है। इनमें से दूसरे भाग के विषयों के बारे में केन्द्रीय धारा-सभा एक्ट पास करके उन विषयों के शासन में प्रान्तीय सरकारों को आदेश देने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को दे सकेगी।

फैक्टरी-क़ानून, मजदूरों के झगड़े, समाचारपत्र, छापेख़ाने और पुस्तकों पर नियन्त्रण वग़ैरा। इसलिए यदि प्रान्तीय धारा-सभायें इन विषयों के बारे में बनाये गये केन्द्रीय क़ानूनों में परिवर्तन करना चाहेंगी, तो उन्हें अपने बिलों की मंजूरी गवर्नर के बजाय वाइसराय से करानी पड़ेगी। उदाहरणार्थ, यदि प्रान्तीय धारा-सभायें किसानों वग़ैरा को क़र्ज़ों से मुक्त करने लिए क़ानून पास करेंगी, तो उपयुक्त यही होगा कि उनकी मंजूरी वाइसराय से कराई जाय, अन्यथा अदालतों द्वारा उनके ग़ैर-क़ानूनी घोषित किये जाने की सम्भावना रहेगी।

यद्यपि इस बात की खूब कोशिश कीगई है कि शासन-सम्बन्धी कोई विषय इन सूचियों में से छूट न जाय, फिर भी कुछ विषयों का छूट जाना या भविष्य में नये विषयों का पैदा हो जाना कुछ असम्भव नहीं है। ऐसी परिस्थिति के लिए एक्ट में यह तजवीज कीगई है कि जब कोई नया विषय उत्पन्न हो तो वाइसराय को घोषणा-पत्र द्वारा यह घोषणा करने का अधिकार होगा कि वह विषय केन्द्रीय धारा-सभा के अधिकार-क्षेत्र में रहेगा या प्रान्तीय धारा-सभाओं के।

वाइसराय पर दारोमदार

युद्ध और आन्तरिक विद्रोह के दिनों में वाइसराय घोषणा-पत्र द्वारा केन्द्रीय धारा-सभा को प्रान्तीय सूची में शामिल किये गये विषयों पर क़ानून बनाने का अधिकार भी दे सकेगा। लेकिन केन्द्रीय धारा-सभा को इस प्रकार के किसी भी क़ानून पर विचार करने का तबतक कोई अधिकार न होगा जबतक कि वाइसराय पहले मंजूरी न देदे।

### धारा-सभाओं के अधिकारों पर पाबन्दी

यद्यपि आमतौर पर प्रान्तीय धारा-सभाओं को 'प्रान्तीय' और 'सम्मिलित' विषयों पर किसी प्रकार का भी क़ानून बनाने का पूर्ण

अधिकार होगा, लेकिन गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की कई धाराओं के अनुसार उनके इस अधिकार पर कई प्रकार की पाबन्दियाँ लगाई गई हैं।

वर्जित क़ानून

एक्ट की धारा ११० उपधारा ब (२) के अनुसार कोई भी धारा-सभा ऐसा कोई क़ानून नहीं बना सकती जो गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट या उसके मातहत जारी किये गये किसी आर्डर-इन-कौंसिल या भारत-मन्त्री द्वारा बनाये गये किसी नियम के विरुद्ध हो, या जो वाइसराय और गवर्नर द्वारा बनाये गये ऐसे नियमों के विरुद्ध हो जिनके बनाने में उन्होंने 'अपनी मर्ज़ी' या 'अपने विवेक' से काम लिया हो। इस नियम का एक अपवाद है; वह यह कि प्रान्तीय धारा-सभा के सदस्यों की निर्वाचन-विधि के बारे में जो नियम गवर्नर ने 'अपने विवेक' के अनुसार बनाये हों, उनके विरुद्ध भी प्रान्तीय धारा-सभा को नियम बनाने का अधिकार होगा। निर्वाचन-विधि से यहाँ तात्पर्य निर्वाचन-सम्बन्धी ऐसी बातों से है जैसे कि निर्वाचनों में रंगीन बाक्स-प्रणाली काम में लाई जाय या किसी और ढंग से मत डाले जायँ, मतदाताओं की सूचियाँ किस प्रकार तैयार की जायँ, आदि-आदि।

सम्राट् की सत्ता

एक्ट की धारा ११० उपधारा ब (१) के अनुसार कोई भी धारा-सभा ऐसा कोई क़ानून नहीं बना सकती जो सम्राट् या उसके परिवार के किसी सदस्य पर किसी प्रकार लागू हो सके, या जो राजगद्दी के अधिकारों से सम्बन्ध रखता हो, या जो भारत के किसी भी भाग में स्थापित सम्राट् की सत्ता के प्रतिकूल हो। इसी उपधारा के अनुसार कोई भी धारा-सभा ऐसा कोई क़ानून नहीं बना सकती जो ब्रिटिश पार्लमेण्ट द्वारा बनाये हुए इन क़ानूनों के विरुद्ध हो—( १ ) 'ब्रिटिश प्रजा' की परिभाषा से

सम्बन्ध रखनेवाले क़ानून; ( २ ) अंग्रेज फ़ौजी अफ़सरों व सोल्जरों के नियन्त्रण व अनुशासन से सम्बन्ध रखनेवाले एक्ट, जो आमतौर पर आर्मी एक्ट, एयरफ़ोर्स एक्ट और नेवल डिसिप्लिन एक्ट के नाम से प्रसिद्ध हैं; और ( ३ ) युद्ध के दिनों की सामुद्रिक लूट से सम्बन्ध रखनेवाले क़ानून।

एक्ट की धारा ११० उपधारा व (३) के अनुसार कोई भी धारा-सभा प्रिवी कौंसिल के इस प्राचीन अधिकार को नहीं छीन सकती कि वह किसी भी व्यक्ति को प्रिवी कौंसिल के सामने अपनी अपील पेश करने की विशेष रूप से अनुमति देदे, चाहे साधारण दशा में उस व्यक्ति को प्रिवी कौंसिल में अपील करने का कोई अधिकार धारा-सभाओं के क़ानून द्वारा न भी मिला हो।

प्रिवीकौंसिल की सत्ता

एक्ट की धारा १११-१२१ के अन्तर्गत अंग्रेजों, अंग्रेज व्यापारियों व कम्पनियों, अंग्रेजी जहाजों और अंग्रेज डाक्टरों, वकीलों, वैरिस्टरों तथा अन्य पेशेवालों के हितों की रक्षा करने के लिए और उनके प्रति भेदभावपूर्ण व्यवहार को रोकने के लिए धारा-सभाओं के क़ानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकारों पर तरह-तरह की पाबन्दियाँ लगाई गई हैं। आदेशपत्रों द्वारा वाइसराय और गवर्नरों को यह भी आदेश किया गया है कि वे धारा-सभा के ऐसे किसी बिल को मंजूर न करें। यदि वाइसराय और गवर्नर भूल से ऐसे किसी क़ानून को मंजूर कर भी दें, और यदि उसकी धारायें गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की उपर्युक्त धाराओं के प्रतिकूल हों, तो अदालतों द्वारा वह क़ानून अमल में नहीं लाया जायगा।

अंग्रेजों से सम्बन्धित क़ानून

एक्ट की धारा २९९ के अनुसार कोई भी धारा-सभा ऐसा कोई कानून नहीं बना सकती, जिसके द्वारा बिना मुआवज़ा दिये ही सरकार

ज़मींदारों की ज़मीन छीन सके या और किसी व्यापारी या कम्पनी के कारोबार पर क़ब्ज़ा कर सके। यदि प्रान्तीय धारा-सभा मुआवज़ा देने के सिद्धान्त को भी

सम्पत्ति-हरण

मानले, तब भी इस प्रकार के किसी क़ानून पर प्रान्तीय धारा-सभा कोई विचार तबतक नहीं कर सकती जबतक कि गवर्नर पूर्व-अनुमति न देदे।

एक्ट की धारा २९८ के अनुसार कोई भी धारा-सभा सम्राट् के भारत-निवासी किसी प्रजाजन को धर्म, जन्म-स्थान, वंश या वर्ण के कारण सरकारी नौकरी करने या ब्रिटिश भारत में सम्पत्ति ख़रीदने, रखने और बेचने से, या ब्रिटिश भारत में और कोई नौकरी, पेशा या व्यापार करने से वंचित नहीं कर सकती।

एक्ट की धारा १०८ उपधारा २ के अनुसार निम्न प्रकार के बिलों और संशोधनों पर प्रान्तीय धारा-सभाओं में तब-तक विचार भी नहीं होसकता जबतक कि वाइसराय की[1] पूर्व अनुमति न मिल जाय :—

वाइसराय की पूर्व-अनुमति

(१) जो ब्रिटिश भारत में लागू पार्लमेण्ट के किसी एक्ट में संशोधन करते हों या उसके विरुद्ध हों;

(२) जो वाइसराय के किसी एक्ट या आर्डिनेंस में संशोधन करते हों या उसके विरुद्ध हों;

(३) जो ऐसे मामलों के बारे में क़ानून बनाते हों जो फेडरेशन स्थापित होने पर 'सुरक्षित विषय' समझे जायँगे—जैसे कि राष्ट्र-रक्षा, वैदेशिक विषय और सरकारी ईसाइयत विभाग वग़ैरा;

१. गवर्नर की पूर्व-अनुमति के बग़ैर किन-किन बिलों और संशोधनों पर विचार नहीं होसकता, इसका उल्लेख पहले गवर्नर के अधिकारों में किया जा चुका है।

(४) जो जाब्ता फौजदारी द्वारा यूरोपियन ब्रिटिश प्रजाजनों को दिये गये अधिकारों और रिआयतों को छीनते हों या उनमें कमी-बेशी करते हों।

गवर्नरों की पूर्व-अनुमति की भांति वाइसराय की पूर्व-अनुमति का नियम भी केवल जाब्ते के लिए है। लेकिन जिन बिलों पर विचार करने के लिए वाइसराय की पूर्व-अनुमति प्रान्तीय धारा-सभा को या उसके किसी सदस्य को गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की धाराओं के अनुसार लेना आवश्क है, उनके बारे में यह जानना ज़रूरी है कि यदि वाइसराय की पूर्व-अनुमति लिये बिना ही प्रान्तीय धारा-सभा ऐसे किसी बिल को पास करदे और गवर्नर उसको मंजूर करके एक्ट बनादे तो वह एक्ट ग़ैर-क़ानूनी ही समझा जायगा। ऐसे बिलों के लिए यह लाज़िमी है कि उनपर विचार करने के लिए पहले वाइसराय से अनुमति ली जाय, और यदि किसी कारण ऐसा न किया गया हो तो उन्हें बाद में गवर्नर द्वारा अपनी मंजूरी या नामंजूरी के बग़ैर वाइसराय के पास भेज दिया जाय। उदाहरणार्थ, एक्ट की धारा १०८ उपधारा २ के अनुसार यूरोपियन ब्रिटिश प्रजाजनों के जाब्ता फौजदारी के अधिकारों से सम्बन्ध रखनेवाला कोई भी बिल प्रान्तीय धारा-सभा में वाइसराय की पूर्व-अनुमति बग़ैर पेश नहीं किया जा सकता; लेकिन यदि इस नियम के बावजूद प्रान्तीय धारा-सभा ऐसे किसी बिल को पास कर भी दे और गवर्नर उसे वाइसराय की मंजूरी के बजाय स्वयं मंजूर करदे, तो उस हालत में वह एक्ट ग़ैर-क़ानूनी ही समझा जायगा। अनुमान है कि ऐसी हालत में गवर्नर की मंजूरी मिल जाने के बाद वाइसराय को भी यह अधिकार न होगा कि वह गवर्नर की मंजूरी के अलावा अपनी मंजूरी और देकर उस ग़लती को सुधार दे, क्योंकि नये एक्ट में किसी भी बिल को मंजूर करने का अधिकार एक

ही अधिकारी को दिया गया है—चाहे वह अधिकारी गवर्नर हो या वाइसराय अथवा सम्राट् ।'

प्रान्तीय धारा-सभा के क़ानून-निर्माण सम्बन्धी अधिकारों पर सबसे बड़ी पाबन्दी यह है कि गवर्नर, वाइसराय या सम्राट् की मंजूरी मिले

**बिलों की मंजूरी और नामंजरी**

बग़ैर कोई भी बिल एक्ट नहीं बन सकता। प्रान्तीय धारा-सभाओं के बिलों के सम्बन्ध में गवर्नरों के क्या अधिकार होंगे, इनका वर्णन पहले किया जा चुका है। आमतौर पर 'सम्मिलित सूची' के विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रान्तीय धारा-सभा के उन बिलों के अलावा जो केन्द्रीय क़ानूनों के विरुद्ध हों, और 'सम्मिलित सूची' व 'प्रान्तीय सूची' दोनों के विषयों से सम्बन्ध रखनेवाले प्रान्तीय धारा-सभा के उन बिलों के अलावा जिनपर विचार करने के लिए गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की विभिन्न धाराओं के अनुसार वाइसराय की पूर्व-अनुमति लेना ज़रूरी थी लेकिन ली नहीं गई, गवर्नर प्रान्तीय धारा-सभाओं के सब बिलों को स्वयं मंजूर करके एक्ट बना सकता है। लेकिन, जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है, गवर्नर किसी भी बिल को ख़ुद मंजूर करने के बजाय वाइसराय की मंजूरी के लिए भेज सकता है।

१. ज़ाब्ता फौजदारी में संशोधन करनेवाले प्रान्तीय धारा-सभा के हरेक बिल को वाइसराय की मंजूरी के लिए भेजना इस वजह से भी जरूरी है कि ज़ाब्ता फौजदारी केन्द्रीय धारा-सभा का क़ानून है और नये एक्ट में उसे 'सम्मिलित सूची' का विषय बनाया गया है। 'सम्मिलित सूची' के विषयों के बारे में केन्द्रीय क़ानूनों के विरुद्ध पास किये गये प्रान्तीय धारा-सभा के एक्ट, जैसा कि पहले भी लिखा जा चुका है, तभी कानूनसम्मत माने जायँगे जब कि गवर्नर के बजाय खास वाइसराय द्वारा ही उनकी मंजूरी दीगई हो।

इस प्रकार जब कोई भी बिल गवर्नर द्वारा वाइसराय की मंजूरी के लिए भेजा जायगा तो एक्ट की धारा ७६ उपधारा १ के अन्तर्गत वाइसराय को भी 'अपनी मर्जी' से यह घोषणा करने का अधिकार होगा कि वह उस बिल को मंजूर करता है या नामंजूर, या वह उसे सम्राट् की मंजूरी के लिए भेजना चाहता है। इसके अलावा वाइसराय उस बिल को 'अपनी मर्जी' से गवर्नर को इस आज्ञा के साथ भी लौटा सकता है कि गवर्नर उस बिल को धारा-सभा के भवनों में इस प्रार्थना के साथ भेज दे कि वह उसपर या उसकी कुछ ख़ास धाराओं पर पुनर्विचार करे, या कि वह उसमें वे संशोधन मंजूर करले जो वाइसराय द्वारा सुझाये गये हों। इस प्रकार जब बिल प्रान्तीय धारा-सभा के भवनों में वापस आजायगा, तो उनका यह फर्ज होगा कि वे उसपर फिर विचार करें। धारा-सभा के भवनों में विचार होलेने के बाद उस बिल का वाइसराय की मंजूरी के लिए फिर भेजा जाना आवश्यक होगा।

वाइसराय के अधिकार

जो बिल वाइसराय द्वारा सम्राट् की मंजूरी के लिए भेजे जायेंगे वे एक साल के अन्दर-अन्दर सम्राट् की मंजूरी मिलकर गजट में प्रकाशित न होंगे तो गवर्मेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट की धारा ७६ उपधारा २ के फलस्वरूप एक्ट न बन सकेंगे। एक साल का समय उस दिन से गिना जायगा जिस दिन कि वह बिल गवर्नर के पास उसकी मंजूरी के लिए भेजा गया हो। इस प्रकार ब्रिटिश सरकार वाइसराय द्वारा भेजे गये प्रान्तीय धारा-सभा के किसी भी बिल को एक साल की महज चुप्पी से मटियामेट कर सकेगी।

सम्राट् के अधिकार

किन्तु धारा ७७ के अन्तर्गत सम्राट् को निश्चित रूप से यह भी अधिकार दिया गया है कि प्रान्तीय धारा-सभा के किसी भी बिल को,

जो गवर्नर या वाइसराय की उपयुक्त मंजूरी मिलने पर एक्ट बन चुका हो, एक साल के अन्दर-अन्दर रद करदें। इस प्रकार एक्ट के रद करने का सम्राट् का निश्चय जब गवर्नर द्वारा गजट में प्रकाशित होजायगा, तो उस दिन से वह एक्ट रद समझा जायगा। इस सिलसिले में यह लिखना अनुपयुक्त न होगा कि ब्रिटिश पार्लमेण्ट के सन् १९३१ के एक क़ानून ( Statute of Westminster ) द्वारा ब्रिटेन के स्वशासित उप-निवेशों में सम्राट् के इस प्रकार के अधिकार का अन्त होचुका है।

अन्त में प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकारों पर सबसे बडी पाबन्दी यह है कि ब्रिटिश पार्लमेण्ट जब चाहे तब एक्ट पास करके प्रान्तीय धारा-

ब्रिटिश पार्लमेण्ट की सत्ता

सभाओं के इन मर्यादित अधिकारों में भी कमी करदे या इनके अस्तित्व को ही सदा के लिए मिटा दे। एक्ट की धारा ११० (अ) के अनुसार ब्रिटिश पार्लमेण्ट के इस मूल अधिकार में गवर्मेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट के पास होजाने के कारण कोई फ़र्क़ नहीं आसकता।

### ज़ाब्ते की पाबन्दियाँ

उपर्युक्त पाबन्दियों के अलावा कई पाबन्दियाँ ज़ाब्ते की भी हैं।

धारा ७४ के अनुसार कोई भी बिल तबतक पास हुआ नहीं समझा जायगा जबतक कि प्रान्तीय धारा-सभाओं के दोनों भवन उस बिल को

संयुक्त अधिवेशन

एक ही रूप में पास न करदें। यदि दोनों भवन किसी बिल को एक ही रूप में पास न करें तो बिल पास हुआ नहीं समझा जायगा। ऐसे मतभेद को दूर करने के लिए एक्ट में संयुक्त अधिवेशन की तजवीज रक्खी गई है। लेकिन संयुक्त अधिवेशन उसी हालत में बुलाया जासकता है जब कि लेजिस्लेटिव असेम्बली के पास किये हुए बिल को लेजिस्लेटिव कौंसिल पूरे एक साल तक पास न

अन्तर है कि असेम्बली के भंग होने पर असेम्बली का नया चुनाव होता है, लेकिन असेम्बली का अधिवेशन भंग होने का केवल यह परिणाम होता है कि जबतक गवर्नर उसका अधिवेशन फिर से न बुलाये तबतक वह किसी भी मामले पर विचार नहीं कर सकती। इसी प्रकार असेम्बली का अधिवेशन स्थगित होने और अधिवेशन भंग होने में यह अन्तर है कि अधिवेशन स्थगित होने पर असेम्बली का अध्यक्ष उसे फिर बुला सकता है, लेकिन भंग होने पर केवल गवर्नर ही उसे फिर बुला सकता है; अलावा इसके, अध्यक्ष अधिवेशन को जब चाहे तब स्थगित कर सकता है, लेकिन उसे भंग गवर्नर ही कर सकता है।

आय-व्यय सम्बन्धी बिल और संशोधन

धारा ८२ के अनुसार प्रान्तीय धारा-सभा के किसी भी भवन में आय-व्यय सम्बन्धी कोई भी बिल या संशोधन तबतक नहीं पेश किया जा सकेगा जबतक कि गवर्नर की सिफ़ारिश न हो। यहाँ गवर्नर से आमतौर पर अभिप्राय है मिनिस्टरों से। अर्थात् आय-व्यय सम्बन्धी कोई भी बिल आमतौर पर बिना मिनिस्टरों की मर्जी के पेश नहीं हो सकता। यह नियम ब्रिटिश कामन्स-सभा के उन नियमों की एक नकल है जिनके अनुसार वहाँ किसी भी गैर-सरकारी मेम्बर को आय-व्यय सम्बन्धी कोई बिल कामन्स-सभा में पेश नहीं करने दिया जाता। इसकी वजह यह है कि इन मामलों के लिए मन्त्रि-मण्डल ही पुरी तरह से जिम्मेदार समझा जाता है। लेकिन ब्रिटेन और भारत की स्थिति में भारी अन्तर है। जहाँ ब्रिटेन में यह कामन्स-सभा का एक नियम-मात्र है, जिसे वह महज एक प्रस्ताव द्वारा अपनी नियमावली में से जब चाहे तब निकाल सकती है, भारत में इस नियम को क़ानून की शक्ल देदी गई है, जिसे प्रान्तीय धारा-सभा प्रस्ताव द्वारा तो क्या एक्ट पास करके भी नहीं पलट सकती।

धारा ८२ के अन्तर्गत निम्न प्रकार के बिलों और संशोधनों को आय-व्यय सम्बन्धी बिलों और संशोधनों की श्रेणी में शामिल किया गया है:—

(१) जिनके द्वारा कोई नया टैक्स लगाया जाय या पुराने टैक्स की दर में वृद्धि की जाय;

(२) जो इस बाबत हों कि प्रान्त किन तरीकों से और किन हालतों में कर्ज़ा ले या किसी क़र्ज़ की गारण्टी दे;

(३) जिनके द्वारा किसी खर्चे की रक़म के लिए यह घोषणा की जाय कि भविष्य में उसके लिए असेम्बली की सालाना मंज़ूरी की ज़रूरत नहीं रहेगी; और

(४) जिनके पास होजाने पर प्रान्तीय सरकार को लाज़िमी तौरपर खर्चा बढ़ाना पड़े ।

*शासन-विभाग पर नियन्त्रण*

कानून-निर्माण के अलावा धारा-सभा का दूसरा महत्वपूर्ण अधिकार शासन-विभाग पर नियन्त्रण रखना है । शासन-विभाग को नियन्त्रण में रखने के कई ज़रिये हैं । जैसे—

नियन्त्रण के ज़रिये

(१) प्रस्ताव पास करके शासन-विभाग अर्थात प्रान्तीय सरकार को कोई खास काम करने के लिए निर्देश देना । ये प्रस्ताव महज़ सिफ़ारिश की शक्ल में होते हैं, और शासन-विभाग इनको मानने के लिए क़ानूनन बाध्य नहीं है ।

(२) प्रश्नों द्वारा शासन-विभाग का ध्यान जनता की शिकायतों की ओर आकृष्ट करना । यह सदस्यों का बहुत ही महत्वपूर्ण अधिकार है और इसके ज़रिये कई महत्वपूर्ण बातों पर प्रकाश डाला जासकता है ।

(३) कार्रवाई स्थगित करने के यानी 'काम रोको' प्रस्ताव । आजकल इसका रिवाज बहुत बढ़ता जारहा है । धारा-सभा के अधि-

वेशन के समय कोई विशेष घटना होजाने पर इस प्रकार के प्रस्ताव पेश किये जाते हैं। यदि मन्त्रि-मण्डल के विरोध के बावजूद इस प्रकार का प्रस्ताव पास होजाय, तो इसका अभिप्राय यह हुआ कि धारा-सभा का मन्त्रि-मण्डल पर विश्वास नहीं हैं। ऐसी हालत में मन्त्रि-मण्डल को अक्सर इस्तीफ़ा देना लाज़िमी होजाता है।

(४) सीधे अविश्वास प्रस्ताव द्वारा। यदि मन्त्रि-मण्डल में अविश्वास का प्रस्ताव पास होजाय, तो मन्त्रि-मण्डल को लाज़िमी तौरपर इस्तीफ़ा देना पड़ता है।

(५) ख़र्चे की मदों में कमी करके या ख़र्चे के लिए मंजूरी देने से इंकार करके। यह वास्तव में धारा-सभा का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है, जिसपर आगे 'प्रान्तीय राजस्व' वाले अध्याय में विस्तार से विचार किया जायगा।

शासन-विभाग को नियन्त्रण में रखने के जो ज़रिये ऊपर बताये गये हैं, उनके बारे में नियमोपनियम ( Standing Orders ) बनाने का अधिकार धारा ८४ के अन्तर्गत प्रत्येक भवन को दिया गया है। जिन प्रान्तों में लेजिस्लेटिव कौंसिलें हैं, उन प्रान्तों में दोनों भवनों के संयुक्त अधिवेशन के लिए और दोनों भवनों के पारस्परिक व्यवहार के लिए नियमोपनियम बनाने का अधिकार गवर्नर (अर्थात् मिनिस्टरों) को है, लेकिन पहले दोनों भवनों के अध्यक्षों से सलाह-मशवरा करना लाज़िमी है।

नियम-निर्माण

इन नियमोपनियमों के अलावा गवर्नर दोनों भवनों और उनके संयुक्त अधिवेशन के लिए 'अपनी मर्ज़ी' से भी नियम बना सकेगा। इन नियमों के फलस्वरूप प्रान्तीय धारा-सभाओं के भवनों में या उनके संयुक्त अधिवेशनों में गवर्नर के उन अधिकारों के बारे में, जिनके प्रयोग में उनको अपनी मर्ज़ी या

गवर्नरों का अंकुश

विवेक काम में लाने के लिए कहा गया है, कोई भी बहस तबतक नहीं होसकेगी जबतक कि गवर्नर अपनी मर्ज़ी से उसको अनुमति न देदे। इन नियमों का दूसरा उद्देश्य यह है कि प्रान्तीय असेम्बली को सरकारी बजट पर लाज़िमी तौर से एक निश्चित काल के अन्दर ही विचार समाप्त कर देना पड़ेगा।

गवर्नर और धारा-सभाओं के नियमोपनियमों द्वारा लगाई गई पाबन्दियों के अलावा, ख़ास एक्ट में भी कई धारायें ऐसी हैं जिनके द्वारा धारा-सभा के सदस्यों के शासन-विभाग पर नियंत्रण रखने के अधिकारों को सीमित कर दिया गया है। जैसे, एक्ट की धारा ८४ (स) के अनुसार किसी भी भवन में देशी रियासतों से सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी मामले पर कोई बहस तबतक नहीं होसकती और कोई प्रश्न तबतक नहीं पूछा जासकता जबतक कि (१) गवर्नर को यह विश्वास न होजाय कि यह मामला प्रान्तीय सरकार के या किसी ऐसे व्यक्ति के हितों से सम्बन्ध रखता है जो ब्रिटिश प्रजाजन है और आमतौर पर उसी प्रान्त में रहनेवाला है और (२) गवर्नर अपनी मर्ज़ी से उस मामले पर बहस करने या प्रश्न पूछने की अनुमति न दे।

सम्राट् (अर्थात ब्रिटिश सरकार) या गवर्नर-जनरल के विदेशों से या नरेशों से जो सम्बन्ध हैं, धारा ८४ द (१) के अनुसार, उनके बारे में कोई भी बहस किसी भी भवन में तबतक नहीं होसकती और कोई भी प्रश्न तबतक नहीं पूछा जासकता जबतक कि गवर्नर अपनी मर्ज़ी से अनुमति न देदे।

धारा ८४ द (२) के अनुसार क़बीली इलाक़ों और बहिर्गत-क्षेत्रों के बारे में कोई भी बहस तबतक नहीं होसकती और कोई भी प्रश्न तबतक नहीं पूछा जासकता जबतक कि गवर्नर 'अपमी मर्ज़ी' से

अनुमति न देदे। लेकिन इनके बारे में धारा-सभा से ख़र्चे की मंजूरी लीजाय तो बहस होसकेगी।

धारा ८४ द (३) के अनुसार किसी भी देशी रियासत के नरेश या उसके परिवार के किसी भी व्यक्ति के निजी आचरण के बारे में कोई भी बहस तबतक नहीं हो सकेगी और कोई भी प्रश्न तबतक नहीं पूछा जा सकेगा जबतक कि गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से अनुमति न दे दे।

धारा ८६ (१) के अनुसार फ़ेडरल कोर्ट या हाईकोर्ट के किसी भी जज के उस आचरण के बारे में कोई भी बहस नहीं होसकेगी जो उसके सार्वजनिक कर्तव्य से सम्बन्ध रखता है।

*धारा-सभाओं के अध्यक्ष और उपाध्यक्ष*

प्रत्येक लेजिस्लेटिव असेम्बली को आम चुनावों के बाद शीघ्र-से-शीघ्र एक स्पीकर (अध्यक्ष) और एक डिप्टी स्पीकर (उपाध्यक्ष) चुनना पड़ता है। स्पीकर और डिप्टी-स्पीकर असेम्बली के सदस्यों में से ही होने चाहिएँ; उनमें से कोई यदि असेम्बली की सदस्यता से इस्तीफ़ा देदे, तो वह स्पीकर या डिप्टी-स्पीकर नहीं रह सकता। लेकिन यदि वह चाहे तो स्पीकर या डिप्टी-स्पीकरी से इस्तीफा देकर भी असेम्बली का सदस्य बना रह सकता है। ये इस्तीफ़े प्रान्त के गवर्नर को ही दिये जाते हैं और स्पीकर या डिप्टी-स्पीकर की जगह ख़ाली होने पर नया चुनाव करना पड़ता है।

असेम्बली या लोअर हाउस

स्पीकर या डिप्टी-स्पीकर के आचरण से यदि असेम्बली को असन्तोष हो, तो वह अविश्वास का प्रस्ताव पास करके उसे हटा सकती है। लेकिन इस प्रकार का प्रस्ताव पेश करने के लिए कम-से-कम १४ दिन पहले सूचना दी जानी चाहिए। अविश्वास के प्रस्ताव को अमल में

लाने के लिए गवर्नर की स्वीकृति की आवश्यकता नहीं है, जैसा कि मॉण्टफ़ोर्ड-युग में होता था। इसी प्रकार स्पीकर का चुनाव होजाने पर गवर्नर की मंजूरी की जरूरत नहीं है।

स्पीकर की जगह ख़ाली होने पर उसका काम डिप्टी-स्पीकर के ज़िम्मे रहता है, और अगर डिप्टी-स्पीकर की जगह भी ख़ाली हो तो गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से असेम्वली के किसी एक सदस्य को तबतक स्पीकर का काम करने के लिए नियुक्त कर सकता है जबतक कि दुबारा चुनाव न होजाय। असेम्वली की बैठकों में स्पीकर की अनुपस्थिति में वह व्यक्ति अध्यक्ष-पद लेनें का अधिकारी होता है जिसके बारे में असेम्वली के नियमोपनियमों में निर्देश किया गया हो। यदि वह व्यक्ति भी अनुपस्थित हो, तो असेम्वली उस बैठक के लिए नया अध्यक्ष चुन सकती है।

स्पीकर को आमतौर से असेम्वली में किसी प्रश्न पर मत देने का अधिकार नहीं है, लेकिन जब दोनों तरफ़ बराबर-बराबर मत हों तो वह अपना मत दे सकता है। स्वर्गीय पटेल ने अपना मत देते समय सदा इस नियम का पालन किया था कि उस पक्ष में ही मत दिया जाय जिसमें मत देनें से उस प्रश्न पर फिर विचार करने का मौक़ा रहे।

असेम्वली भंग होजाने पर सब सदस्यों की सदस्यता ख़त्म हो-जाती है, लेकिन स्पीकर के लिए यह नियम रक्खा गया है कि जबतक नया चुनाव होकर नई असेम्वली की पहली बैठक शुरू न हो तबतक वह बराबर अध्यक्ष-पद का काम करता रहेगा।

असेम्बली के स्पीकर और डिप्टी-स्पीकर के वेतन और भत्ते नियत करने का अधिकार प्रान्तीय धारा-सभा को है और इसके लिए एक्ट पास करना ज़रूरी है। लेकिन इसका यह तात्पर्य नहीं कि एक्ट पास होजाने

पर ही वे अपने वेतन-भत्ते लेने के हक़दार होजायँगे। प्रान्त के और खर्चे की भाँति इनके वेतन-भत्तों की मंजूरी भी हर साल असेम्बली से लेना जरूरी होगा।

कौंसिल या अपर हाउस

जिस प्रकार लेजिस्लेटिव असेम्बली को अपना स्पीकर और डिप्टी स्पीकर चुनने का अधिकार है उसी प्रकार लेजिस्लेटिव कौंसिल को अपना प्रेसिडेण्ट और डिप्टी-प्रेसिडेंण्ट चुनने का अधिकार है। और ऊपर स्पीकर तथा डिप्टी-स्पीकर के बारे में जो नियम दिये गये हैं वैसे ही लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रेसिडेण्ट और डिप्टी-प्रेसिडेण्ट के बारे में समझने चाहिएँ। हाँ, दोनों भवनों के संयुक्त अधिवेशन में अध्यक्ष-पद लेने का अधिकार लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रेसिडेण्ट को ही दिया गया है।

अध्यक्ष-पद का महत्व

किसी भी धारा-सभा के अध्यक्ष का पद बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। यद्यपि उसके शासन-सम्बन्धी अधिकार कुछ ज्यादा नहीं होते, मगर चूंकि वह धारा-सभा की सारी कार्रवाई का संचालन करता है और जबतक उसे उस पद से हटा न दिया जाय तबतक उसके निर्णय मान्य होते हैं इसलिए उसका वास्तविक प्रभाव और महत्व कुछ कम नहीं होता।

टण्डनजी की रहनुमाई

अध्यक्ष आमतौर पर दलबन्दी से अलग और निष्पक्ष समझा जाता है। लेकिन संयुक्तप्रान्त की असेम्बली के स्पीकर पं० पुरुषोत्तमदास टण्डन ने इस नियम को लकीर के फ़क़ीर की तरह मानने से इंकार करके एक नये सिद्धान्त को जन्म दिया है। आपने कहा है कि संयुक्तप्रान्तीय असेम्बली का स्पीकर चुना जाने पर यद्यपि मैं पूर्णतया निष्पक्ष रहूँगा, लेकिन इसका यह तात्पर्य्य नहीं कि मैं काँग्रेस से या काँग्रेस-पार्टी से अपना सम्बन्ध

तोड़ लूं। कांग्रेस मेरे लिए पहली चीज है और मैं उसकी सदा सेवा करता रहूंगा; और यदि ऐसा करने के कारण मैं अपने स्पीकर-पद के काम को निष्पक्षरूप से न निबाह सकूंगा, तो खुशी से स्पीकर-पद से इस्तीफा देदूंगा।

टण्डनजी ने इस सिलसिले में अन्य प्रान्तों के स्पीकरों के सामने एक आदर्श और रक्खा है। वह यह कि जब कभी किसी नये क़ायदे को अपनाना होगा, तो आँख मूंदकर कामन्स-सभा के क़ायदों का अनुसरण नहीं करेंगे बल्कि अपने देश-कालानुसार क़ायदों को पहला स्थान देंगे।

*धारा-सभाओं की भाषा*

एक्ट की धारा ८५ के अनुसार प्रान्तीय धारा-सभाओं की सारी कार्रवाई अंग्रेजी भाषा में होनी चाहिए, लेकिन धारा-सभा के प्रत्येक भवन को यह अधिकार दिया गया है कि वह अपने नियमोपनियमों के जरिये उन सदस्यों को अन्य भाषाओं के प्रयोग का अधिकार देदे जो या तो अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ हों या जो उसे अच्छी तरह न जानते हों।

एक्ट की इस धारा की व्याख्या पर प्रान्तीय धारा-सभाओं के भवनों में काफ़ी वादविवाद रहा है और भिन्न-भिन्न प्रान्तों में काफी मतभेद भी है। संयुक्तप्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली के स्पीकर पं० पुरुषोत्तमदास टण्डन ने इस धारा की व्याख्या करते हुए प्रान्त की असेम्बली में यह रूलिंग दिया था कि इस धारा के अन्तर्गत वे ऐसे किसी सदस्य को, जो अंग्रेजी जानता भी हो, हिन्दुस्तानी में या और किसी भाषा में, जिसमें वह अच्छी तरह बोल सकता हो, बोलने की इजाजत देसकते हैं। टण्डनजी के इस रूलिंग की लोगों ने तरह-तरह की आलोचना की है। संयुक्तप्रान्त के अंग्रेजी भाषा के एक दैनिक पत्र ने तो अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों में यहां-

*टण्डनजी का रूलिंग*

तक लिख डालने की हिम्मत की थी कि टण्डनजी का यह रूलिंग एक्ट के विरुद्ध है और इसलिए क़ानून का भंग करता है। लेकिन इस सम्बन्ध में यह जानना लाभदायक होगा कि भिन्न-भिन्न प्रान्तों के हाईकोर्ट क़ानून की व्याख्या करने के अपने अधिकार के प्रयोग में परस्पर-विरोधी फ़ैसले देदेते हैं, लेकिन जबतक प्रिवी कौंसिल उन फ़ैसलों को न बदल दे या धारा-सभा नया एक्ट पास करके क़ानून में तब्दीली न करदे तबतक प्रान्तों में उस प्रान्त के हाईकोर्ट के फ़ैसले ही मान्य समझे जाते हैं, चाहे वे एक-दूसरे के ख़िलाफ़ ही क्यों न हों। इसी प्रकार यदि भिन्न-भिन्न प्रान्तों की असेम्बलियों और कौंसिलों के अध्यक्ष अपने भवनों के नियमोपनियमों की व्याख्या करने के अधिकार के प्रयोग में परस्पर-विरोधी फ़ैसले भी दें, तो भी तबतक वे फ़ैसले मान्य होंगे जबतक कि या तो असेम्बली या कौंसिल ही उस निर्णय को न बदल दे या पार्लमेण्ट ही इस सम्बन्ध में और अधिक स्पष्ट क़ानून न पास करदे। संयुक्तप्रान्त की असेम्बली टण्डनजी के उपर्युक्त रूलिंग को प्रस्ताव पास करके मंजूर कर चुकी है; अतः किसी भी व्यक्ति का यह कहना कि टण्डनजी का यह रूलिंग क़ानून-विरुद्ध है, किसी भी प्रकार क़ानून-संगत नहीं कहा जासकता।

*धारा-सभायें और अदालतें*

एक्ट की धारा ८७ उपधारा १ के अनुसार किसी भी प्रान्तीय धारा-सभा की कार्रवाई को इस बिना पर क़ानून-विरुद्ध नहीं ठहराया जासकता कि उसने ज़ाब्ते के अपने नियमोपनियमों का ठीक तरह से पालन नहीं किया है। वास्तव में इस उपधारा के फलस्वरूप अदालतें धारा-सभाओं की कार्रवाई से सम्बन्ध रखनेवाले किसी मामले की तहक़ीकात भी नहीं कर सकतीं।

इसी धारा की उपधारा २ के मातहत प्रान्तीय धारा-सभा के वे अफ़सर, अध्यक्ष तथा अन्य सदस्य, जिन्हें एक्ट के अन्तर्गत धारा-सभा की कारंवाई का संचालन करने के लिए और धारा-सभा में व्यवस्था क़ायम रखने के लिए अधिकार दिये गये हैं, अपने अधिकारों के प्रयोग में अदालतों के नियन्त्रण से मुक्त रहेंगे। अर्थात् जबतक ये व्यक्ति अपने अधिकार-क्षेत्र में रहते हुए अपने अधिकारों का प्रयोग करेंगे तब-तक अदालतें इनके काम में दख़ल नहीं देसकतीं, चाहे अदालतों की सम्मति में इन अधिकारियों का कोई काम क़ानून या नियम के विरुद्ध ही क्यों न हो। अलबत्ता, यदि ये अधिकारी अपने अधिकार-क्षेत्र से ही बाहर चले जायँ, तो अदालतें दख़ल दे सकेंगी; और सम्भवतः अदालतों को यह भी निर्णय करने का अधिकार होगा कि इन अधिकारियों का अधिकार-क्षेत्र कहाँतक है।

प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकारों के इस विवरण से यह स्पष्ट है कि उनका अधिकार-क्षेत्र इतना मर्यादित है और उसपर इतने प्रति-बन्ध लगे हुए हैं कि उसके द्वारा नौकरशाही शासन पर कितना अंकुश लग सकेगा; यह कहना मुश्किल ही है।

: ८ :

# प्रान्तीय राजस्व

*संघ-शासन में राजस्व की समस्या*

फ़ेडरेशन या संघ-शासन की किसी भी योजना में केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के बीच सरकारी आय का विभाजन एक बहुत ही महत्वपूर्ण और मुश्किल सवाल है; क्योंकि अपने अधिकारों के प्रयोग में एक-दूसरे से स्वतन्त्र दो भिन्न सत्तायें—अर्थात् केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारें—एक जन-समूह से ही अपनी आमदनी प्राप्त करती हैं और दोनों सत्ताओं के आमदनी प्राप्त करने के अधिकार-क्षेत्रों को बिलकुल अलग-अलग बाँट देना सम्भव नहीं है। इसके अलावा, दोनों सत्ताओं के अधिकार-क्षेत्रों का विभाजन सम्भव भी हो तो, अक्सर यह दिक्कत पेश आसकती है कि दोनों फ़रीक़ों की आय उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए काफ़ी न हो; क्योंकि दोनों की आवश्यकतायें एक-दूसरे के मुक़ाबले में घटती-बढ़ती रहती हैं और सदा एकसी नहीं रहतीं। अतः क्षेत्रों का विभाजन इस प्रकार करना कि दोनों की आवश्यकताओं के घटने-बढ़ने के साथ-साथ उनकी आय में भी घटा-बढ़ी होसके, वस्तुतः बहुत मुश्किल काम है।

*मॉण्टफोर्ड-विधान में राजस्व की योजना*

भारत में प्रान्तीय राजस्व की समस्या कोई नई नहीं है। यद्यपि क़ानूनी दृष्टि से मॉण्टफ़ोर्ड-विधान में केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के पारस्परिक सम्बन्धों का आधार संघीय (फ़ेडरल) नहीं था, किन्तु

केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के बीच सरकारी आय का जो बँटवारा किया गया था उसका आधार व्यवहार में संघीय ही था। इसके अनुसार मालगुज़ारी, आवपाशी, स्टाम्प ड्यूटी, रजिस्ट्रेशन, आवकारी व जंगलात जैसे कुछ टैक्सों की पूरी आय प्रान्तीय सरकारों के सुपुर्द करदी गई थी और उन्हें यह अधिकार दिया गया था कि उनके जरिये वे अपनी आय में जितनी वृद्धि कर सकें करलें। इसी प्रकार आयात-निर्यात-कर, इनकमटैक्स, रेल, नमक, अफीम और डाक व तार जैसे कुछ टैक्सों की पूरी आय केन्द्रीय सरकार के सुपुर्द करदी गई थी। इसी सिद्धान्त को दोनों सरकारों के खर्चों के बारे में भी लागू करके कुछ महकमों का सारा खर्चा प्रान्तीय सरकारों के और कुछ का केन्द्रीय सरकार के जिम्मे कर दिया गया था। लेकिन इससे प्रान्तों को न तो कुछ सन्तोष हुआ और न प्रान्तों में मार्के का कोई काम ही किया जा सका।

*नये एक्ट की योजना*

नये एक्ट में इन सब समस्याओं को सुलझाने के लिए करों का विभाजन केन्द्रीय, प्रान्तीय और सम्मिलित विषयों के रूप में किया गया है। इन तीनों विषयों की अलग-अलग जो सूचियाँ दीगई हैं उनके अनुसार केन्द्रीय कर निम्न प्रकार हैं:—

केन्द्रीय व प्रान्तीय कर

१. आयात-निर्यात कर।

२. तम्बाकू पर और भारत में बननें व पैदा होनेवाले अन्य माल पर उत्पत्ति-कर अलावा (अ) शराब व अन्य मादक पेय, (ब) अफीम, भंग व दवाई की अन्य नशीली चीजों, व मादक द्रव्यों तथा (स) इन चीजों से बननेवाली दवाइयों और श्रृंगार के सामान पर उत्पत्ति-कर के।

३. कम्पनी–कारपोरेशनों पर टैक्स।

४. नमक-कर।

५. खेती की आमदनी के अलावा और सब आमदनियों पर कर।

६. खेती की ज़मीन के अलावा व्यक्तियों व कम्पनियों की कुल मिल्कियत पर टैक्स और कम्पनियों की पूँजी पर टैक्स।

७. खेती की ज़मीन के अलावा और सब सम्पत्ति पर उत्तराधिकार-कर।

८. हुण्डी, चैक, प्रामिसरी नोट, बिल्स ऑफ़ एक्सचेञ्ज, बिल्स ऑफ लेडिंग, लेटर्स ऑफ क्रेडिट, बीमे की पालिसी और रसीदों पर लगाये जाने वाले स्टाम्पों की आय।

९. रेल और हवाई जहाज़ों से चलनेवाले माल व मुसाफिरों पर टर्मिनल टैक्स; रेलों के भाड़े पर टैक्स।

१०. अदालतों की आमदनी के अलावा केन्द्रीय सूची में शामिल किये गये और सब विषयों की आमदनी।

प्रान्तीय कर निम्न प्रकार हैं:—

१. मालगुज़ारी।

२. प्रान्त में बनने या पैदा होनेवाली शराब, अन्य मादक पेय, अफीम, भंग वग़ैरा और इन चीज़ों से बननेवाली दवाइयों व श्रृंगार-पदार्थों पर लगाये जानेवाले उत्पत्ति-कर, और इन्हीं दरों पर या इनसे भी कम दरों पर भारत के अन्य प्रान्तों में बनने या पैदा होनेवाले माल पर बराबरी की वजह से लगाई जानेवाली चुंगियाँ।

३. खेती की आमदनी पर कर।

४. ज़मीन, इमारतों, चूल्हों व खिड़कियों पर कर।

५. खेती की ज़मीनपर उत्तराधिकार-कर।

६. खानों के हक़दारों पर कर।

७. व्यक्तियों पर ( Capitation ) कर ।

८. पेशों, तिजारतों व नौकरियों पर कर ।

९. जानवरों व नावों पर कर ।

१०. माल की बिक्री और इश्तिहारों पर कर ।

११. खपत के लिए, काम में लेने के लिए, या बिक्री के लिए म्युनिसिपल क्षेत्रों में आनेवाले माल पर चुंगी ।

१२. विलासिता की चीजों—आमोद-प्रमोद, सट्टेबाजी व जुएबाजी पर कर ।

१३. उन दस्तावेजों के अलावा जिनका उल्लेख केन्द्रीय करों की सूची में किया जाचुका है, शेष दस्तावेजों पर लगाये जानेवाले स्टाम्पों की आय ।

१४. देशान्तर्गत जल-मार्गों से जाने-आनेवाले मुसाफिरों और माल पर टैक्स ।

१५. टौल-टैक्स ( Tolls ); जैसे तेह-बाजारी वगैरा ।

१६. अदालतों की आमदनी के अलावा, प्रान्तीय सूची व सम्मिलित सूची में शामिल किये गये किसी भी विषय की आमदनी ।

केन्द्रीय करों द्वारा प्रान्तों की सहायता

इस प्रकार आय का विभाजन करने पर पता चला कि कई प्रान्तीय सरकारें अपनी जिम्मेदारियों का साधारण तौर से भी पालन नहीं कर सकेंगी, और कई प्रान्तीय सरकारें यद्यपि साधारणतौर पर अपनी जिम्मेदारियों का पालन कर लेंगी मगर वे अपने प्रान्त को पूरी तरह उन्नत न कर पायेंगी । इस कठिनाई को दूर करने के लिए एक्ट में कई प्रकार के प्रबन्ध किये गये ।

एक्ट की धारा १३७ द्वारा यह प्रबन्ध किया गया है कि यद्यपि (१)

खेती की ज़मीन के अलावा और सब सम्पत्ति पर उत्तराधिकार-कर, (२) उन दस्तावेज़ों की स्टाम्प-ड्यूटी जिनका उल्लेख केन्द्रीय करों की सूची में किया गया है, (३) रेल और हवाई जहाज़ों से जाने-आनेवाले माल व मुसाफिरों पर टर्मिनल टैक्स और (४) रेलों के किराये पर टैक्स की दर नियत करना और उनकी वसूली केन्द्रीय विषय ही समझे जायँगे, लेकिन इन टैक्सों की आय से जो बचत होगी उसमे से चीफ कमिश्नरों वाले प्रान्तों के हिस्से को निकालकर बाक़ी गवर्नरों वाले प्रान्तों में बाँट दी जायगी। किस प्रान्त को कितना हिस्सा मिलेगा, इसका निर्णय केन्द्रीय धारा-सभा एक्ट द्वारा करेगी। साथ ही केन्द्रीय धारा-सभा को यह भी अधिकार होगा कि वह केन्द्रीय सरकार की मदद के लिए इन टैक्सों की दर में वृद्धि करदे। इस प्रकार इन दरों में वृद्धि करने से आय में जो वृद्धि होगी, उसे केन्द्रीय सरकार अपने लिए रख सकेगी।

इसी प्रकार एक्ट की धारा १३८ उपधारा १ द्वारा इनकमटैक्स की आय को प्रान्तों में विभाजित किया गया है। इस धारा के अनुसार खेती की आमदनी के अलावा और सब आमदनियों पर जो टैक्स लगता है, उसकी दरें नियत करना और उसकी वसूली करने का काम रहेगा तो केन्द्र के ही जिम्मे, लेकिन इस टैक्स से जो आय होगी उसमें से चीफ कमिश्नरों के प्रान्तों का हिस्सा और वह आय निकालकर जो केन्द्रीय सरकार के अफ़सरों व कर्मचारियों के वेतन-भत्तों और पेंशनों पर टैक्स लगाने से होगी, जो आय बचेगी उसका एक 'नियत हिस्सा' प्रति वर्ष प्रान्तों को बांट दिया जाया करेगा। साथ ही केन्द्रीय धारा-सभा को यह भी अधिकार होगा कि वह केन्द्रीय सरकार की सहायता के लिए टैक्स की दरों में वृद्धि करदे। इस प्रकार दरों में वृद्धि करने से आय में जो वृद्धि होगी उसे केन्द्रीय सरकार अपने लिए रख सकेगी।

उपर्युक्त उपधारा के अनुसार 'प्रान्तीय स्वराज्य' के प्रारम्भ से ही प्रान्तों को इनकमटैक्स की आय का कुछ हिस्सा मिल जाना चाहिए था, लेक़िन उपधारा २ के अनुसार केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वह चाहे तो एक 'नियत अवधि' तक प्रान्तों के लिए नियत किये गये सारे हिस्से को या उसमें से 'नियत किये गये' कुछ हिस्से को अपने लिए ही रखले । इस नियत अवधि के ख़त्म होजाने के वाद केन्द्रीय सरकार को वह हिस्सा लाज़िमी तौरपर धीरे-धीरे हर साल एक 'दूसरी नियत अवधि' के अन्दर प्रान्तों को देदेना होगा ।

सर ओटो नीमियर की सिफ़ारिशों के फलस्वरूप जो आर्डर-इन-कौंसिल सम्राट् ने इस धारा के मातहत जारी किया है उसमें इन हिस्सों को और अवधियों को नियत किया गया है।[1] इसके अनुसार प्रान्तों को इनकमटैक्स की उस आय का आधा हिस्सा लेने का अधिकार होगा जो चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों का हिस्सा और केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों से होनेवाली आय को निकाल देने के बाद बचेगी। लेकिन प्रान्तीय स्वराज्य के प्रारम्भ होने के वाद ५ साल तक केन्द्रीय सरकार को प्रान्तों के हिस्से का उतना हिस्सा अपने पास रखने का अधिकार होगा

१. इनकमटैक्स से मिलनेवाली आय आर्डर-इन-कौंसिल के अनुसार विभिन्न प्रान्तों में इस अनुपात से बाँटी जायगी :—

| प्रान्त | प्रतिशत | प्रान्त | प्रतिशत |
|---|---|---|---|
| मद्रास | १५ | मध्यप्रान्त-वरार | ५ |
| वम्वई | २० | आसाम | २ |
| वंगाल | २० | पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त | १ |
| संयुक्तप्रान्त | १५ | उड़ीसा | २ |
| पंजाव | ८ | सिन्ध | २ |
| विहार | १० | | |

कि जिसमें नीचे दी हुई दो रक़मों को जोड़ने से कुल रक़म १३ करोड़ होजाय :—

(१) केन्द्रीय सरकार को स्वतः मिलनेवाला आधा हिस्सा; और

(२) वह रकम जो रेलों की आय से केन्द्रीय सरकार को आमतौर पर सालाना मिला करती है।

अगर इस प्रकार १३ करोड़ का योग मिलाने के लिए केन्द्रीय सरकार प्रान्तों के पूरे आधे हिस्से को भी अपने पास रखना चाहे तो रख सकेगी। ५ साल के बाद फिर दूसरे ५ साल में केन्द्रीय सरकार प्रान्तों के हिस्से को धीरे-धीरे देना शुरू करेगी। वह इस प्रकार कि, फ़र्ज़ कीजिए, पहले ५ साल के आख़िरी साल में केन्द्रीय सरकार ने प्रान्तों के आधे हिस्से में से ६ करोड़ रुपया अपने लिए रख लिया, तो दूसरे ५ साल के पहले साल में वह केवल ५ करोड़, दूसरे साल में ४ करोड़, तीसरे साल में ३ करोड़, चौथे साल में २ करोड़ और पाँचवें साल में केवल १ करोड़ रुपया अपने लिए रख सकेगी। अर्थात् दूसरे पाँच सालों में केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों के हिस्से में से हरसाल उतना ही हिस्सा रक्खेगी जो पिछले साल रक्खे गये हिस्से से ⅙ कम हो। इस प्रकार इन दूसरे पाँच सालों के बाद केन्द्रीय सरकार को प्रान्तीय सरकारों वाले हिस्से में से कुछ भी रखने का अधिकार न होगा, लेकिन उपधारा २ में गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया गया है कि वह दूसरे पाँच साल में किसी साल यह हुक्म जारी करदे कि उस साल केन्द्रीय सरकार प्रान्तीय सरकारों के हिस्से में से उतना ही हिस्सा पास रख सकेगी जितना कि पिछले साल उसने रक्खा था। इस प्रकार गवर्नर-जनरल इस पाँच साल की अवधि को जितना चाहे बढ़ा सकेगा।

केन्द्रीय सूची के अनुसार यद्यपि नमक-कर, केन्द्रीय उत्पत्ति-कर और

निर्यात-करों की दरों का नियत करना व उनकी वसूली का अधिकार केन्द्रीय सरकार को ही होगा; लेकिन धारा १४० उपधारा १ के अनुसार केन्द्रीय धारा-सभा को यह अधिकार होगा कि वह चाहे तो इन करों की आय को या उसके कुछ हिस्से को एक्ट पास करके प्रान्तों में विभाजित करदे। लेकिन जहाँ इन सब करों की आय का प्रान्तों में विभाजन केन्द्रीय धारा-सभा की मर्जी के ऊपर है, इसी धारा की उपधारा २ के मातहत सर ओटो नीमियर की सिफ़ारिश से जारी किये गये आर्डर-इन-कौंसिल के अनुसार जूट के निर्यात-कर का ६२½ प्रतिशत उन प्रान्तों में बाँट देना लाज़िमी होगा जिनमें कि जूट पैदा होता है। इसका मुख्य उद्देश्य बंगाल, आसाम व बिहार जैसे उन प्रान्तों की सहायता करना है जिनमें जूट बहुतायत से पैदा होता है।

**खास-खास प्रान्तों की सहायता**

धारा १४२ के अन्तर्गत सम्राट् को आर्डर-इन-कौंसिल द्वारा यह निश्चय करने का अधिकार है कि केन्द्रीय सरकार की आय से किन खास-खास प्रान्तों को सहायता दी जानी चाहिए। सर ओटो नीमियर की सिफ़ारिश पर जो आर्डर-इन-कौंसिल इस बारे में पास हुआ है उसके अनुसार निम्न प्रान्तों को इस प्रकार सहायता दी जाया करेगी :—

१. संयुक्तप्रान्त को प्रान्तीय स्वराज्य के पहले पाँच सालों में—हर साल २५ लाख रुपया।

२. आसाम को हर साल ३० लाख रुपया।

३. पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त को हर साल १ करोड़ रुपया।

४. उड़ीसा को प्रान्तीय स्वराज्य के पहले साल में ४७ लाख रुपया; फिर अगले चार सालों में हर साल ४३ लाख रुपया; और फिर हर साल ४० लाख रुपया।

५. सिन्ध को प्रान्तीय स्वराज्य के पहले साल में १ करोड़ १० लाख रुपया; अगले ९ सालों में हर साल १ करोड़ ५ लाख रुपया; फिर अगले २० सालों में हर साल ८० लाख रुपया; उससे आगे के पाँच सालों में हर साल ६५ लाख रुपया; फिर अगले पाँच सालों में हर साल ६० लाख रुपया; और उससे अगले ५ सालों में हर साल ५५ लाख रुपया।

गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की उपर्युक्त योजना के फलस्वरूप प्रान्तों को अपने राष्ट्र-निर्माणकारी कार्यों के लिए कहाँतक रुपया प्राप्त हो-सकेगा, यह ठीक-ठीक कहना अभी सम्भव नहीं है। फिर भी यह जानना ज़रूरी है कि धारा १४२ के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रान्तों को जो सहायता दी गई है उससे केवल उस घाटे की ही पूर्ति होसकेगी जो मौजूदा मामूली ख़र्च के कारण उन प्रान्तों के बजट में सालाना होता है; इस सहायता के फलस्वरूप ये प्रान्त किसी विशेष कार्य के लिए रुपया निकाल सकेंगे ऐसा सम्भव नहीं दिखाई देता। दूसरे जिन प्रान्तों को जूट के निर्यात-कर का कुछ हिस्सा मिलेगा उनकी आर्थिक स्थिति में उनसे भी कोई विशेष अन्तर नहीं पडेगा, क्योंकि जूट-कर की सालाना आय मय ख़र्चे के लगभग ३½ करोड़ से ज्यादा नहीं हैं।[1] तीसरे इनकमटैक्स की आय का जो हिस्सा प्रान्तों को मिलेगा वह १० साल बाद भी लगभग ६ करोड़ से ज्यादा नहीं होगा, और फिर उसे ११ प्रान्तों में बाँटा जायगा। इन १० सालों से पहले प्रान्तों को इनकमटैक्स का कोई ख़ासा हिस्सा मिल सकेगा, इसकी ज्यादा उम्मीद नहीं; क्योंकि रेलों की आर्थिक स्थिति में कोई आशाजनक उन्नति अभीतक नहीं हुई है।

१. अनुमान लगाया गया है कि जूट निर्यात-कर से सालाना बंगाल को लगभग २ करोड़, बिहार को १२ लाख, आसाम को ११ लाख और उड़ीसा को १ लाख रुपये की सहायता मिल जाया करेगी।

अक्सर यह भी कहा जाता है कि यदि प्रान्तों को केन्द्रीय सरकार से ज्यादा मदद न भी मिले तो क्या है, प्रान्तीय सरकारें अपनी आय नये-नये टैक्सों के जरिये काफ़ी बढ़ा सकती हैं और उन्हें इसके लिए एक्ट में काफी अधिकार दिये गये हैं। इसके जवाब में यह जानना जरूरी है कि हिन्दुस्तान वैसे ही ग़रीब देश है; उसकी आय का बहुत बड़ा हिस्सा प्रतिवर्ष विदेशों को और खासकर इंग्लैण्ड को विदेशी माल के बदले में और होम-चार्जेज (Home charges) के रूप में चला जाता है; इसलिए यहाँ टैक्सों के बढ़ाने की ज्यादा गुंजाइश नहीं है। जहाँतक खेती पर निर्भर रहनेवाले लोगों का सवाल है, कई प्रख्यात अर्थ-शास्त्रियों का तो मत है कि उनपर आजकल ही गुंजाइश से ज्यादा टैक्स लगा हुआ है। इसलिए मालगुजारी से तो प्रान्तों की आय में कुछ वृद्धि होने की सम्भावना ही नहीं है; उलटे और भी कमी होजाय तो कुछ ताज्जुब नहीं। रही उत्तराधिकार-कर व खेती की आमदनी के टैक्स की बात, सो इनसे जरूर सरकारी आय में वृद्धि होसकती है, लेकिन वर्तमान आर्थिक मन्दी को देखकर इनसे भी ज्यादा आय होने की उम्मीद नहीं है। आबकारी की आमदनी मद्य-निषेध की नीति के कारण बढ़ने के बजाय कुछ सालों में बिलकुल बन्द ही होजाय तो आश्चर्य नहीं। जंगलात, स्टाम्प, कोर्ट-फीस व रजिस्ट्री द्वारा भी प्रान्तों की आय में कोई विशेष वृद्धि होने की सम्भावना नहीं है। शेष टैक्स लगभग सब ऐसे हैं जिनकी आय म्यूनिसिपैलिटी, ज़िला बोर्ड आदि संस्थाओं को सौंप दीजाती है।

### क़र्ज़ा लेने के अधिकार

मॉण्टफोर्ड-सुधारों से पहले किसी भी प्रान्त की सरकार को स्वतन्त्र रूप से कर्ज़ा लेने का अधिकार नहीं था। उन्हें जब कभी कर्ज़े की जरूरत

होती थी तो केन्द्रीय सरकार ही भारत की साख पर कर्ज़ा लेती थी, और फिर वह खुद प्रान्तीय सरकारों को कर्ज़ा देती थी। मॉण्टफोर्ड-सुधारों के फलस्वरूप प्रान्तीय सरकारों को पहली वार स्वतन्त्र रूप से कर्ज़ा लेने का अधिकार दिया गया। लेकिन यह ध्यान रखना चाहिए कि प्रान्तीय सरकारों के इस अधिकार पर गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट और अधिकार-विभाजक नियमों ( Devolution Rules ) के द्वारा इतने प्रतिवन्ध लगा दिये गये थे कि सम्पन्न प्रान्तों की सरकारों ने भी स्वतन्त्र रूप से कर्ज़ा लेने के वजाय भारत-सरकार के ज़रिये कर्ज़ा लेना ही बेहतर समझा। नये एक्ट में प्रान्तीय सरकारों के क़र्ज़ा लेने के अधिकारों में काफ़ी वृद्धि कीगई है। ये अधिकार प्रान्तों को एक्ट की धारा १६३ के अनुसार मिले हैं, जिसकी भिन्न-भिन्न उपधाराओं का हम यहाँ वर्णन करेंगे।

उपधारा १ के अनुसार प्रान्तीय सरकारें अपने प्रान्त की आय की ज़मानत पर कर्ज़ा लेसकती हैं, लेकिन प्रान्तीय धारा-सभा को एक्ट पास करके यह निश्चय करने का अधिकार होगा कि किस हद तक कर्ज़ा लिया जाय; इसी प्रकार प्रान्तीय सरकारें अपने प्रान्त की म्यूनिसिपैलिटियों वग़ैरा के कर्ज़ों के बारे में भी अपनी ज़मानतें देसकेंगी; लेकिन प्रान्तीय धारा-सभा को एक्ट पास करके यह निश्चय करने का अधिकार होगा कि प्रान्तीय सरकार किस हद तक ज़मानत देसकेगी।

उपधारा २ के अनुसार केन्द्रीय सरकार अपनी शर्तों पर प्रान्तीय सरकारों को कर्ज़ा देसकेगी और प्रान्तीय सरकारों के कर्ज़े के बारे में ज़मानत भी देसकेगी; लेकिन केन्द्रीय धारा-सभा को एक्ट पास करके यह निश्चय करने का अधिकार होगा कि किस हद तक प्रान्तीय सरकारों के कर्ज़े की ज़मानत दीजाय। प्रान्तीय सरकार के जिन कर्ज़ों की ज़मानत केन्द्रीय सरकार देगी उनको प्रान्तीय सरकार से वसूली न होने

पर कर्ज देनेवाले केन्द्रीय सरकार से भी उन्हें वसूल कर सकेंगे। केन्द्रीय सरकार जो कर्ज़ प्रान्तीय सरकारों को देगी उनके लिए केन्द्रीय धारा-सभा की मंजूरी लेने की जरूरत नहीं होगी।

उपधारा ३ के द्वारा प्रान्तीय सरकारों के क़र्ज़ा लेने के अधिकारों पर दो पाबन्दियाँ लगाई गई है। कोई भी प्रान्तीय सरकार केन्द्रीय सरकार की स्वीकृति के बिना (१) भारत के बाहर किसी भी हालत में क़र्ज़ा नहीं लेसकती; और (२) भारत में भी कोई क़र्ज़ा नहीं लेसकती, यदि वह केन्द्रीय सरकार की क़र्ज़दार हो या उसने अपने उस क़र्ज़े को न चुका दिया हो जिसके लिए केन्द्रीय सरकार ने जमानत दी हो। यही नहीं बल्कि, इस उपधारा के अन्तर्गत, केन्द्रीय सरकार को यह भी अधिकार होगा कि वह प्रान्तीय सरकारों को भारत में या भारत के बाहर क़र्ज़ा लेने की स्वीकृति उस हालत में दे जबकि प्रान्तीय सरकारें उसकी शर्तों को मंजूर करलें।

उपधारा ४ के द्वारा प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दिया गया हैं कि यदि केन्द्रीय सरकार उपधारा २ के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों को क़र्ज़ा देने से इंकार करदे, या उपधारा ३ के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों को भारत में या भारत के बाहर क़र्ज़ा लेने की अनुमति न दे, या उनपर ऐसी शर्तें लगादे जो न्यायसंगत न हों, तो वे इस बात की शिकायत वाइसराय से करें। इस सम्बन्ध में वाइसराय 'अपनी मर्ज़ी' से जो फैसला करेगा वही अन्तिम समझा जायगा।

उपर्युक्त उपधाराओं से यह स्पष्ट है कि नये विधान में भी प्रान्तीय सरकारों को क़र्ज़ा लेने के मामलों में केन्द्रीय सरकार और वाइसराय की मर्ज़ी पर काफ़ी निर्भर रहना पडेगा; क्योंकि एक तो कई प्रान्त पहले से ही भारत-सरकार के कर्जदार हैं, दूसरे प्रान्तों में वास्तविक उन्नति

करने के लिए इतनी पूंजी की ज़रूरत होगी कि प्रान्तीय सरकारों को अपनी निज की साख पर उतना कर्ज़ा भी तबतक नहीं मिल सकेगा जब-तक कि भारत-सरकार भी जमानत न दे, और तीसरे कई नये और निर्बल प्रान्तों को निज की साख पर कर्ज़ा ही मुश्किल से मिलेगा और उन्हें भारत-सरकार के ज़रिये ही अपने कर्ज़े लेने होंगे।

*प्रान्तीय सरकारों के बजट*

प्रान्तीय सरकार के बजट को तैयार करने का काम आमतौर पर उस प्रान्त के फाइनेंस मिनिस्टर यानी अर्थ-मंत्री का है, लेकिन एक्ट की धारा ७८ उपधारा १ में इस सम्बन्ध में गवर्नर शब्द का प्रयोग किया गया है और कहा गया है कि गवर्नर का यह कर्त्तव्य होगा कि वह प्रान्तीय सरकार के बजट को हर साल प्रान्तीय धारा-सभा के भवन या भवनों में पेश कराये। मगर यह बात स्पष्ट है कि चूंकि गवर्नर स्वयं धारा-सभा के किसी भी भवन का सदस्य नहीं है, वह अपने इस कर्त्तव्य को मिनिस्टरों के ज़रिये ही पूरा कर सकता है।

ख़र्चों के भेद

उपधारा २ के अनुसार गवर्नर को इस बात का निर्देश किया गया है कि बजट में ख़र्चे का जो अन्दाज़ लगाया जाय उसमें पहले तो यह भेद किया जाय कि कौनसा ख़र्चा प्रान्तीय सरकार की आय से किया जायगा और कौनसा कर्ज़ा वग़ैरा लेकर। इसके अलावा उस अन्दाज़ में यह भेद करना भी ज़रूरी होगा कि उनमें कौनसा ख़र्च ऐसा है जिसको एक्ट में 'प्रान्तीय सरकार की आय से वसूल किया जानेवाला ख़र्चा' (*i. e.* expenditure charged on the revenues of the Province) करके घोषित किया गया है और कौनसा ख़र्चा ऐसा है जो शेष कामों में ख़र्च होगा। इसके अलावा यदि बजट सम्बन्धी प्रस्तावों पर गवर्नर और मिनिस्टरों में मतभेद

होजाय तो गवर्नर को मिनिस्टरों को यह आदेश देने का भी अधिकार होगा कि वे बजट में उन मदों को भी शामिल करलें जिनको कि गवर्नर अपनी 'ख़ास जिम्मेदारियों' की पूर्त्ति के लिए आवश्यक समझता हो। इस प्रकार शामिल कीगई मदों को भी बजट में और मदों से अलग दिखाया जायगा।

उपधारा ३ में उन मदों की एक सूची दीगई है जिनपर किया जानेवाला ख़र्चा 'प्रान्त की आय से वसूल किया जानेवाला खर्चा' समझा जायगा। इसका वास्तविक अभिप्राय यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक है। मॉण्टफ़ोर्ड-विधान में भी प्रान्तीय सरकार के ख़र्चों को (१) नान-वोटेड (Non-voted) और (२) वोटेड (Voted) इन दो भागों में बाँटा गया था। इनमें 'नान-वोटेड' ख़र्चे के लिए धारा-सभा का मत लेना ज़रूरी नहीं था और 'वोटेड' ख़र्चे के लिए प्रान्तीय धारा-सभा का मत लेने की ज़रूरत होती थी। प्रान्तों के इस 'नान-वोटेड' ख़च को नये एक्ट में 'प्रान्त की आय से वसूल किया जानेवाला ख़र्चा' नाम दिया गया है। इसका अभिप्राय, जैसा कि धारा ७९ में स्पष्ट किया गया है, यह है कि इन ख़र्चों के लिए प्रान्तीय धारा-सभा की मंजूरी लेना ज़रूरी नहीं है।

प्रान्त की आय से वसूल होनेवाले खर्चे

उपधारा ३ के अनुसार निम्न मदों के ख़र्चे प्रान्त की आय से वसूल किये जानेवाले खर्चे समझे जायँगे :—

(१) गवर्नर के वेतन-भत्ते और उसकी शान-शौक़त के लिए किय जानेवाले वे सब ख़र्चे जो आर्डर-इन-कौंसिल द्वारा निश्चित किये गये हैं;

(२) प्रान्तीय सरकार के कर्ज़ों से सम्बन्ध रखनेवाले सब खर्चे;

(३) मिनिस्टरों और एडवोकेट-जनरल के वेतन-भत्ते;

(४) हाईकोर्ट के जजों के वेतन-भत्ते;

(५) वहिर्गत-क्षेत्रों के शासन में किये जानेवाले सब ख़र्चे; और

(६) वे ख़र्चे जो किसी अदालत या पंच के फ़ैसले या डिक्री पर अमल करने के लिए करने ज़रूरी हों।

उपर्युक्त मदों के अलावा एक्ट की और कई धाराओं में भी जगह-जगह इस बात का उल्लेख किया गया है कि और किन-किन मदों का ख़र्चा प्रान्त की आय से वसूल किया जासकेगा। इनमें मुख्य हैं (१) गवर्नर के निजी कर्मचारियों के वेतन-भत्तों सहित उसके निजी दफ़्तर का सब ख़र्चा; (२) हाईकोर्ट का सब ख़र्चा; और (३) ऑल-इण्डिया सर्विस वाले तथा अन्य कुछ प्रान्तीय कर्मचारियों के वेतन-भत्ते वग़ैरा।

उपधारा ३ के अन्तर्गत प्रान्तीय धारा-सभा को यह अधिकार दिया गया है कि वह और मदों के ख़र्चों को भी एक्ट पास करके 'प्रान्त की आय से वसूल किये जानेवाले ख़र्चों' की सूची में डालदे। लेकिन कोई भी धारा-सभा इस प्रकार ख़ुद ही अधिकार छोड़ने के लिए तैयार होगी, इसकी उम्मीद करना व्यर्थ मालूम होता है; क्योंकि कोष पर नियन्त्रण रखने का अधिकार आजकल धारा-सभा के सब अधिकारों में मुख्य समझा जाता है।

अगर कभी इस बात पर मतभेद होजाय कि कोई प्रस्तावित ख़र्चा 'प्रान्त की आय से वसूल किये जानेवाले ख़र्चों' की श्रेणी में आता है या नहीं, तो धारा ७८ की उपधारा ४ के अनुसार गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से जो फ़ैसला करे वही मान्य होगा।

प्रान्त की आय से वसूल किये जानेवाले ख़र्चों के बारे में यह लिखना ज़रूरी है कि इस तरकीब से ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने प्रान्तीय सरकारों की आय के एक बहुत बड़े भाग को धारा-सभाओं के नियन्त्रण

से निकालकर उनके अधिकारों पर बिलकुल पानी ही फेर दिया है। यह सच है कि इंग्लैण्ड आदि देशों में भी इस प्रकार कुछ मदों के ख़र्चों के लिए पार्लमेण्ट की सालाना मंजूरी की जरूरत नहीं होती; लेकिन वहाँ एक तो इस प्रकार की मदों की सूची ही बहुत छोटी है, और दूसरे उनका ख़र्चा कुल आय का एक बहुत ही छोटा हिस्सा होता है। उदाहरणार्थ, इंग्लैण्ड में या तो सम्राट् के, या सरकारी क़र्ज़ से सम्बन्ध रखनेवाली मदों के, या उच्च जजों के वेतन-भत्तों की मदों के ख़र्च के लिए पार्लमेण्ट की सालाना मंजूरी लेने की जरूरत नहीं होती। बाकी पाई-पाई के ख़र्चे के लिए पार्लमेण्ट से मंजूरी लीजाती है।'

बहस पर भी पाबन्दी

एक्ट की धारा ७९ उपधारा १ में कहा गया है कि प्रान्त की आय से वसूल किये जानेवाले ख़र्चे के लिए प्रान्तीय धारा-सभा की मंजूरी की जरूरत नहीं होगी; लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि धारा-सभा के भवन इन ख़र्चों के बारे में बहस या विचार-विमर्श भी नहीं कर सकते। हाँ, गवर्नर के वेतन-भत्तों वाली मद के ऊपर धारा-सभा के किसी भी भवन में कोई वादविवाद भी न होसकेगा।

उपधारा २ में कहा गया है कि शेष सब ख़र्चों के लिए केवल प्रान्त की लेजिस्लेटिव असेम्बली की मंजूरी लीजायगी और लेजिस्लेटिव असेम्बली को इन ख़र्चों को मंजूर या नामंजूर करने और इनमें काट-

१. संयुक्तप्रान्त की सरकार के सन् १९३७-३८ के बजट के आँकड़ों को देखने से पता चलता है कि इस वर्ष की लगभग २४ करोड़ ७७ लाख की आय में लगभग ११ करोड़ ४० लाख का यानी ४६ प्रतिशत ख़र्चा ऐसा था जो 'प्रान्त की आय से वसूल किया जानेवाला' होने की वजह से प्रान्तीय धारा-सभा की मंजूरी के लिए नहीं पेश किया गया।

छाँट करने का अधिकार होगा। लेकिन प्रान्त की लेजिस्लेटिव कौंसिल

असेम्बली व कौंसिल

को बजट पर केवल आम बहस करने का ही अधिकार होगा; उसमें काट-छाँट करने का उसे कोई अधिकार न होगा।

उपधारा ३ में कहा गया है कि ख़र्चे की किसी भी मद को गवर्नर की सिफ़ारिश के बग़ैर असेम्बली में मंजूरी के लिए पेश नहीं किया जायगा। इस उपधारा में केवल 'गवर्नर' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसका अभिप्राय है कि मिनिस्टर ही किसी ख़र्चे के लिए असेम्बली में माँग पेश कर सकते हैं। साधारण सदस्यों को यह प्रस्ताव करने का अधिकार न होगा कि अमुक-अमुक विषय पर इतना रुपया ख़र्च किया जाय। हाँ, वे चाहें तो अपने असन्तोष को ख़र्चे की माँग में 'कटौती के प्रस्ताव' पेश करके ज़ाहिर कर सकते हैं।

एक्ट की धारा ८० उपधारा १ में कहा गया है कि असेम्बली द्वारा बजट पास होजाने के बाद गवर्नर फिर उसपर अपने हस्ताक्षर करेगा,

बजट को बहाल करने का अधिकार

लेकिन ऐसा करते समय वह अपनी किसी ख़ास जिम्मेदारी की पूर्त्ति के लिए आवश्यक समझे तो उन मदों को फिर बहाल कर सकेगा जिन्हें असेम्बली ने नामंज़ूर कर दिया हो या जिनमें असेम्बली ने काट-छांट करदी हो।

उपधारा २ में कहा गया है कि गवर्नर के हस्ताक्षर-सहित बजट फिर असेम्बली के सामने रक्खा जायगा, लेकिन वह उसपर न तो बहस कर सकेगी और न उसमें कोई काट-छांट ही कर सकेगी। उपधारा ३ में कहा गया है कि प्रान्त की आय से किया जानेवाला कोई भी ख़र्चा तब-तक बाज़ाब्ता नहीं माना जायगा जबतक कि इसका उल्लेख गवर्नर के हस्ताक्षर वाली बजट की प्रति में न हो।

धारा ८१ में कहा गया है कि यदि किसी साल के अन्दर प्रान्त की आय में से और ख़र्च करने की ज़रूरत पड़ जाय, तो उसी विधि को अपनाना पड़ेगा जो सालाना बजट के बारे में उपर्युक्त धाराओं के अनुसार अपनाई जानी ज़रूरी है। अर्थात् जबतक प्रान्त की असेम्बली में उस पूरक (Supplementary) बजट पर विचार न होलेगा और गवर्नर के उसपर हस्ताक्षर न होजायेंगे तबतक पहले बजट के अतिरिक्त खर्चा न किया जासकेगा।

पूरक बजट

प्रान्त में एंग्लो-इण्डियन और यूरोपियनों की शिक्षा के ऊपर पर्याप्त व्यय किया जाय, इसके लिए एक्ट की धारा ८३ में विशेष प्रबन्ध किया गया है। इस धारा की उपधारा १ में कहा गया है कि एंग्लो-इण्डियनों और यूरोपियनों की शिक्षा के लिए हर साल कम-से-कम उतना रुपया ख़र्च किया जाया करेगा जितना कि सन् १९२३ से ३३ तक के दस सालों में औसतन हर साल उस प्रान्त में उनकी शिक्षा के लिए ख़र्च किया गया था। और औसतों के निकालने में वह सब खर्च भी शामिल कर लिया जायगा जो स्कूलों की इमारतें वग़ैरा बनाने के काम में ख़र्च किया जाता है।

यूरोपियनों की शिक्षा

इस उपधारा के दो अपवाद भी रक्खे गये हैं। इनमें पहला यह है कि यदि किसी वर्ष प्रान्तीय असेम्बली सारी शिक्षा पर इतना कम रुपया ख़र्च करने का निश्चय करे कि वह खर्च उपर्युक्त १० सालों के सारी शिक्षा के औसत-ख़र्च से भी कम हो, तो उसी अनुपात से एंग्लो-इण्डियनों और यूरोपियनों की शिक्षा पर भी कम व्यय किया जा सकेगा। दूसरा अपवाद यह है कि प्रान्त की असेम्बली अपने $\frac{3}{4}$ बहुमत से प्रस्ताव करके या तो किसी ख़ास साल में या सदा के लिए इसके विरुद्ध काम करने का निश्चय कर सकती है; लेकिन उपधारा ३ में कहा गया है कि यदि

असेम्वली इस प्रकार प्रस्ताव पास कर भी दे तो भी गवर्नर अपनी उस 'ख़ास जिम्मेदारी' की पूर्त्ति के लिए, जो अल्पसंख्यक जातियों के वाजिव हितों की रक्षार्थ उसे दीगई है, वदस्तूर जिम्मेदार रहेगा।

*प्रान्त की आय से होसकनेवाले खर्चे*

धारा १५० उपधारा १ में कहा गया है कि प्रान्त की या केन्द्र की आय से कोई भी खर्चा ऐसे किसी मामले पर नहीं किया जासकेगा जिसका सम्वन्ध न तो भारत से हो और न भारत के किसी भाग से। ये शब्द उन शब्दों से वहुत व्यापक हैं जो पुराने एक्ट में इस सम्वन्ध में काम में लाये गये थे। पुराने एक्ट के शब्द तो सिर्फ़ यही थे कि "भारत की सरकारी आय भारत के शासन-सम्बन्धी मामलों पर ही ख़र्च की जा सकेगी।" प्रो० के० टी० शाह का मत है कि नये एक्ट में इतनी व्यापक भाषा प्रयोग करने का यह उद्देश्य है कि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों को ब्रिटेन के उन युद्धों के ऊपर भी ख़र्चा करने के लिए वाधित किया जा सकेगा जिनका भारत से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध न भी हो। ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी के उन शब्दों से प्रो० शाह के इस मत की कुछ पुष्टि भी होती है जो उसने वाइसराय की उस 'ख़ास जिम्मेदारी' के वारे में अपनी रिपोर्ट में लिखे हैं जो कि भारत में अमन-चैन वनाये रखने की ख़ातिर उसको दीगई है। उन शब्दों का आशय इस प्रकार है :—

"वाइसराय की इस जिम्मेदारी का व्यापक-से-व्यापक अर्थ लगाया जाना चाहिए, और जब कभी भारत की सुरक्षा के लिए भारतीय फौजों को वाहर भेजना आवश्यक हो तो उसे ऐसा करने का अधिकार होना चाहिए, चाहे गाल उस समय भारत के अमन-चैन में कोई ख़लल न भी पड़ता हो।"[1]

१. ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की रिपोर्ट; पृष्ठ [illegible], पैरा १७८।

उपधारा २ में इस मंशा को और भी स्पष्ट कर दिया गया है। उसके अनुसार केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभायें भारत से सम्बन्ध रखनेवाले किसी भी मामले के लिए अपना रुपया खर्च कर सकेंगी, चाहे उन्हें उस मामले के लिए क़ानून बनाने का अधिकार न भी हो। उदाहरणार्थ, मद्रास प्रान्त चाहे तो बिहार के भूकम्प-पीड़ितों के लिए या किसी भी केन्द्रीय विषय के लिए अपना रुपया ख़र्च कर सकता है। इसी प्रकार केन्द्र भी किसी भी प्रान्तीय विषय पर रुपया ख़र्च कर सकता है।

इस प्रकार प्रान्तीय राजस्व में उस बात की क़ाफ़ी गुँजाइश रक्खी गई है जिसकी ओर कि प्रो० शाह ने संकेत किया है। यानी ब्रिटिश सरकार चाहे तो प्रान्तों को ब्रिटेन के उन युद्धों पर भी ख़र्च करके लिए बाध्य कर सकेगी जिनका कि भारत से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होगा।

: ९ :

# प्रान्तीय न्याय-विभाग

*न्याय-विभाग का संगठन*

गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की न्याय-विभाग सम्बन्धी धाराओं को ठीक तरह समझने के लिए पहले यह जान लेना जरूरी है कि हरेक प्रान्त के न्याय-विभाग का संगठन दूसरे प्रान्तों के न्याय-विभाग से बहुत-कुछ भिन्न होता है। न्यायाधीशों के ओहदे भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जिन नामों से जाने जाते हैं उनमें ख़ासतौर पर बहुत भिन्नता है। फिर भी न्याय-विभागों के संगठन-सम्बन्धी बहुत-सी बातें ऐसी हैं जो सब प्रान्तों में क़रीब-क़रीब एक-सी है। जो बातें आमतौर पर सब प्रान्तों में एक-सी है उन्हींका हम यहां वर्णन करेंगे।

प्रत्येक ज़िले की अदालतें तीन क़िस्मों में बांटी गई हैं—(१) दीवानी, (२) फ़ौजदारी, और (३) माल। दीवानी अदालत का हाकिम सब-जज, सिविल जज या मुंसिफ़ कहलाता है।

*दीवानी अदालतें*

इनमें भी कई दर्जे होते हैं और एक ख़ास दर्जे का हाकिम ख़ास हद तक के ही मुक़दमे सुन सकता है। लेकिन कुछ हाकिम ऐसे भी होते हैं जो, बिना किसी तादाद की पाबन्दी के, हरेक मुक़दमे सुन सकते हैं। इन सबके फ़ैसलों की अपीलें या तो ज़िला जज के यहां होती है या सीधी हाईकोर्ट में। उदाहरणार्थ, दिल्ली में ५,०००) से कम के मुक़दमों की अपीलें ज़िला जज के यहां और ५,०००) से ऊपर के मुक़दमों की अपीलें हाईकोर्ट में होती है। ज़िला जज ख़ुद भी मुक़दमे

कर सकता है, लेकिन आमतौर पर वह अपीलें ही सुनता है। ज़िला-जज के फ़ैसलों की अपील हाईकोर्ट में होती है और हाईकोर्ट के फ़ैसलों की प्रिवी कौंसिल में, बशर्ते कि मुकदमा आमतौर पर १०,०००) से ज्यादा का हो। अदालत ख़फ़ीफ़ा के फ़ैसलों की निगरानी ( revision ) सीधी हाईकोर्ट में होती है। मद्रास, बम्बई और कलकत्ता के शहरों में ज़िला जज का काम हाईकोर्ट के ही सुपुर्द रहता है।

फ़ौजदारी अदालतें

फ़ौजदारी अदालत का हाकिम मजिस्ट्रेट कहलाता है। इनमें तीन किस्में होती हैं। फ़र्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट २ साल तक की सजा व १,०००) तक जुर्माना कर सकता है; सेकण्ड क्लास मजिस्ट्रेट ६ महीने की सजा व २००) तक जुर्माना कर सकता है; और थर्ड क्लास मजिस्ट्रेट १ महीने की सजा व ५०) तक जुर्माना कर सकता है। ज़िले भर के सब मजिस्ट्रेटों के ऊपर एक ज़िला-मजिस्ट्रेट होता है, जिसके अधिकार फ़र्स्टक्लास मजिस्ट्रेट के अधिकारों से कुछ अधिक होते हैं। ज़िला मजिस्ट्रेट ज़िले के सब मजिस्ट्रेटों को काम बाँटने और उनपर नियंत्रण रखने के अलावा ज़िले में अमन-चैन क़ायम रखने के लिए भी ज़िम्मेदार होता है और इसलिए ज़िले का पुलिस-विभाग भी उसके मातहत होता है। ज़िला मजिस्ट्रेट और अन्य सब मजिस्ट्रेटों को मुकदमे सुनने के अलावा मजिस्ट्रेट की हैसियत में शासन-विभाग से सम्बन्ध रखनेवाली और कई ड्यूटियाँ भी करनी पड़ती हैं; जैसे जुलूसों के साथ चलना या ग़ैर-क़ानूनी भीड़ को तितर-बितर करने के लिए गोली चलाने का हुक्म देना, शान्ति-रक्षा के लिए उपद्रवियों से जमानत-मुचलके माँगना इत्यादि। ज़िला मजिस्ट्रेट आमतौर पर खुद मुकदमे नहीं सुनता। वेतन पानेवाले मजिस्ट्रेटों के अलावा आनरेरी मजिस्ट्रेट भी होते हैं।

सेकण्ड व थर्ड क्लास के मजिस्ट्रेटों के फ़ैसलों की अपीलें आमतौर पर ज़िला मजिस्ट्रेट या किसी फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट के यहाँ होती हैं और बाक़ी सब मुकदमों की दौरा जज के यहाँ। दौरा जज अपीलें सुनने के अलावा उन मुक़दमों को भी सुनता है जो मजिस्ट्रेटों द्वारा उसके सुपुर्द किये जाते हैं। दौरा जज भारी-से-भारी सजा देसकता है, लेकिन फाँसी की सजा के लिए हाईकोर्ट की मंजूरी लेने की जरूरत होती है। दौरा जज के फैसलों की अपीलें हाईकोर्ट में होती हैं। फ़ौजदारी मुकदमों में दीवानी मुकदमों की तरह एक अपील के बाद दूसरी अपील नहीं की जासकती। क़ानूनी नुक़्तों के ऊपर अलबत्ता हाईकोर्ट में निगरानी होसकती है। मद्रास, बम्बई और कलकत्ता के शहरों में दौरा जज का काम भी हाईकोर्ट के सुपुर्द रहता है।

माल की अदालतें

माल की अदालतों के हाकिम तहसीलदार, डिप्टी कलक्टर या असिस्टेण्ट कलक्टर कहलाते हैं। ये हाकिम अदालती हैसियत में ज़मींदारों व किसानों के मुकदमे करते हैं और अफसरी हैसियत में मालगुजारी की वसूली के लिए ज़िम्मेदार होते हैं तथा शासन-विभाग से सम्बन्ध रखनेवाले और भी बहुत-से काम उन्हें करने पड़ते हैं। कलक्टर ज़िलेभर में इन सबके ऊपर होता है। इनके फ़ैसलों की अपीलें या तो कलक्टर के यहाँ होती हैं या कमिश्नर के यहाँ।[1] कमिश्नर के ऊपर अपील बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू में कीजाती है। कुछ प्रान्तों में यह स्थान फाइनेंशल कमिश्नर या रेवेन्यू कमिश्नर को मिला हुआ है। इनके ऊपर प्रान्तीय सरकार होती है, लेकिन वह अपीलें नहीं सुनती।

आमतौर पर ज़िले का कलक्टर और ज़िले का मजिस्ट्रेट एक ही

१. मद्रास में कमिश्नर नहीं होते।

व्यक्ति होते हैं। इसी प्रकार जो व्यक्ति डिप्टी या असिस्टेण्ट कलक्टर होता है वह डिप्टी मजिस्ट्रेट या ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट भी होता है। तहसीलदारों को भी मजिस्ट्रेटी अख़्तियारात दिये जाते हैं। दीवानी अपीलें सुननेवाला जिला जज और फौजदारी मुकदमे व अपीलें सुननेवाला दौरा जज भी आमतौर पर एक ही व्यक्ति होता है।

हाईकोर्ट

एक्ट की धारा २१९ के अनुसार इन कोर्टों को हाईकोर्ट की गिनती में शुमार किया गया है—कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद, लाहौर, पटना व नागपुर के हाईकोर्ट; अवध का चीफ़ कोर्ट; तथा सिन्ध और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त के जुडीशल कमिश्नर्स कोर्ट। इनमें जो कोर्ट हाईकोर्ट कहलाते हैं वे सम्राट् के 'लेटर्स पेटेण्ट' द्वारा स्थापित किये गये हैं और उन लेटर्स पेटेण्टों द्वारा ही उनके अधिकार और अधिकार-क्षेत्रों का वर्णन किया जाता है। इसके अलावा भारतीय धारा-सभायें भी उनको अतिरिक्त अधिकार और अधिकार-क्षेत्र देसकती हैं। चीफ कोर्ट और जुडीशल कमिश्नर्स कोर्ट भारतीय धारा-सभाओं के क़ानूनों द्वारा स्थापित किये गये हैं, इसलिए उनके अधिकारों और अधिकार-क्षेत्रों का निर्णय आमतौर पर केवल भारतीय धारा-सभाओं के क़ानूनों द्वारा ही होता है।

नए एक्ट में हाईकोर्ट का अभिप्राय

हाईकोर्ट आमतौर पर हरेक प्रान्त के लिए अलग होता है। लेकिन कलकत्ते का हाईकोर्ट बंगाल और आसाम दो प्रान्तों के लिए है और इलाहाबाद का हाईकोर्ट संयुक्तप्रान्त में केवल आगरा-विभाग के लिए है, अवध के लिए लखनऊ में चीफ कोर्ट अलग है। लाहौर का हाईकोर्ट पंजाब व दिल्ली इन दोनों प्रान्तों के लिए है, और पटना का हाईकोर्ट बिहार व उड़ीसा इन दोनों प्रान्तों के लिए है।

इन हाईकोर्टों के अलावा अजमेर-मेरवाडा और कुर्ग में जुडीशल कमिश्नरों के कोर्ट हैं, जिनके अधिकार और अधिकार-क्षेत्र भारत-सरकार के रेग्युलेशनों के जरिये निर्धारित किये गये हैं और जजों की नियुक्ति वग़ैरा के सब अधिकार भारत-सरकार को हैं। नये एक्ट में इन कोर्टों को हाईकोर्ट का दर्जा नहीं दिया गया है। सम्राट् ने धारा २१९ के द्वारा यह अधिकार अपने पास सुरक्षित जरूर रक्खा है कि वह आर्डर-इन-कौंसिल जारी करके उन्हें हाईकोर्ट का दर्जा देदे। लेकिन अभीतक ऐसा कोई आर्डर-इन-कौंसिल सम्राट् ने जारी नहीं किया है। यह ध्यान में रखना चाहिए कि जबतक इन कोर्टों को अन्य हाईकोर्टों के दर्जे तक नहीं लेआया जायगा तबतक इनके फैसलों की अपीलें फेडरल कोर्ट में न होसकेंगी।

जजों की नियुक्ति

एक्ट की धारा २२० उपधारा १ के मातहत हाईकोर्ट के जजों की नियुक्ति का अधिकार सम्राट् ने अपने हाथ में रक्खा है। "प्रान्तीय स्वराज्य" स्थापित होजानें के बाद होना तो यह चाहिए था कि इन मामलों में भी प्रान्तों को पूरे अधिकार देदिये जाते, लेकिन ऐसा नहीं किया गया, जबकि इंग्लैण्ड में हाईकोर्ट के जजों की नियुक्ति मन्त्रि-मण्डल ही करता है। इसके अलावा इस बात की भी कोई आशा नहीं कि इन मामलों में प्रान्तीय मिनिस्टरों से सलाह ली जायगी। प्रान्तीय स्वराज्य के अमल में आने से पहले भी हाईकोर्टो के जजों की नियुक्ति तो सम्राट् द्वारा ही होती थी, लेकिन उस वक़्त चीफ जस्टिस हाईकोर्ट के अन्य जजों से सलाह करके अपनी सिफारिश प्रान्तीय सरकार को भेजता था और वह सिफारिश भारत-सरकार के जरिये भारत-मन्त्री के पास जाती थी, जबकि अब प्रान्तीय सरकार अर्थात् प्रान्तीय मिनिस्टरों से सलाह-मशविरा करने की नीति का

अन्त ही समझना चाहिए। कुछ दिन हुए, उडीसा के एक एडवोकेट को जब पटना हाईकोर्ट का जज नियुक्त किया गया तो उडीसा के प्रधान-मन्त्री को इस बात की ख़बर सबसे पहले अख़बारों से ही मिली थी।

जजों की संख्या

प्रत्येक हाईकोर्ट के जजों की संख्या निश्चित करने का अधिकार भी सम्राट् ने अपने हाथ में रक्खा है। सम्राट् के एक आर्डर-इन-कौंसिल के अनुसार विभिन्न हाईकोर्टों के जजों की अधिकतम संख्या, जिसमें चीफ़ जस्टिस भी शामिल हैं, इस प्रकार रक्खी गई है :—

मद्रास-हाईकोर्ट १६; बम्बई-हाईकोर्ट १४; कलकत्ता-हाईकोर्ट २०; इलाहाबाद-हाईकोर्ट १३; लाहौर-हाईकोर्ट १६; पटना-हाईकोर्ट १२; नागपुर-हाईकोर्ट ८; अवध का चीफ़ कोर्ट ६; सिन्ध का जुडीशल कमिश्नर्स कोर्ट ६; और पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त का जुडीशल कमिश्नर्स कोर्ट ३।

जजों की अलहदगी व बर्ख़ास्तगी वग़ैरा

एक्ट की धारा २२० उपधारा २ में जजों के रिटायर होने की उम्र ६० साल रक्खी गई है, लेकिन कोई भी जज किसी भी समय अपने हस्ताक्षरों से प्रान्त के गवर्नर के पास अपना इस्तीफा भेज सकता है।

जजों को बर्ख़ास्त करने या हटाने का अधिकार भी उक्त उपधारा के अन्तर्गत सम्राट् ने अपने हाथ में रक्खा है। प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल और प्रान्तीय धारा-सभा को इस मामले में दख़ल देने का कोई अधिकार न होगा।[१] इंग्लैण्ड में तथा अन्य लोकतन्त्रवादी देशों में जजों के बारे

१. एक्ट की ४०वीं और ८६वीं धाराओं के अनुसार भारत की किसी भी धारा-सभा में हाईकोर्ट के जजों के आचरण के बारे में कोई बहस भी न होसकेगी।

में आमतौर पर यह क़ायदा होता है कि यदि वे दुराचरण का कोई काम करें तो पार्लमेण्ट की प्रार्थना पर उनको हटा दिया जाता है। लेकिन भारत की प्रान्तीय धारा-सभाओं को इस अधिकार से बंचित रक्खा गया है। भारत के हाईकोर्टों के जजों को हटाने की सिफ़ारिश करने का अधिकार भारत से ६,००० मील दूर बैठी प्रिवी कौंसिल को ही होगा। प्रिवी कौंसिल भी उसी हालत में सिफ़ारिश कर सकेगी जब कि पहले सम्राट् उसकी राय पूछे। इस प्रकार जजों को या तो दुराचरण के कारण या मानसिक वा शारीरिक शक्तियों के क्षीण होजाने के कारण हटाया जासकेगा।

जजों की योग्यायें

हाईकोर्ट की जजी के लिए योग्यतायें एक्ट की धारा २२० उपधारा ३ में निर्धारित की गई हैं। उनके अनुसार कोई भी ऐसा व्यक्ति हाईकोर्ट का जज नियुक्त किया जासकता है जो—

( १ ) कम-से-कम १० साल तक बैरिस्टरी कर चुका हो;

( २ ) इण्डियन सिविल सर्विस का ऐसा सदस्य हो जो कम-से-कम १० साल तक उस सर्विस का सदस्य रहा हो और कम-से-कम ३ साल तक जिला जज की जगह काम कर चुका हो;

( ३ ) ब्रिटिश भारत में कम-से-कम ५ साल तक ऐसे अदालती ओहदे पर रह चुका हो जो सब-जज या जज ख़फीफ़ा के ओहदे से नीचा न हो; या

( ४ ) कम-से-कम १० साल तक किसी भी हाईकोर्ट का वकील, प्लीडर या एडवोकेट रह चुका हो।

पैरा नम्बर २ से प्रत्यक्ष है कि इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य हाईकोर्ट की जजी के लिए बदस्तूर नियुक्त किये जासकेंगे। प्रथम

गोलमेज परिषद् में जब इस प्रश्न पर विचार हुआ, तो सर्विसेज सब-कमेटी ने बहुमत से यह सिफ़ारिश की थी कि न्यायालयों के लिए इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्यों की नियुक्ति क़तई बन्द करदी जानी चाहिए। पुराने एक्ट में यह नियम था कि कम-से-कम एक-तिहाई जज बैरिस्टरों में से नियुक्त किये जायें और कम-से-कम एक-तिहाई इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्यों में से। इस नियम का यह परिणाम होता था कि इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य दो-तिहाई जगहों से ज्यादा पर नहीं नियुक्त किये जा सकते थे। लेकिन अब यह पाबन्दी उठगई है और इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्यों के लिए रास्ता बिलकुल साफ़ कर दिया गया है।

'लेटर्स पेटेण्ट' द्वारा स्थापित किये गये हाईकोर्टों के लिए अभीतक यह नियम था कि उनका चीफ़ जस्टिस बैरिस्टरों में से ही कोई होसकता था। इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य इस जगह के लिए क़ाबिल नहीं समझे जाते थे। लेकिन अब इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्य तीन साल तक हाईकोर्ट की जजी करनें के बाद लेटर्स पेटेण्ट द्वारा स्थापित किये गये हाईकोर्टों के चीफ जस्टिस भी होसकेंगे। शेष हाईकोर्टों के लिए यह तीन साल की पाबन्दी भी नहीं रक्खी गई है।

चीफ़ जस्टिस

पुराने एक्ट के वक़्त हिन्दुस्तान के वे वकील या एडवोकेट जिन्होंने विलायत में बैरिस्टरी पास नहीं की थी, लेटर्स पेटेण्ट द्वारा स्थापित हाईकोर्टों के चीफ़ जस्टिस नही नियुक्त किये जा सकते थे। लेकिन अब यह पाबन्दी हटादी गई है।

धारा २२० की उपधारा ४ के अनुसार प्रत्येक जज को अपना काम सम्हालने से पहले या तो गवर्नर के सामने या गवर्नर द्वारा नियुक्त किये गये किसी व्यक्ति

राजभक्ति की शपथ

के सामने सम्राट् के प्रति वफ़ादारी की शपथ लेना लाजिमी है।

वेतन-छुट्टी-भत्ते

धारा २२१ के अनुसार हाईकोर्टों के जजों के वेतन, भत्ते, पेंशनों और छुट्टियों के बारे में नियमोपनियम बनाने का अधिकार सम्राट् ने अपने हाथ में रक्खा है। लेकिन नियुक्ति के बाद किसी जज के वेतन, भत्तों वगैरा में कमी सम्राट् भी नहीं कर सकता।

धारा २२१ के अन्तर्गत जो आर्डर-इन-कौंसिल सम्राट् ने जारी किया है उसके अनुसार विभिन्न हाईकोर्टों के चीफ़ जस्टिस और जजों के वार्षिक वेतन निम्न प्रकार निश्चित किये गये हैं। लेकिन यह आर्डर-इन-कौंसिल उन जजों पर ही लागू होगा जो १ अप्रैल सन् १९३७ के बाद नियुक्त किये जायँगे :—

| | | |
|---|---|---|
| कलकत्ता-हाईकोर्ट का चीफ़ जस्टिस | | ७२,०००) |
| मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना और लाहौर के हाईकोर्टों के चीफ़ जस्टिस | (प्रत्येक) | ६०,०००) |
| नागपुर-हाईकोर्ट का चीफ़ जस्टिस | | ५०,०००) |
| कलकत्ता, मद्रास, बम्बई, इलाहाबाद, पटना और लाहौर के हाईकोर्टों के जज और अवध चीफ़ कोर्ट का चीफ़ जज | ,, | ४८,०००) |
| अवध चीफ़ कोर्ट के जज और सिन्ध का जुडीशल कमिश्नर | ,, | ४२,०००) |
| नागपुर-हाईकोर्ट के जज | ,, | ४०,०००) |
| पश्मोत्तर सीमाप्रान्त का जुडीशल कमिश्नर | | ३९,०००) |
| सिन्ध और पश्मोत्तर सीमाप्रान्त के असिस्टेण्ट जुडीशल कमिश्नर | ,, | ३६,०००) |

इसी आर्डर-इन-कौंसिल के अनुसार जजों की छुट्टी मंजूर करने और उनकी सवारियों के भत्तों वग़ैरा की रक़में निश्चित करने का अधिकार प्रान्तीय सरकार को दिया गया है; लेकिन गवर्नर भी 'अपने विवेक' से काम लेसकेगा। यानी जजों की छुट्टी वग़ैरा की दरख़्वास्तें पहले मिनिस्टरों के पास जायँगी और फिर गवर्नर के।

पुराने एक्ट के अनुसार हाईकोर्टों के अस्थायी जजों या अस्थायी चीफ़ जस्टिसों के नियुक्त करने का अधिकार उस प्रान्त की प्रान्तीय सरकार को था, लेकिन नये एक्ट की धारा २२२ के अन्तर्गत अब प्रान्तीय सरकारों के हाथ से यह छोटा-सा अधिकार भी छीन लिया गया है और अस्थायी नियुक्तियाँ करने का अधिकार गवर्नर-जनरल को ही होगा और वह 'अपनी मर्ज़ी' से काम कर सकेगा। इसी प्रकार काम में अस्थायी वृद्धि हो जाने के कारण २ साल के लिए जो जज 'अतिरिक्त जज' के बतौर केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते थे, उनकी नियुक्ति भविष्य में गवर्नर-जनरल द्वारा हुआ करेगी और वह इस मामले में भी 'अपनी मर्ज़ी' से काम कर सकेगा।

अस्थायी और अतिरिक्त जज

हाईकोर्टों के अधिकार व अधिकार-क्षेत्र या तो उनके लेटर्स पेटेण्टों द्वारा निर्धारित किये गये हैं या भारतीय धारा-सभाओं के क़ानूनों द्वारा। एक्ट की धारा २२३ के अनुसार हाईकोर्टों के पुराने अधिकार व अधिकार-क्षेत्र बदस्तूर जारी रहेंगे, लेकिन भारतीय धारा-सभाओं को उनके अधिकारों में कमी-बेशी करने का अधिकार होगा। उदाहरणार्थ, केन्द्रीय धारा-सभा केन्द्रीय विषयों के बारे में और प्रान्तीय धारा-सभा प्रान्तीय विषयों के बारे में तथा सम्मिलित विषयों के बारे में दोनों कमी-बेशी

अधिकार व अधिकार-क्षेत्र

कर सकेंगी। जब ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी के सामनें यह मामला पेश हुआ तो इंग्लैण्ड के कंजरवेटिवों की ओर से यह आन्दोलन उठाया गया था कि धारा-सभाओं को हाईकोर्टों के ऊपर इतने अधिक अधिकार देने का यह परिणाम होगा कि हाईकोर्टों के अधिकार धारा-सभायें छीनकर मातहत अदालतों को देदेंगी, जो ठीक न होगा, और उससे ब्रिटिश प्रजा की स्थिति डावाँडोल होजायगी। इस आन्दोलन के फलस्वरूप ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की सिफ़ारिश पर गवर्नरों के आदेश-पत्र में यह धारा जोड़दी गई है कि यदि प्रान्तीय धारा-सभा हाईकोर्टों के अधिकारों में काट-छाँट करने के लिए कोई बिल पास करे तो वह बिल वाइसराय की मंजूरी के लिए भेज दिया जाय। इसी तरह वाइसराय के आदेश-पत्र में भी यह धारा जोड़दी गई है कि वह बिल सम्राट् की मंजूरी के लिए भेज दिया जाय।

मातहत अदालतों पर नियन्त्रण

एक्ट की धारा २२४ उपधारा १ के अन्तर्गत प्रत्येक हाईकोर्ट को अपनी मातहत अदालतों पर नियन्त्रण रखने का अधिकार होगा। मातहत अदालत से मतलब उन सब अदालतों से है जिनकी अपील उस हाईकोर्ट में सुनी जासकती है। इस अधिकार के ज़रिये हाईकोर्ट ख़ास तौर पर निम्नलिखित काम कर सकता है:—

(अ) हिसाब-किताब व रिपोर्टें माँगना;

(ब) अदालतों की कार्रवाई को नियन्त्रण में रखने के लिए आम क़ायदे बनाना व ज़ाब्ते के फ़ार्म वग़ैरा जारी करना;

(स) हिसाब-किताब रखने के बारे में आम हिदायतें देना; और

(द) अदालतों में लिये जानेवाले मेहनतानों की दरें निश्चित करना।

हाईकोर्ट अपने इन अधिकारों का प्रयोग करके जो क़ायदे, फ़ार्म व

दरें वग़ैरा नियत करे वे किसी मौजूदा क़ानून के ख़िलाफ़ न होने चाहिएँ और उनके लिए प्रान्तीय सरकार की मंजूरी लेनें की भी जरूरत होगी।

कतिपय अधिकारों का अपहरण

एक्ट की धारा २२४ उपधारा २ के द्वारा हाईकोर्ट के कतिपय अमूल्य अधिकारों का, जो हाईकोर्टों को पुराने एक्ट के अन्तर्गत मिले हुए थे और जिनका इस्तैमाल कुछ हाईकोर्टों ने सविनय अवज्ञा आन्दोलन के जमाने में वाइसराय के आर्डिनेंसों के विरुद्ध निर्भयता से किया था, अपहरण कर लिया गया है। यह याद रहे कि हाईकोर्टों को ज़ाव्ता फ़ौजदारी व ज़ाव्ता दीवानी के अन्तर्गत अपनी मातहत अदालतों के फ़ैसलों की जांच करने और उन्हें बदलने का अधिकार है। सन् १९३० में वाइसराय ने एक आर्डिनेंस के द्वारा हाईकोर्ट के इस अधिकार को छीन लिया और यह नियम बनाया कि अमुक-अमुक और ख़ासकर प्रेस क़ानूनों के मामलों में हाईकोर्ट में अपील या निगरानी न होसकेगी। एक मामला हाईकोर्ट तक गया और अभियुक्त नें प्रार्थना की कि हालांकि वाइसराय ने आर्डिनेंस के ज़रिये हाईकोर्ट के निगरानी के उस अधिकार को तो छीन लिया है जो हाईकोर्ट को ज़ाव्ता फ़ौजदारी के ज़रिये मिला है, लेकिन वाइसराय हाईकोर्ट के उस अधिकार को नहीं छीन सकता जो गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट द्वारा हाईकोर्ट को मातहत अदालतों पर नियन्त्रण रखनें का मिला है, अतः हाईकोर्ट दख़ल देसकता है। सरकारी वकील ने कहा कि वाइसराय कुछ समय के लिए गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की धाराओं को भी रद कर सकता है, अतः इस मामले में कोर्ट को दख़ल देने का कोई अख़्तियार नहीं है। बम्बई-हाईकोर्ट ने फ़ैसला देते हुए कहा कि वाइसराय पार्लमेण्ट के एक्ट की धारा को रद करके हाईकोर्ट के निगरानी के उन विशेषाधिकारों को जो उसे गवर्मेण्ट ऑफ़

इण्डिया एक्ट द्वारा मिले हुए हैं नहीं छीन सकता, अतः निगरानी में अभियुक्त छोड़ा जासकता है।

अब धारा २२४ उपधारा २ में यह कहा गया है कि यद्यपि हाईकोर्ट को मातहत अदालतों पर नियन्त्रण रखने का अधिकार होगा, लेकिन हाई-कोर्ट को इस अधिकार के ज़रिये अपनी मातहत अदालत के ऐसे किसी फ़ैसले को तब्दील करने का अधिकार न होगा जिसकी क़ानून द्वारा अपील या निगरानी न होसकती हो। इस धारा का जहाँ एक ओर यह परिणाम हुआ कि हाईकोर्ट का न्याय करने का एक महत्वपूर्ण और अमूल्य अधिकार छिन गया, दूसरी ओर यह परिणाम हुआ कि अपीलों और निगरानी के जो साधारण अधिकार हाईकोर्टों को ज़ाब्ता फ़ौजदारी या ज़ाब्ता दीवानी के अन्तर्गत मिले हुए हैं उनका भी आर्डिनेंसों द्वारा अपहरण किया जासकेगा।

नये एक्ट में केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकार-क्षेत्रों के अलग-अलग बँट जाने के कारण अदालतों में किसी भी मुकदमे के दौरान में अब यह सवाल उठाया जासकता है कि अमुक केन्द्रीय या प्रान्तीय एक्ट ग़ैर-क़ानूनी है। गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की धारा २२५ के मातहत हाईकोर्टों को यह आदेश दिया गया है कि यदि किसी मातहत अदालत में किसी एक्ट के क़ानूनी या ग़ैर-क़ानूनी होने का सवाल उठाया जाय, तो हाईकोर्ट उस मुक़दमे को अपनी फ़ाइल पर मँगाले, बशर्ते कि हाईकोर्ट को साधारण क़ानून के अनुसार उस मुकदमे को अपने यहाँ मँगा लेने का अधिकार हो।

क़ानूनी व ग़ैर-क़ानूनी एक्ट

लेकिन हाईकोर्ट इस प्रकार अपने अधिकारों का प्रयोग केन्द्रीय एक्टों के सम्बन्ध में उसी हालत में करेगा जबकि केन्द्र का एडवोकेट-जनरल

प्रार्थना करे और प्रान्तीय एक्टों के सम्बन्ध में उसी हालत में करेगा जबकि केन्द्र का या प्रान्त का एडवोकेट-जनरल प्रार्थना करे। अर्थात् यदि कोई भी फ़रीक़ अपने मुक़दमे को इस आधार पर एकदम हाईकोर्ट में लेजाना चाहे कि उस मुक़दमे में अमुक केन्द्रीय या प्रान्तीय एक्ट के क़ानूनी या ग़ैर-क़ानूनी होने का सवाल उठा है, तो उसे पहले उपयुक्त एडवोकेट-जनरल को दर्ख़ास्त देनी पड़ेगी।

माल के मुक़दमे

एक्ट की धारा २२६ के अनुसार किसी भी हाईकोर्ट को माल के मुक़दमे स्वयं सुनने का अधिकार न होगा। लेकिन केन्द्रीय और प्रान्तीय धारा-सभायें एक्ट पास करके ऐसा अधिकार हाईकोर्टों को देसकती हैं। मगर केन्द्रीय या प्रान्तीय धारा-सभायें ऐसे किसी बिल पर तबतक विचार नहीं कर सकेंगी जबतक कि पहले वाइसराय या गवर्नर अपनी अनुमति न देदे।

भाषा

एक्ट की धारा २२७ के अनुसार हाईकोर्ट की सब कार्रवाई अंग्रेज़ी भाषा में हुआ करेगी। यह ध्यान रहे कि एक्ट में भाषा-सम्बन्धी यह धारा ज्वाइण्ट पार्लमेण्टरी कमेटी की सिफ़ारिशों के फलस्वरूप जोड़ी गई थी।

ख़र्चा

एक्ट की धारा २२८ के अनुसार हाईकोर्टों का ख़र्चा मंजूर करने का अधिकार प्रान्तीय सरकार को दिया गया है। प्रान्तीय सरकार से मतलब उस प्रान्त की प्रान्तीय सरकार से है जिस प्रान्त में हाईकोर्ट की ख़ास कचहरी लगती है। लेकिन इस मामले में गवर्नर को 'अपने विवेक' से भी काम लेने का अधिकार होगा। जैसा कि पहले लिखा जा चुका है, हाईकोर्टों का ख़र्चा प्रान्त की आय से वसूल किया जासकेगा, अर्थात् उसके लिए प्रान्तीय धारा-सभा की मंजूरी लेने की ज़रूरत न होगी। जो हाईकोर्ट एक से

ज्यादा प्रान्तों का काम करते हैं उनका ख़र्चा उन प्रान्तों को आपस में बाँट लेना होगा।

एक्ट की धारा २४२ उपधारा ४ के अनुसार हाईकोर्ट के सारे कर्मचारियों (स्टाफ) की नियुक्ति करने व उनकी नौकरी के सम्बन्ध में विभिन्न नियमादि बनाने का अधिकार चीफ़ जस्टिस को होगा। चीफ़ जस्टिस अपने इन अधिकारों को दूसरे जजों को या रजिस्ट्रार वग़ैरा को भी देसकेगा। लेकिन इन नियमों का जहाँतक कर्मचारियों के वेतन, भत्ते, छुट्टियों व पेंशनों से ताल्लुक हो, चीफ़ जस्टिस को प्रान्तीय सरकार से मंजूरी लेनी होगी। गवर्नर 'अपनी मर्ज़ी' से यह भी नियम बना सकेगा कि यदि चीफ़ जस्टिस हाईकोर्ट के मौजूदा कर्मचारियों के अलावा किसी और व्यक्ति को हाईकोर्ट के किसी पद पर नियुक्त करे तो वह पहलें प्रान्त के पब्लिक सर्विस कमीशन से परामर्श करले।

स्टाफ़

बम्बई, मद्रास और कलकत्ता के हाईकोर्टों में शैरिफ़ नाम का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अफ़सर होता है। यह आमतौर पर एक साल के लिए नियुक्त किया जाता है और शहर का एक प्रमुख नागरिक होता है। इसका काम आमतौर पर हाईकोर्ट के सम्मनों की तामील करना और हाई-कोर्ट के हुक्मों पर अमल करना होता है। इसका सार्वजनिक कर्तव्य महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श करने के लिए सार्वजनिक सभाओं का आयोजन करना होता है। इस अफसर की नियुक्ति वग़ैरा अभीतक सरकार के हाथ में ही रहती थी, लेकिन अब एक्ट की धारा ३०३ के अनुसार कलकत्ता के शैरिफ़ के लिए यह नियम बनाया गया है कि उसकी नियुक्त हर साल गवर्नर द्वारा हुआ करेगी और हाईकोर्ट के जज

कलकत्ता-हाईकोर्ट का शैरिफ़

जिन तीन नामों की सिफारिश करें उनमें से ही कोई एक व्यक्ति नियुक्त किया जायगा। उसके वेतन वग़ैरा निश्चित करने और उसे बर्ख़ास्त करने वग़ैरा के सब अधिकार गवर्नर को रहेंगे और इन सब मामलों में गवर्नर 'अपने विवेक' से काम लेसकेगा।

**पुनस्संगठन**

धारा २२९ के अनुसार वर्तमान हाईकोर्टों के पुनस्संगठन का अधिकार सम्राट् ने अपने हाथ में रक्खा है। इस प्रकार सम्राट् लेटस पेटेण्ट द्वारा किसी भी प्रान्त के लिए नया हाईकोर्ट स्थापित कर सकते हैं, यदि उस प्रान्त में अलग हाईकोर्ट न हो; एक प्रान्त के दो हाईकोर्टों को मिलाकर एक कर सकते हैं, या एक ही प्रान्त में एक हाईकोर्ट की जगह दो या दो से अधिक हाईकोर्ट भी स्थापित कर सकते हैं। लेकिन इसके लिए यह जरूरी है कि उस प्रान्त की धारा-सभा का भवन या दोनों भवन गवर्नर के जरिये सम्राट् के पास अपने प्रार्थना-पत्र भेजें।

हाईकोर्ट के उपर्युक्त विवेचन से यह बात स्पष्ट है कि नये विधान में उन्हें जो स्थान दिया गया है वह ऐसा है कि वे प्रान्त की नई भावनाओं से सर्वथा दूर रहेंगे और उनका ढर्रा हमेशा उसी प्रकार चलता रहेगा जैसा कि अभीतक चलता रहा है। अर्थात् वे ब्रिटिश साम्राज्यवादी मशीन के ही पुर्जे रहेंगे।

**बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू**

जहाँ हाईकोर्ट प्रान्त की सर्वोच्च दीवानी व फौजदारी अदालत है, बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू माल की सर्वोच्च अदालत होती है। कुछ प्रान्तों में बोर्ड ऑफ़ रेवेन्यू के बजाय रेवेन्यू कमिश्नर या फाइनेंशल कमिश्नर होते हैं। ये सब जगहें आमतौर पर इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्यों के लिए सुरक्षित रहती हैं।

*कमिश्नर और जिला व दौरा जज*

बोर्ड ऑफ रेवेन्यू और हाईकोर्ट के बाद अदालतों की दूसरी श्रेणी माल के मामलों में कमिश्नर की और दीवानी व फौजदारी के मामलों में जिला व दौरा जज की होती है। कमिश्नरों की जगहें इण्डियन सिविल-सर्विस वालों के लिए सुरक्षित हैं, अतः उनपर प्रान्तीय सरकार का नियन्त्रण बहुत ही मामूली रहेगा।

जिला और दौरा जजों के बारे में एक्ट में विशेष संरक्षण रक्खे गये हैं। जिला और दौरा जज से यहाँ तात्पर्य जिला जज, अतिरिक्त ज़िला जज, ज्वाइण्ट जिला जज, असिस्टेण्ट जिला जज, दौरा जज, अतिरिक्त दौरा जज, असिस्टेण्ट दौरा जज, चीफ़ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट और अदालत ख़फ़ीफ़ा के चीफ जज से है। ये जगहें ज्यादातर इण्डियन सिविल सर्विस के सदस्यों के लिए सुरक्षित रहती हैं, लेकिन इनमें से कुछ जगहें अक्सर प्राविंशल सर्विस के सदस्यों को भी देदी जाती हैं। धारा २५४ उपधारा १ के अनुसार जिला और दौरा जजों की नियुक्ति, तबादले और तरक्क़ी सम्बन्धी अधिकारों के प्रयोग में मिनिस्टरों को जहाँ एक ओर हाईकोर्ट से सलाह लेना जरूरी होगा, दूसरी ओर गवर्नर को भी 'अपने विवेक' से काम लेनें का अधिकार होगा।

इण्डियन सिविल सर्विस और प्राविंशल सर्विस के अफ़सरों के अलावा कुछ व्यक्ति इन जगहों पर वकील-बैरिस्टरों में से भी नियुक्त किये जाते हैं। धारा २५४ उपधारा २ के अनुसार इनका चुनाव भी प्रान्तीय सरकार खुद सीधे न कर सकेगी। जिन नामों की सिफ़ारिश हाईकोर्ट करेगा वे ही व्यक्ति इन जगहों पर नियुक्त किये जासकेंगे। इस प्रकार वे वकील, बैरिस्टर या एडवोकेट ही नियुक्त किये जासकेंगे जो कम-से-कम ५ साल तक वकालत कर चुके हों।

### सब-जज व मुंसिफ़

दीवानी की तरफ़ जिला जज के नीचे जो जज होते हैं वे या तो सब-जज या सिविल जज कहलाते हैं या मुंसिफ़। इनको भी प्रान्तीय सरकार के नियन्त्रण से काफ़ी मुक्त कर दिया गया है।

धारा २५५ उपधारा १ के अनुसार, "दीवानी के जजों की योग्यता के बारे में नियम बनाने से पहले प्रान्तीय सरकार को प्रान्तीय हाईकोर्ट और पब्लिक सर्विस कमीशन से परामर्श करना लाजिमी होगा।"

धारा २५५ उपधारा २ के अनुसार, "दीवानी के जजों की नियुक्ति के लिए निम्न क़ायदा काम में लाना जरूरी होगा। प्रान्तीय सरकार प्रान्तीय पब्लिक सर्विस कमीशन से परीक्षा लेने को कहेगी। परीक्षा लेने के बाद पब्लिक सर्विस कमीशन जिन उम्मीदवारों को जजी के योग्य समझेगा उनके नाम की एक सूची बनायगा। जब प्रान्तीय सरकार को जज नियुक्त करने होंगे तो उसे उन नामों में से ही चुनाव करना होगा।"

धारा २५५ उपधारा ३ के अनुसार, "दीवानी जजों के तबादले और उनकी तरक्क़ी करने तथा उन्हें छुट्टी देने के अधिकार हाईकोर्ट को होंगे।"

मतलब यह कि दीवानी के जज भी प्रान्तीय मंत्रि-मण्डल के नियन्त्रण से काफी मुक्त रहेंगे।

### फ़ौजदारी के मजिस्ट्रेट

फ़ौजदारी में दौरा जज के बाद नम्बर जिला मजिस्ट्रेट या उसके मातहत मजिस्ट्रेटों का होता है। जिला मजिस्ट्रेट तो आमतौर पर इण्डियन सिविल सर्विस के होते ही हैं। इनके अलावा बडे-बडे शहरों में ज्वाइण्ट मजिस्ट्रेट या सिटी मजिस्ट्रेट भी इण्डियन सिविल सर्विस के ही होते हैं। इनके नीचे जो मजिस्ट्रेट होते हैं वे या तो प्राविंशल सर्विस के होते हैं या

आनरेरी। माल के तथा अन्य अफ़सरों को भी आमतौर पर मजिस्ट्रेटी अधिकार देदिये जाते हैं। मजिस्ट्रेटों की स्थिति को सुरक्षित करने के लिए एक्ट में धारा २५६ रक्खी गई है, जिसके अनुसार "किसी भी व्यक्ति को मजिस्ट्रेटी अख़्तियारात तबतक नहीं दिये जायँगे और किसी भी मजिस्ट्रेट के अधिकार तबतक नहीं बढ़ाये या छीने जायँगे जबतक कि उस ज़िले के ज़िला मजिस्ट्रेट या चीफ़ प्रेसिडेंसी मजिस्ट्रेट से सलाह न लेली जाय।"

इस प्रकार न्याय-विभाग के पुनस्संगठन के मामले में प्रान्तीय धारा-सभायें और प्रान्तीय मन्त्रि-मण्डल अपनेको चारों तरफ से जकड़ा हुआ ही पायेंगे।

## : १० :

# उपसंहार

भारत के नये शासन-विधान यानी १९३५ के गवर्मेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट द्वारा भारत के प्रान्तों में जो शासन-पद्धति १ अप्रैल १९३७ से अमल में आई है, उसका संक्षिप्त किन्तु यथासम्भव खुलासा दिग्दर्शन पिछले अध्यायों में कराने का प्रयत्न किया गया है। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों द्वारा इसे 'प्राविंशल ऑटोनामी' (Provincial Autonomy) यानी 'प्रान्तीय स्वराज्य' का नाम दिया गया है और उनका दावा है कि इसके द्वारा भारत को प्रान्तों में स्वराज्य और शासन का वास्तविक उत्तरदायित्व मिल गया है। लेकिन जैसा कि इसके विवेचन से स्पष्ट है, हमारी नम्र सम्मति में, यह न तो प्रान्तीय स्वराज्य की योजना है और न वास्तविक उत्तरदायी शासन-पद्धति की। वास्तविक 'प्रान्तीय स्वराज्य' और 'उत्तरदायी शासन-पद्धति' क़ायम करने के लिए तो निम्न बातों का किया जाना आवश्यक है :—

१. प्रान्तीय विषयों के शासन की सारी जिम्मेदारी एकमात्र जनता के निर्वाचित प्रतिनिधियों यानी मिनिस्टरों को सौंप दी जाय, जो प्रान्त की धारा-सभा के प्रति पूर्णरूप से उत्तरदायी हों। गवर्नरों को मिनिस्टरों की सलाह के बिना या उनकी सलाह के ख़िलाफ़ काम करने का कोई अधिकार न हो। हाँ, यदि मिनिस्टरों में धारा-सभा का विश्वास न रहे तो मिनिस्टरों को बदलने का और यदि धारा-सभा में जनता का विश्वास न रहे तो धारा-सभा को भंग करके उसका नया चुनाव करने का अधिकार गवर्नरों को दिया जाय।

२. मिनिस्टरों की नियुक्ति में प्रधान-मंत्री का ही निर्णय अन्तिम हो और गवर्नर मन्त्रि-मण्डल की बैठकों में भाग न ले। मिनिस्टर प्रधान-

मन्त्री को ही अपना मुखिया समझें, ताकि मिनिस्टरों में संयुक्त उत्तर-दायित्व की भावना विद्यमान रहे।

३. मिनिस्टर वे ही व्यक्ति नियुक्त किये जायँ जो धारा-सभा के निर्वाचित सदस्य हों और जिनका धारा-सभा में बहुमत हो।

४. शासन के बड़े-बड़े महकमों के अध्यक्ष या तो स्वयं मिनिस्टर ही हों, या उनका समर्थन करनेवाले धारा-सभा के अन्य सदस्य।

५. सरकारी आज्ञायें मिनिस्टरों या उनके सहायकों के हस्ताक्षरों से ही जारी हों और गवर्नर को स्वयं अपनें हस्ताक्षरों से आज्ञा जारी करने का कोई अधिकार न हो।

६. सरकारी सेक्रेटियों को सरकारी काम के लिए गवर्नर से मिलने का या कोई क़ाग़ज़ गवर्नर के पास भेजने का कोई अधिकार न हो।

७. गवर्नरों को वाइसराय, भारत-मन्त्री और ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण से एकदम मुक्त कर दिया जाय और वे एकमात्र जनता के प्रति ही उत्तरदायी हों।

८. प्रान्तीय मामलों में वाइसराय के दख़ल का एकदम अन्त होजाय।

९. प्रान्तीय मामलों में ब्रिटिश सरकार और ब्रिटिश पार्लमेण्ट के दख़ल का एकदम अन्त होजाय; उन्हें प्रान्तीय धारा-सभाओं के क़ानूनों को रद करने और प्रान्तीय मामलों के बारे में क़ानून पास करने का कोई अधिकार न रहे।

१०. प्रान्तीय विषयों के बारे में क़ानून पास करने के प्रान्तीय धारा-सभाओं के अधिकार पर कोई पाबन्दी न हो। प्रान्तीय धारा-सभाओं को अपनी सत्ता की रक्षा करने, अपने ज़ाब्ते के नियम बनाने, किसी भी भाषा में कारंवाई करने, और बिना गवर्नर या वाइसराय की पूर्व-अनुमती के क़ानून पास करने का पूर्ण अधिकार हो। शासन-विभाग को

धारा-सभा की कारंवाई में दख़ल देने का कोई अधिकार न हो।

११. शासन-विभाग को विशेष परिस्थितियों में उसी हदतक आर्डिनेंसों वगै़रा के जरिये क़ानून वनाने का अधिकार हो, कि जिस हदतक धारा-सभा यह अधिकार शासन-विभाग को देना उपयुक्त समझे।

१२. धारा-सभा के प्रत्येक सदस्य को भवनों के नियमानूकूल भाषण देने की पूर्ण स्वतन्त्रता हो।

१३. प्रान्त के ख़र्चे पर धारा-सभा का पूरा नियन्त्रण रहे, और प्रान्तीय-धारा-सभा की मंजूरी के विना सरकारी आय की एक पाई भी न खर्च की जाय। हाँ, प्रान्तीय धारा-सभा को यह नियम वनाने का अधिकार हो कि अमुक-अमुक ख़र्चों के लिए प्रान्तीय धारा-सभा की सालाना मंजूरी लेनें की जरूरत न होगी।

१४. प्रान्तों में से द्वितीय चेम्वरें उड़ा दी जायँ और प्रान्तीय असेम्वली ही हरेक प्रान्त की एकमात्र धारा-सभा हो, जिसका चुनाव वालिग मताधिकार के आधार पर हो। प्रान्तीय असेम्वलियों को अपने संगठन में परिवर्तन करने और निर्वाचन-सम्वन्धी विविध विषयों पर नियमादि वनाने का पूरा अधिकार हो, वशर्ते कि

( अ ) सीटों के साम्प्रादायिक वँटवारे में कोई भी परिवर्तन तवतक न किया जाय जवतक कि भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय इसके लिए तैयार न हों;

( व ) अल्प-संख्यक जातियों को पृथक् निर्वाचन-पद्धति से ही अपने प्रतिनिधियों को चुनने का अधिकार दिया जाय, जवतक कि वे स्वयं ही इस पद्धति को छोड़ना न चाहें।

१५. प्रान्तीय सरकार के मातहत काम करनेंवाले सव कर्मचारियों की भर्ती, नियुक्ति, अनुशासन, नियन्त्रण, वेतन वग़ैरा के सव मामले प्रान्तीय सरकारों और धारा-सभाओं के हाथ में रहें। वे चाहें तो इस

काम को पब्लिक सर्विस कमीशन के सुपुर्द करदें, जो मिनिस्टरों और धारासभा के प्रति उत्तरदायी हो।

१६. हाईकोर्ट और प्रान्तीय न्याय-विभाग के सब जजों की नियुक्ति प्रान्तीय सरकारों के हाथ में ही रहे। न्याय-विभाग न्याय करने के अधिकारों के अलावा शेष सब मामलों में प्रान्तीय सरकार और प्रान्तीय धारा-सभाओं के मातहत रहे, लेकिन हाईकोर्ट के किसी जज को तबतक न हटाया जासके जबतक कि धारा-सभा के सदस्य प्रार्थना न करें।

१७. कानून भंग करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को दण्ड देने का पूर्ण अधिकार अदालतों को हो, चाहे वह व्यक्ति कितना ही उच्च-से-उच्च अधिकारी क्यों न हो।

१८. केन्द्र व प्रान्त में अधिकारों का विभाजन करने के लिए और केन्द्रीय व प्रान्तीय सरकारों के पारस्परिक सम्बन्धों को निर्धारित करने के लिए भिन्न-भिन्न प्रान्तों की असेम्बलियों के प्रतिनिधियों की एक कान्फ्रेन्स हो जो शासन-विधान से सम्बन्ध रखनेवाली शेष सब बातों का निर्णय भी करे और भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों का भाषा, संस्कृति आदि के आधार पर पुनर्विभाजन करे।

१९. प्रान्त का कोई भी क्षेत्र वहिर्गत या अर्धवहिर्गत क्षेत्र न रहे और भारत के सब प्रान्तों का दर्जा एकसा हो।

२०. 'प्रान्तीय स्वराज्य' के साथ-साथ केन्द्र में भी इसी प्रकार की शासन-पद्धति क़ायम की जाय, क्योंकि जबतक केन्द्रीय सरकार और प्रान्तीय सरकारें दोनों ही पूर्णरूप से जनता के प्रति उत्तरदायी और स्वतन्त्र न होंगी तबतक 'प्रान्तीय स्वराज्य' की योजना हर्गिज़ सफल नहीं होसकेगी।

---

# परिशिष्ट

## विषयों की सूचियाँ

नीचे तीन सूचियाँ दीजाती हैं, जिन्हें एक्ट में क्रमशः केन्द्रीय सूची, प्रान्तीय सूची और सम्मिलित सूची का नाम दिया गया है। केन्द्रीय सूची के विषयों पर केन्द्रीय धारा-सभा को और प्रान्तीय सूची के विषयों पर प्रान्तीय धारा-सभा को, और सम्मिलित सूची के विषयों पर केन्द्रीय व प्रान्तीय दोनों धारा-सभाओं को क़ानून बनाने का अधिकार होगा। केन्द्रीय सूची के विषयों का शासन रहेगा केन्द्रीय सरकार के ज़िम्मे और प्रान्तीय व सम्मिलित दोनों सूचियों के विषयों का शासन रहेगा प्रान्तीय सरकारों के जिम्मे। लेकिन सम्मिलित सूची के दूसरे भाग के विषयों के बारे में केन्द्रीय धारा-सभा को यह कानून पास करने का अधिकार होगा कि इन विषयों के शासन में प्रान्तीय सरकारें केन्द्रीय सरकार के आदेशानुसार काम करें।[१]

### *केन्द्रीय सूची*

१. सम्राट् की भारतीय जल, थल और हवाई सेना; प्रान्तीय सरकारों की फौजी व हथियारबन्द पुलिस के अलावा सम्राट् की अन्य भारतीय सेना; सम्राट् की सेना के साथ काम करनेवाली अन्य देशों की हथियारबन्द सेना; केन्द्रीय ख़ुफिया विभाग (central intelligence bureau); देश की रक्षा, वैदेशिक मामलों और सम्राट् के रियासती ताल्लुकात की वजह से ब्रिटिश भारत में की जानेवाली नज़रबन्दी।

१. विस्तृत विवरण के लिए देखिए, पृष्ठ १४४–१४६।

२. जल, थल और हवाई सेना के तामीरी काम; छावनियों की स्थानिक स्वशासन संस्थायें; छावनियों में मकानों की जगहों का नियंत्रण; छावनियों की हदवन्दी।

३. वैदेशिक मामले; अन्य देशों से हुई सन्धियों और समझौतों का पालन; विदेशों के (मय ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य देशों के) क़ैदियों और अभियुक्तों को गिरफ्तार करके उनके सुपुर्द करना (extradition)।

४. यूरोपियनों के कब्रिस्तान सहित ईसाइयत का सरकारी महकमा।

५. नोट और सिक्के; कानूनी मुद्रा ( legal tender )।

६. केन्द्रीय सरकार का क़र्ज़ा।

७. डाक, तार, टेलीफ़ोन, वेतार का तार, ब्रौडकास्टिंग तथा संदेश भेजने के इसी प्रकार के अन्य साधन; डाकखानों के सेविंग बैंक।

८. केन्द्रीय सरकार के कर्मचारी और केन्द्रीय पब्लिक सर्विस कमीशन।

९. केन्द्रीय पेंशनें, अर्थात् वे पेंशनें जो केन्द्र को देनी हों या जो केन्द्र की आय से देनी हों।

१०. वे तामीरी काम, ज़मीन व इमारतें जिनकी मालिक केन्द्रीय सरकार हो या जो केन्द्रीय सरकार के क़ब्ज़े में हों। लेकिन जहाँतक प्रान्तों में स्थित सम्पत्ति का सवाल है, उसपर केन्द्रीय क़ानूनों के साथ-साथ प्रान्तीय क़ानून भी लागू होंगे, यदि प्रान्तीय क़ानून केन्द्रीय क़ानूनों के विरुद्ध न हों।

११. इम्पीरियल लाइब्रेरी, इण्डियन म्यूज़ियम, इम्पीरियल वार म्यूज़ियम, विक्टोरिया मेमोरियल, और केन्द्र द्वारा नियंत्रित तथा केन्द्र के खर्च से चलनेवाली इसी प्रकार की अन्य संस्थायें।

१२. अनुसन्धान, पेशों व उद्योगों की ट्रेनिंग और विशेष विषयों

के अध्ययन ( special studies ) को प्रोत्साहन देने के लिए केन्द्रीय सरकार द्वारा स्थापित भवन (Institutes) तथा अन्य संस्थायें।

१३. काशी का हिन्दू विश्वविद्यालय और अलीगढ़ का मुस्लिम विश्वविद्यालय।

१४. भारत की पैमाइश ( Survey of India ) और भारत की भूगर्भ-विद्या, वृक्ष-विद्या तथा जीव-जन्तु सम्बन्धी जाँच; केन्द्रीय आकाश-निरीक्षण विभाग।

१५. प्राचीन ऐतिहासिक इमारतें; पुराने भग्नावशेष और स्थान।

१६. मर्दुमशुमारी।

१७. भारत में बाहर के लोगों का आना और भारत से लोगों का बाहर जाना; देश-निकाला; इंग्लैण्ड-निवासी और भारत-निवासी ब्रिटिश प्रजाजनों के अलावा भारत में सब लोगों की हलचलों पर नियन्त्रण; भारत के बाहर के स्थानों की तीर्थयात्रा।

१८. बन्दरगाहों के क्वेरेण्टाइन; उनके अस्पताल; जहाज़ियों के अस्पताल और जहाज़ी अस्पताल।

१९. केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्धारित चुंगी की हदों ( custom frontiers ) से माल का गुज़रना।

२०. केन्द्रीय रेलें; प्रान्तीय रेलों की हिफ़ाज़त; प्रान्तीय रेलों के मुसाफिरों के प्रति और प्रान्तीय रेलों के ज़रिये माल भेजनेवालों के प्रति प्रान्तीय रेलों की ज़िम्मेदारी।

२१. समुद्रों में जहाज़ों का चलना व सामुद्रिक यातायात; समुद्री अपराधों के अपराधियों को दण्ड।

२२. इस बात की घोषणा करना कि कौन-कौनसे बन्दरगाह बड़े समझे जायँगे; बड़े बन्दरगाहों की शासन-संस्थाओं का निर्माण तथा उनके अधिकार।

२३. मछलियों का पकड़ना; समुद्री किनारों से दूर मछली पकड़ने के स्थान।

२४. हवाई जहाज़; हवाई यातायात; हवाई अड्डे।

२५. प्रकाश-गृह; समुद्री जहाज़ व हवाई जहाज़ों की हिफ़ाज़त के अन्य उपाय।

२६. समुद्री या आकाश-मार्ग से मुसाफ़िरों और माल का यातायात।

२७. कापीराइट; आविष्कार; डिज़ाइन; ट्रेड मार्क व मर्चेण्डाइज़ मार्क।

२८. चैक; बिल ऑफ एक्सचेञ्ज; प्रामिसरी नोट और इसी प्रकार के अन्य दस्तावेज़।

२९. शस्त्रास्त्र; बन्दूक पिस्तौल वग़ैरा; गोला-बारूद का सामान।

३०. विस्फोटक पदार्थ।

३१. अफीम की खेती, उत्पत्ति और निर्यात के लिए बिक्री।

३२. पेट्रोलियम और केन्द्रीय धारा-सभा द्वारा घोषित किये जानेवाले अन्य जल्द उठनेवाले पदार्थों के रखने व इधर से उधर लेजाने पर नियंत्रण।

३३. कोआपरेटिव सोसायटियों के अलावा व्यापारिक क़ानूनी समुदायों (trading corporations) का समुदायीकरण (incorporation), नियन्त्रण व उनकी समाप्ति; वे क़ानूनी समुदाय जिनका उद्देश्य एक प्रान्त तक ही सीमित न हो।

३४. उद्योग-धन्धों की उन्नति—जिस हद तक कि केन्द्रीय धारा-सभा उचित समझे।

३५. खानों व तेल के खानों में मजदूरी का नियन्त्रण और इन खानों का निरीक्षण।

३६. खानों और तेलों के सोतों का नियन्त्रण और खानों की उन्नति—जिस हद तक कि केन्द्रीय धारा-सभा उचित समझे।

३७. वीमे के क़ानून; वीमे के व्यापार पर नियन्त्रण; प्रान्तीय सरकारों के अधिकारों के वीमे के अलावा सरकारी वीमा।

३८. वैंक-व्यवसाय पर नियंत्रण।

३९. एक प्रान्त की पुलिस को दूसरे प्रान्त में उस प्रान्त की सरकार की स्वीकृति से काम करने का अधिकार देना।

४०. इस सूची में शामिल किये गये विषयों के क़ानूनों को भंग करने की सज़ा।

४१. इस सूची में शामिल किये गये विषयों के वारे में जाँच और तत्सम्बन्धी आँकड़े।

४२. आयात-निर्यात कर।

४३. तम्बाकू पर उत्पत्ति-कर ( Excise duties ); (अ) शराव व अन्य मादक पेय, (व) अफ़ीम, भंग, आदि मादक द्रव्यों व दवाई की अन्य चीज़ों तथा (स) इन चीज़ों से वननेवाली दवाइयों और श्रृंगार के सामान पर लगनेवाले उत्पत्ति-कर के अलावा भारत में वनने व पैदा होनेवाले अन्य माल पर उत्पत्ति-कर।

४४. क़ानूनी समुदायों पर टैक्स ( Corporation tax )।

४५. नमक।

४६. सरकारी लाटरियाँ।

४७. विदेशियों का व्रिटिश प्रजाजन वनना।

४८. एक प्रान्त के निवासियों का दूसरे प्रान्त में वसना।

४९. तौल के वाट निर्धारित करना।

५०. राँची का यूरोपियन पागलों का अस्पताल।

५१. फेडरल कोर्ट के अलावा सब अदालतों के उन सब विषयों के बारे में जो इस सूची में शामिल हैं अधिकार व अधिकार-क्षेत्र; फ़ेडरल-कोर्ट को दीवानी अपीलें सुनने के अधिकार देना; फेडरल कोर्ट को ऐसे अधिकार देना जिनके ज़रिये वह एक्ट में दिये गये अपने अधिकारों को और अच्छी तरह प्रयोग में लासके।

५२. खेती की आमदनी के अलावा और सब आमदनियों पर कर।

५३. खेती की ज़मीन के अलावा व्यक्तियों व कम्पनियों की कुल मिल्कियत पर टैक्स और कम्पनियों की पूंजी पर टैक्स।

५४. खेती की ज़मीन के अलावा और सब सम्पत्ति पर उत्तराधिकार-कर ( Succession duties )।

५५. हुण्डी, चैक, प्रामिसरी नोट, बिल्स ऑफ एक्सचेञ्ज, बिल्स ऑफ लैडिंग, लेटर्स ऑफ क्रेडिट, बीमे की पालिसी और रसीदों पर लगाये जानेवाले स्टाम्पों की दर।

५६. रेल और हवाई जहाज़ों से चलनेवाले माल व मुसाफिरों पर टर्मिनल टैक्स; रेलों के भाड़े पर टैक्स।

५७. अदालतों की आमदनी के अलावा इस सूची में शामिल किये गये और सब विषयों की आमदनी।

## प्रान्तीय सूची

१. सार्वजनिक व्यवस्था ( Public order ) (अलावा सम्राट् की सेना के उपयोग के); न्याय-विभाग; फेडरल कोर्ट के अलावा और सब अदालतों का निर्माण, संगठन और उनकी आमदनी; सार्वजनिक व्यवस्था को कायम रखने के लिए की जानेवाली नजरबन्दी; इस प्रकार नजरबन्द किये हुए व्यक्ति।

२. उन सब विषयों के बारे में जो इस सूची में शामिल हैं, फेडरल

कोर्ट के अलावा सब अदालतों के अधिकार और अधिकार-क्षेत्र; माल की अदालतों में ज़ाब्ते के नियम।

३. पुलिस (मय रेलवे व देहाती पुलिस के)।

४. जेलें, रिफ़ार्मेटरी ( Reformatories ) अर्थात् क़ैदियों के सुधार-गृह, बोर्स्टल तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थायें; इन संस्थाओं में बन्द किये जानेवाले व्यक्ति; अन्य प्रान्तों की जेलों तथा अन्य संस्थाओं का उपयोग करने के लिए उन प्रान्तों से प्रबन्ध करना।

५. प्रान्तीय सरकार का क़र्ज़ा।

६. प्रान्तीय सरकार के कर्मचारी और प्रान्तीय पब्लिक सर्विस कमीशन।

७. प्रान्तीय पेंशनें, अर्थात् वे पेंशनें जो प्रान्त को या प्रान्त की आय से देनी हों।

८. वे तामीरी काम, ज़मीन व इमारतें जिनकी मालिक प्रान्तीय सरकार हो या जो प्रान्तीय सरकार के क़ब्ज़े में हों।

९. दूसरों की ज़मीन को हासिल करने का अधिकार।

१०. प्रान्त द्वारा नियन्त्रित और प्रान्त के खर्चे से चलनेवाले पुस्तकालय, अजायबघर तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थायें।

११· प्रान्तीय धारा-सभाओं के चुनाव (लेकिन गवर्मेण्ट ऑफ इण्डिया एक्ट और उसके मातहत जारी किये गये आर्डर-इन-कौंसिलों के किसी नियम के विरुद्ध नहीं)।

१२. प्रान्तीय मिनिस्टर, लेजिस्लेटिव असेम्बली के स्पीकर व डिप्टी-स्पीकर और जिन प्रान्तों में लेजिस्लेटिव कौंसिलें हैं उन प्रान्तों की लेजिस्लेटिव कौंसिल के प्रेसिडेण्ट व डिप्टी-प्रेसिडेण्ट के वेतन; प्रान्तीय धारा-सभा के सदस्यों के वेतन-भत्ते और उनके रिआयती अधिकार ( privileges ); उन व्यक्तियों को सज़ा जो प्रान्तीय धारा-सभा की

किसी कमेटी के सामने गवाही देने या दस्तावेज़ पेश करने से इंकार करें (लेकिन इस विषय पर गवर्नरों द्वारा बनाये गये नियमों के विरुद्ध नहीं)।

१३. स्थानिक स्वशासन ( local self-government ) अर्थात् म्यूनिसिपल समुदायों, इम्प्रूवमेण्ट ट्रस्टों, ज़िला बोर्डों, खानों की शासन-संस्थाओं तथा इसी प्रकार की अन्य संस्थाओं का निर्माण और उनके अधिकार।

१४. सार्वजनिक स्वास्थ्य व सफ़ाई; अस्पताल और दवाईखाने; जन्म-मरण की रिपोर्टों की रजिस्ट्री।

१५. भारत के स्थानों की तीर्थ-यात्रा।

१६. मुर्दों का गाड़ना और क़ब्रिस्तान।

१७. शिक्षा।

१८. यानायात, अर्थात् सड़क, पुल, नाव व यातायात के वे साधन, जिनका उल्लेख केन्द्रीय सूची में नहीं किया गया है; प्रान्तीय रेलें अर्थात् वे रेलें जो एक ही प्रान्त में चलती हों और जिनका बड़ी रेलों से सीधा सम्बन्ध न हो[1]; म्यूनिसिपल क्षेत्रों की ट्राम्वे; देशान्तर्गत जल-मार्ग और उनपर यानायात[2]; बन्दरगाह[3]; मशीनों के ज़ोर से चलनेवाली सवारियों के अलावा सब सवारियां।

१९. पानी अर्थात् पानी का प्रबन्ध ( water supplies ); सिंचाई व नहरें; नालियां ( drainage ) व बन्द या बांध; पानी को इकट्ठा रखना और उससे शक्ति पैदा करना।

२०. कृषि (सब कृषि-शिक्षा और कृषि-सम्बन्धी अनुसन्धान के); खेती को नष्ट करनेवाले जीवों से खेती की रक्षा करना और पौधों की

१. लेकिन देखिए केन्द्रीय सूची का नं० २०।

२. लेकिन देखिए सम्मिलित सूची का नं० ३२।

३. लेकिन देखिए केन्द्रीय सूची का नं० २२।

बीमारियों से बचाना; खेती के जानवरों की नस्ल में सुधार करना और जानवरों को बीमारियों से बचाना; जानवरों की डाक्टरी और उसकी शिक्षा; काजीहौज़ और जानवरों के आवारा फिरने को रोकना।

२१. ज़मीन अर्थात् ज़मीन के ऊपर व ज़मीन में लोगों के अधिकार; जमीन का बन्दोबस्त (मय ज़मींदारों और किसानों के पारस्परिक सम्बन्धों के) और लगान की वसूली; खेती की ज़मीनों की ख़रीद-फ़रोख़्त और रेहन वगैरा और उसके उत्तराधिकार; ज़मीन की उन्नति और खेती के लिए दिये गये कर्ज़; नई बस्ती बसाना ( colonization ); कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स; मक़रूज़ व कुर्क की हुई रियासतें; गड़ा हुआ और छिपा हुआ धन।

२२. जंगलात।

२३. खानों व तेल के सोतों का नियन्त्रण और खानों की उन्नति।[१]

२४. मछलियों के पकड़ने के स्थान।

२५. जंगली परिन्दों व जंगली जानवरों की रक्षा।

२६. गैस व गैस के तामीरी काम।

२७. प्रान्त का व्यापार; बाज़ार व मेले; साहूकार व साहूकारा।

२८. सराय व सराय के संचालक।

२९. माल की उत्पत्ति, सप्लाई व बँटवारा; उद्योग-धन्धोंकी उन्नति।[२]

३०. खाद्य पदार्थों में और अन्य पदार्थों में मिलावट; तौल व नाप।

३१. मादक पेय व नशीली दवाइयाँ, अर्थात् उनकी उत्पत्ति, उनको रखना और उनका क्रय-विक्रय।[३]

१. लेकिन देखिए केन्द्रीय सूची का नं० ३६।

२. लेकिन देखिए केन्द्रीय सूची का नं० ३४।

३. लेकिन अफीम के लिए देखिए केन्द्रीय सूची का नं० ३१ और जहर व ख़तरनाक दवाइयों के लिए देखिए सम्मिलित सूची का नं० १९।

३२. ग़रीबों की सहायता; बेकारी।

३३. केन्द्रीय सूची में वर्णित समुदायों के अलावा सब समुदायों का समुदायीकरण, नियन्त्रण और समाप्ति; ऐसी व्यापारिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, धार्मिक और अन्य सभा-सोसायटियाँ जिनका समुदायीकरण न हुआ हो; कोआपरेटिव सोसायटियाँ।

३४. धर्मादा व धर्मादे की संस्थायें; मंदिर, मस्जिद, मठ वग़ैरा।

३५. थियेटर, ड्रामे व सिनेमा (लेकिन इसमें सिनेमा की फ़िल्मों की मंजूरी शामिल नहीं है)।

३६. सट्टेबाजी और जुएबाजी।

३७. इस सूची में शामिल किये गये विषयों के क़ानून को भंग करने की सजा।

३८. इस सूची में शामिल किये गये विषयों के बारे में जाँच व तत्सम्बन्धी आँकड़े।

३९. मालगुजारी (मय उसकी तशख़ीस व वसूली के), क़ाग़ज़ात ज़मीन, मालगुजारी की पैमायश, मिल्क हक़ियत और मालगुजारी का क्रय-विक्रय, रेहन वग़ैरा।

४०. प्रान्त में बनने या पैदा होनेवाली शराब, अन्य मादक पेय, अफ़ीम, भंग आदि मादक द्रव्यों व दवाई की अन्य चीज़ों तथा इन चीज़ों से बननेवाली दवाइयों व शृंगार-पदार्थों पर लगाये जानेवाले उत्पत्ति-कर और उन्हीं दरों पर या उनसे भी कम दरों पर भारत के अन्य प्रान्तों में बनने या पैदा होनेवाले उन्हीं पदार्थों पर बराबरी की वजह से (countervailing duties) लगाई जानेवाली चुंगियाँ।

४१. खेती की आमदनी पर कर।

४२. ज़मीन, इमारत, चूल्हों व खिड़कियों पर कर।

४३. खेती की ज़मीन पर उत्तराधिकार-कर।

४४. खानों के हक़दारों पर कर[1] (Taxes on mineral rights)।

४५. व्यक्तियों पर कर ( Capitation Taxes )।

४६. पेशों, तिजारतों व नौकरियों पर कर।

४७. जानवरों व नावों पर कर।

४८. माल की बिक्री और इश्तिहारों पर कर।

४९. खपत के लिए, काम में लेने के लिए, या बिक्री के लिए म्यूनिसिपल क्षेत्रों में आनेवाले माल पर चुंगी।

५०. विलासिता की चीज़ों पर कर (मय आमोद-प्रमोद, सट्टेबाज़ी और जुएबाज़ी पर कर के)।

५१. उन दस्तावेज़ों के अलावा जिनका उल्लेख केन्द्रीय सूची के नम्बर ५५ में किया गया है, सब दस्तावेज़ों पर लगाये जानेवाले स्टाम्पों की दर।

५२. देशान्तर्गत जल-मार्गों से जाने-आनेवाले मुसाफिरों और माल पर टैक्स

५३. टौल-टैक्स ( Tolls )।

५४. अदालतों की आमदनी के अलावा इस सूची में शामिल किये गये और सब विषयों की आमदनी।

## *सम्मिलित सूची*

### ( १ )

१. ताजीरात हिन्द (अलावा केन्द्रीय और प्रान्तीय सूची में शामिल किये गये विषयों के क़ानून को भंग करने की सज़ा के और अलावा सम्राट् की सेना के उपयोग के)।

१. लेकिन देखिए केन्द्रीय सूची का नं० ३६।

२. ज़ाब्ता फ़ौजदारी।

३. एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को क़ैदियों और अभियुक्तों का तबादला।

४. ज़ाब्ता दीवानी (मय मुक़दमों की मियाद के क़ानून के); प्रान्तों के अन्दर दूसरे प्रान्तों के टैक्सों, मालगुज़ारी वग़ैरा की वसूली।

५. गवाही व शपथ।

६. विवाह व तलाक़; नाबालिग़ी; गोद लेना।

७. खेती की ज़मीन के अलावा और सब सम्पत्ति की वसीयत व उत्तराधिकार।

८. खेती की ज़मीन के अलावा और सब सम्पत्ति की ख़रीद-फ़रोख़्त, रेहन वग़ैरा के दस्तावेज़ों की रजिस्ट्री।

९. ट्रस्ट व ट्रस्टी।

१०. खेती की ज़मीन के इक़रारों के अलावा और सब इक़रार (contracts), मय साझे और एजेंसी आदि के इक़रारों के।

११. सालिसी (arbitration)।

१२. नादारी; लावारिसी जायदादों की रक्षा; सरकारी ट्रस्टी।

१३. अदालती स्टाम्पों के अलावा और सब प्रकार के स्टाम्पों के द्वारा ली जानेवाली ड्यूटी (लेकिन स्टाम्प ड्यूटी की दर नहीं)।

१४. नालिशी हर्जे (actionable wrongs), सिवा उनके जिनका सम्बन्ध निर्दिष्ट या प्रान्तीय सूची के किसी विषय से हो।

१५. फ़ेडरल कोर्ट के अलावा सब अदालतों के अधिकार व अधि-कार-क्षेत्र—उन सब विषयों के बारे में जो इस सूची में शामिल हैं।

१६. वकालत, डाक्टरी व अन्य पेशे।

१७. अख़बार, किताबें व छापेख़ाने।

१८. पागलपन व मानसिक दुर्बलता; इनकी चिकित्सा और चिकित्सा-गृह; पागल व दुर्बल मस्तिष्क वाले व्यक्तियों को रखने के स्थान।

१९. ज़हर व खतरनाक दवाइयाँ।

२०. मशीनों के ज़ोर से चलनेवाली सवारियाँ।

२१. वायलर ( Boilers )।

२२. जानवरों के प्रति होनेवाली वेरहमी को रोकना।

२३. यूरोपियनों की आवारागर्दी; जरायम-पेशा जातियाँ।

२४. इस सूची के इस भाग में शामिल किये गये विषयों के वारे में जाँच और तत्सम्वन्धी आँकड़े।

२५. अदालतों से होनेवाली आमदनी के अलावा इस सूची के इस भाग में शामिल किये गये और सव विषयों की आमदनी।

( २ )

२६. कारखाने।

२७. मज़दूरों की वहवूदी; मज़दूरों की दशा; प्राविडेण्ट-फण्ड; मालिकों के फ़र्ज़ व मज़दूरों को मुआवज़ा ( workmen's compensation ); स्वास्थ्य का वीमा, मय वेकार होजाने के कारण दी जानेवाली पेंशनों (invalidity pensions) के; वृद्धावस्था की पेंशनें।

२८. वेकारी का वीमा।

२९. मज़दूर-संघ ( Trade unions ); औद्योगिक व मज़दूर-मालिकों के झगड़े।

३०. मनुष्यों, जानवरों व पौधों की छुआछूत की या अन्य वीमारियों को एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त तक फैलने से रोकना।

३१. विजली।

३२. देशान्तर्गत जल-मार्गों में मशीनों के ज़ोर से चलनेवाली सवा-

रियों के जरिये यातायात; इनमें ट्रैफिक के क़ायदे; देशान्तर्गत जल-मार्गों में यात्रियों व माल का यातायात।

३३. सिनेमा की फ़िल्मों की मंजूरी।

३४. केन्द्रीय सरकार द्वारा नजरबन्द किये हुए व्यक्ति।

३५. इस सूची के इस भाग में शामिल किये गये विषयों के बारे में जांच और तत्सम्बन्धी आंकड़े।

३६. अदालतों की आमदनी के अलावा इस सूची के इस भाग में शामिल किये गये और सब विषयों की आमदनी।

# आधार-भूत ग्रन्थों की सूची

इस पुस्तक को तैयार करने में निम्न ग्रन्थों, खरीतों और सरकारी रिपोर्टों की सहायता लीगई है :—

1. Ilbert: The Government of India; 3rd Edition, 1915.
2. Keith: A Constitutional History of India, 1600-1935.
3. Horne: The Political System of British India.
4. Eddy & Lawton: India's New Constitution.
5. Varma & Gharekhan: The Constitutional Law of India and England; Fifth Edition, 1937.
6. Lahiri and Bannerjea: New Constitution of India.
7. Shah: Provincial Autonomy.
8. Z. A. Ahmad: A Brief Analysis of the New Constitution.
9. Z. A. Ahmad: Some Economic and Financial Aspects of British Rule in India.
10. N. R. Aiyangar: The Government of India Act, 1935.
11. Montagu-Chelmsford Report on Indian Constitutional Reforms.
12. Simon Commission Report.
13. Government of India's Despatch on Simon Commission Report.
14. Round Table Conference Reports.
15. White Paper on Indian Constitutional Reforms.
16. Joint Parliamentary Committee's Report on Indian Constitutional Reform.

17. Parliamentary Debates on the India Bill.
18. Government of India Act, 1935 and the Rules and Orders-in-Council issued thereunder.
19. Government of India Acts 1915-1919 and the Rules issued thereunder.
20. Report of Hammond Committee on Electoral matters.
21. Sir Otto Niemeyer's Indian Financial Enquiry Report.
22. United Provinces Government Budget Estimates for 1937-38.
23. British Indian Delegation's Memorandum to the Joint Parliamentary Committee.
24. Lowell: Government of England.
25. Keith: Constitutional Law of the British Dominions.

# 'मण्डल' की 'सर्वोदय साहित्य माला' के

## प्रकाशन

१—दिव्य-जीवन ।≡)
२—जीवन-साहित्य १।)
३—तामिलवेद ॥।)
४—शैतान की लकड़ी अर्थात् भारत में व्यसन और व्यभिचार ॥।≡)
५—सामाजिक कुरीतियाँ (जब्त : अप्राप्य) ॥।)
६—भारत के स्त्री-रत्न (तीन भाग) ३)
७—अनोखा (विक्टर ह्यूगो) १।≡)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ॥।≡)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान १॥)
११—खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र ॥।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व ॥।≡)
१३—चीन की आवाज़ (अप्राप्य) ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी बारडोली २)
१६—अनीति की राह पर ॥≈)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या-शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।≡)
२०—कलवार की करतूत ≡)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ॥)
२२—अंधेरे में उजाला ॥)
२३—स्वामीजी का बलिदान (अप्राप्य) ।-)
२४—हमारे ज़माने की ग़ुलामी (जब्त : अप्राप्य) ।)
२५—स्त्री और पुरुष ॥)
२६—घरों की सफ़ाई ।≡)
२७—क्या करें? (दो भाग) १॥≈)
२८—हाथ की कताई-बुनाई (अप्राप्य) ॥≈)
२९—आत्मोपदेश ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन (अप्राप्य) ॥-)
३१—जब अंग्रेज़ नहीं आये थे— ।)
३२—गंगा गोविन्दसिंह (अप्राप्य) ॥≡)
३३—श्रीरामचरित्र १।)

७५—हमारे किसानों का सवाल ।)
७६—नया शासन विधान
( प्रांतीय स्वराज्य ) ।।।)
७७ (१) गांवों की कहानी ।।)

नया शासन विधान (फेडरेशन) ।।।)

आगे प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

गीता-मन्थन १।।)
गांधीवाद : समाजवाद १)
विनाश या इलाज ? ।।)
राजनीति की भूमिका ।।)
महाभारत के पात्र–१ ।।)
संतवाणी ।।)
जबसे अंग्रेज आये ।।)

सस्ता साहित्य मण्डल, नया बाज़ार, दिल्ली